मायापुरी

(सचित्र शिक्षाप्रद उपन्यास)

लेखक :—

पण्डित चन्द्रशेखर पाठक ।

प्रकाशक —

रिखबदास वाहिती,

प्रोप्राईटर :—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० वाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता ।

द्वितीय बार } सन् १९२४ { मूल्य २।
रेशमी ३

प्रकाशक :—
रिखबदास वाहिती,
आर० डी० वाहिती एण्ड को०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता ।



मुद्रक—
रिखबदास वाहिती
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, चोरबगान,
कलकत्ता ।



वक्तव्य.

मायापुरी क्या है—यह पढ़नेसे ही मालूम होगा। मैंने यह पुस्तक केवल इसी उद्देश्यसे लिखी है, कि पाठक इसे पढ़कर, इस मायापुरीके मायाचक्रसे बचनेकी चेष्टा करें। मैं उद्देश्यमें सफल हुआ कि नहीं, यह सहृदय पाठक और विचारशील समालोचक समझ लें। एक कार्य किया है, फल क्या होगा—सो राम ही जाने—क्योंकि—

"कर्म्मण्ये वाऽधिकारस्ते माफलेपु कदाचन।"

चन्द्रशेखर पाठक —



दूसरा संस्करण।

मायापुरीका दूसरा संस्करण पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है। इस वातकी वड़ी प्रसन्नता है, कि सर्व-साधारणने इस पुस्तकको आशासे अधिक अपनाया। यद्यपि मेरी प्रवल इच्छा थी, कि इस सस्करणमें कुछ सुधार कर दिया जाये, परन्तु दैवको यही मंजूर था, कि मयापुरी अपनी पूर्वावस्थामें ही वनी रहे। शायद इसी लिये मुझपर विपत्तिका पहाड़ भी ढह पड़ा। अस्तु, इस दूसरे संस्करणमें कुछ विशेष परिवर्त्तन न हो सका। आशा है, पाठकगण, इस त्रुटिके लिये क्षमा करेंगे। और अपनी कृपा पूर्व जैसी ही वनाये रखेंगे।

विनीत—

चन्द्रशेखर पाठक



समर्पण

उसी

मायामयकी सेवामें,

जिसकी माया विना

- इस -

"मायापुरी"

से उद्धार नहीं हो सकता।

—लेखक

मायापुरी

पहला परिच्छेद ।

जीवानन्दकी आत्मकथा ।

ओह! किस भयानक कार्यपर मैं नियुक्त किया गया हूँ! कहाँ आ फँसा हूँ? यह कैसी मायापुरी है? कैसा बीहड़ स्थान है? चारों ओर घोर अन्धकार! सभी ओर विकट समस्यायें! यह तो भीषण कुचक्रमें आ फँसा! यह नौकरी है या कर्म्म दण्ड? मेरे अधिकारी भी बड़े ही विलक्षण हैं। पहले तो खूब प्रशंसा की। प्रशंसा करते करते, जब मैं यह समझने लगा, कि अब मैं भी कामका हो गया हूं, तो मुझे ऐसे स्थानमें भेज दिया, जहाँ मानवोंका तो नहीं, दानवोंका आवास मालूम होता है। बोध होता है, मानों चारों ओर राक्षसी लीला फैली हुई है। तो क्या यह मेरे गर्वका फल है? अनेक बार कृत कार्य्य होनेसे मेरे अफसर मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तुच्छातितुच्छ स्थानसे उन्नति करता करता, मैं इतने उच्च पदपर पहुँचा, स्वर्ग सुखका उपभोग करने लगा। समझने लगा, कि जंजालसे छुट्टी मिली। अब सदा चैनकी बंशी बजा करेगी।

परन्तु इस जीवनमें चेन कहाँ? चैन ही मिलना होता तो इस मृत्युलोकमे ही क्यों भेजा जाता? परन्तु ओह! जो होना था, सो तो हो गया। अब जरा भी इधर उधर किया, कि वडे अफसर नाराज हो जायेंगे और फिर पुन पुन. पदच्युति और अपमानपूर्ण भीपण-दण्ड तो रखा हुआ ही है।

अर्द्ध-रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, मेरे मनमें काले वादल छा ही रहे थे, साथ ही आकाश भी काली घटाओंसे आच्छादित हो रहा था। अन्धकार इतना अधिक था, कि अपना हाथ भी नहीं सूझता था। सन्नाटा इतना भीपण था, कि किसी दुर्योग-की सूचना पाकर वर्षाके सहचर झींगुरोंने भी अपनी झनकार वन्द कर दी थी, जुगनू न जाने किन पत्तियोंकी ओटमें छिपे थे, विजली भी मानों कृष्णाभिसारिकाका रूप धारणकर मेघकी गोदमें जा छिपी थो। प्राणी-प्राणी इस समय निस्तब्ध हो रहे थे, सव निद्रादेवीकी गोदमें मानो आनन्दका उपभोग कर रहे थे, परन्तु मैं वीहड वन, पेचीली घाटियाँ और कितने ही नदी-नाले पार करता हुआ आगे वढता चला जाता था।

इसका कारण क्या था? कारण अवश्य था। विना कारण-के कोई कार्य नहीं होता, विना कर्म्मके दण्ड नहीं होता, विना फलाशाके जीव लिप्त नहीं होता। मैंने फलकी आशा की थी। उसी कर्म्म प्रसविनी आशाके फेरमें मैंने यह नौकरी स्वीकार की थी और उसीका यह फल मिला, कि मैं इस भयानक [illegible] भेजा गया।

एक दिनकी बात हैं। मेरे बडे अफसरने मुझे बुलाकर कहा—"तुम बडे चतुर हो, अपनी चतुरता, विश्वस्तता, बुद्धिमत्ता और कर्म्म पटुताके द्वारा तुम इतने उच्चपदपर आ पहुँचे हो, मैं चाहता था, कि तुम अब सदा आनन्द करो, परन्तु अभी तुम्हारा पेन्शनका समय नहीं आया है, उसके अधिकारी भी तुम अभी नहीं हो। अत तुम्हें काम करना ही पडेगा। देखो, तुमपर मेरा बडा विश्वास है, तुम्हारे समान साहसी मनुष्य मेरे पास शायद ही कोई होगा, अत एक बडा ही दायित्व पूर्ण कार्यका भार तुमको देता हूँ। मुझे विश्वास है, कि तुम सफल होगे। देखो मुझे, पूरी पूरी और पक्की खबर मिली है, कि आजकल मायापुरीमे बडा उपद्रव मचा हुआ है। वहाँ एक ऐसा दल है, जिसने भीषण उपद्रव मचा रखा है। उसके उपद्रवसे वहाँके अधिवासी त्राहि त्राहि कर उठे हैं। ऐसी अवस्थामें यदि तुम उनका चक्र भेदन कर सके, और मुझे विश्वास है, तुम कर सकोगे, तो चेष्टा करूँगा, कि तुम्हें शीघ्र ही पेन्शन मिल जाये।" इसके अतिरिक्त और भी बहुतसी बातें उन्होंने समझाई। लाचार, मुझे भी अपने सरो सामानसे सुसज्जित हो, प्रस्थान करना ही पडा।

परन्तु इतनी दूरतक तो चला आया। मायापुरीतक आनेमें तो किसी प्रकारकी अडचन नही हुई। हुई भी हो तो मालूम नहीं, क्योकि हृदयमें अदम्य उत्साह भरा था। समझता था, कि कितनी ही बार इन उपद्रवियोंके दलको चूर्ण विचूर्ण कर

डाला है, यह तो मेरे बायें हाथका खेल है। इसबार भी सुगमता-से इस चक्रको तोड़ डालूँगा। इसी विचारने, इसी अदम्य-उत्साह और पेन्शन प्राप्त करनेकी उग्र आकांक्षाने, इतना पथ तो ऐसा सुगम बना दिया, कि कुछ मालूम ही नहीं हुआ ; परन्तु यह क्या ! इस मायापुरीमें प्रवेश करते ही हृदय क्यों काँप उठा? ऐसा क्यों मालूम होने लगा, मानों किसीने मुझे चारों ओरसे जकड लिया? क्यों साहस पल्ला छोड भागने लगा—क्यों हृदयमें एक दुर्भावना उत्पन्न हो गई ?

इसी तरहकी अनेक दुर्भावनायें मनमें उठ रही थीं, कितनी ही बातें सोच रहा था। कभी कभी इच्छा होती थी, कि लौट चलूँ, परन्तु लौटनेका उपाय न था—मेरे अफसरकी आज्ञा मार्शल लाकी आज्ञासे भी बढ़कर थी। अत लौटनेकी इच्छा यदि उत्पन्न भी हो जाती तो कुछ कर नहीं सकता था। यह आज्ञा भाग्यकी रेख थी अथवा यों समझ लीजिये, कि कर्म्मका दण्ड ! इसीलिये अनेकानेक बातें, कितने ही कौशल, कितने ही यत्न सोचता हुआ, अभी मैं इस मायापुरीमें कुछ ही दूर अग्रसर हुआ था, कि एकाएक एक ओरसे जोरसे चिल्लानेकी आवाज आई। आवाज साधारण न थी, मालूम होता था, कि कितने ही पिशाच या डाकिनियाँ एकत्र होकर विकट चीत्कार कर रहे हैं अथवा कई मनुष्य किसी पराक्रमी डाकू दलके चक्रमें फँस, जीवन-मरणकी समस्यामें पडकर घोर आर्त्तनाद कर रहे हैं।

अब मैं किसी तरह स्थिर न रह सका। सोचा, एक तो इस कार्यका भार ही उठाया है, दूसरे यदि परोपकार न कर सका तो इस संसारमें जन्म लेकर ही क्या हुआ? मैं उसी शब्दको लक्ष्यकर सीधा उसी ओर अग्रसर हुआ। एक तो वर्षा ऋतु, दूसरे घोर अन्धकार, तीसरे भयानक जंगल, परन्तु इस समय इन बाधाओंपर ध्यान देनेका अवसर न था। मैं उस शब्दको लक्ष्यकर उसी ओर तेजीसे अग्रसर हुआ। हृदयमें भगवानका भरोसा, मनमें अध्यवसाय तथा एक हाथमें पिस्तौल और दूसरेमें अपनी चोर-लालटेन ले, अति सावधानता, परन्तु द्रुतपदसे उसी शब्दकी ओर बढ़ा।

परन्तु यह क्या? अभी थोड़ी ही दूर अग्रसर हुआ था, कि एकाएक किसीने पीछेसे मेरे कन्धेपर हाथ रखा। यहाँकी विकट लीला देखकर हृदयमें कुछ भय तो पहलेसे ही था, एकाएक इस अपरिचित नगरमें, इस दुर्योगके समय, एक अपरिचित मनुष्यका अपने कन्धेपर हाथ देखकर मैं चौंक उठा। जीवनकी ममता ऐसी ही होती है, मन इसी तरह शरीरकी रक्षाके लिये चिन्तित रहता है।

मुझे चौंकते देखकर उस मनुष्यने बहुत धीमे स्वरमें कहा,—"चुप, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं, मित्र हूं।"

मुझे और भी आश्चर्य हुआ। यह अयाचित दान कैसा? मनमें कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। मैंने एकबार ध्यानसे उस ओर देखा; परन्तु घोर अन्धकारमें एक छाया मूर्त्ति सी खड़ी दिखाई—

दी। इसी समय एकाएक बिजली चमक उठी। उसी क्षणिक प्रकाशमें मैंने देखा, कि गेरुआ वस्त्र धारण किये, लम्बी चौडी जटा बढ़ाये, नाभीतक दाढ़ी लटकाये, एक प्रकाण्डकाय, स्थूल-शरीर साधु खडा है।

उस साधु रूपधारी मनुष्यको देखकर मनमे कुछ श्रद्धा हुई, अन्धकारमें प्रकाशकी एक क्षीण रेखा दिखाई दी। फिर सन्देह भी हुआ, कि कहीं यह भी तो उसी दलका नहीं है। मैंने उससे पूछा,—"आप कौन?"

उस साधुने कहा—"मेरा नाम विवेकानन्द है। मैं तुम्हें सावधान करने आया हू। तुमने जिस कार्यका भार उठाया है, वह सहज नहीं है। यह मायापुरी एक विलक्षण स्थान है। इसमें कामरूपसिंह, अमर्पसिंह, अभिलापसिंह, मोहनचन्द, गर्वसिंह, और हसदअली नामक छ ऐसे दुर्दान्त डाकुओंका निवास है, कि यहाँसे तुम्हारा सहजमें छुटकारा पाकर निकल जाना और इन भीपण दस्युओंको पकड लेना बड़ा ही दुष्कर है। अत' बड़ी सावधानतासे काम करना। जरा भी चूके, कि मारे गये। इनके साथ ही एक ऐसी रमणी भी है, कि जिसका वशमें लाना सहज नहीं है। तुम नामी मनुष्य हो, आरम्भसे तुमपर ममता है। इसीलिये मैंने इस समय तुम्हें सावधान कर देना आवश्यक समझा है। बस, सावधान! अब मैं जाता हू।"

इतना कहकर वह साधुवेशधारी मनुष्य किधर अन्तर्द्धान हो गया, मैं कुछ भी न जान सका। मेरी इच्छा थी, कि जब

उसने इतना बताया है, तो कुछ उपाय भी पूछूँ, परन्तु बहुत खोजनेपर भी कहीं उसका पता न लगा।

अब क्या करूँ? एक सहारा मिला था, वह भी चला गया। तब मैं सोचने लगा—चला गया, जाने दो, इसका क्या विश्वास कि वह जो कुछ कह गया है, वह सत्य ही है। यह भी शायद मायापुरीकी ही कोई माया हो। यह विचार मनमें आते ही हृदय फिर काँप उठा। तो क्या शत्रुओंने मुझे देख लिया?

साहस, प्रसन्नता और शोक समयपर होता है। मन ही मन विचारने लगा—कितनी ही बार ऐसे ऐसे कितने ही शत्रुओंसे काम पड़ा है, परन्तु बराबर ही उनपर विजय पायी है, इस बार फिर सफलता क्यों न मिलेगी? अवश्य मिलेगी। विश्वास ही विजय है। आत्म निर्भरता ही सफलताकी पहली सीढ़ी है। यही सोचकर मैं फिर आगे बढ़ा। अभीतक उसी प्रकारकी चिल्लाहट बराबर सुन पड़ती थी। मैं उसी शब्दपर लक्ष्य रख उसी ओर चला।

इसी तरह बराबर आगे बढ़ता चला गया, परन्तु जिस तरह किसी पर्वतकी सैर करनेवालेको पर्वत मात्र देखनेमें निकट मालूम होनेपर भी मीलों उसे दौड़ता है अथवा मरीचिकाके फेरमें पड़ा हुआ मृग जैसी अवस्थाको प्राप्त होता है, मेरी भी ठीक वैसी ही अवस्था हुई। ज्यों ज्यों मैं उस ओर अग्रसर होता गया, त्यों त्यों वह ध्वनि पास मालूम होनेपर भी मानों दूर ही हटती गई। मैं समझ न सका, कि यह क्या बात है।

मैंने भी दृढ़ निश्चय कर लिया था, कि ये शत्रु चाहे कैसी भी चाल क्यों न चलें, मैं उनका पीछा न छोड़ूंगा। अस्तु।

इस समय जिस स्थानपर मैं था, वह एक पर्वतकी उपत्यका थी। यहाँ आनेपर ऐसा मालूम हुआ, मानों वह ध्वनि पर्वत परसे आ रही है। अत मैं पहाडपर चढ़ना ही चाहता था, कि एकाएक किसोने कहा,—"क्या करते हो?—ऐसा न करो।"

मैं चौंक पड़ा। मनमें आया शायद वही महापुरुष फिर आ गये हैं; परन्तु इतना सोच ही रहा था, कि उस आगन्तुकने फिर कहा,—"क्यों जान बूझकर अपना प्राण देते हो? जीवन नष्ट करनेके लिये ईश्वरने नहीं दिया है। किस झमेलेमें पडे हो? लौट जाओ, जाकर आनन्द करो। बडो कठिनतासे यह जीवन प्राप्त होता है।"

इस वार स्पष्ट समझमे आ गया, कि यह किसी रमणी-कण्ठसे निकली हुई कोकिल-ध्वनि है। मानों उस मधुर स्नेह-भरी ध्वनिने उस स्थानको गु जरित कर दिया। हृदयपर भी कुछ आघात पहुँचा। विचारने लगा—ठोक ही तो है, यदि इस जीवनका आनन्द न लियाँ, तो जीवन ही वृथा है। इसी झमेलेमें तो जिन्दगो तमाम हुई चाहती है। बलासे पेन्शन न मिलेगी। जान है तो जहान है। कुत्ता भी अपना पेट पालता है, क्या मैं अपना पेट न भर सकूँगा?

इसी समय 'आकाशमें बडे जोरसे कडाकडाकर बिजली चमकी। मानो कहीं वज्रपात हुआ। उसी प्रकाशमें मैंने देखा,

मेरे ठीक सामने एक भुवन मोहिनी स्त्री मूर्त्ति खडी है। विलक्षण सौन्दर्य है। विधाताके विधानका, ब्रह्माके चातुर्यका अथवा यों समझ लीजिये, कि प्रकृतिके खेलवाडका एक अति सुन्दर, अति मनोहर और अति चित्ताकर्षक नमूना है। वर्षासे घुले हुए एक निर्म्मल शिलाखण्डपर वनदेवी अथवा मनोज-मद-मर्दिनीका रूप धारण किये, एक हाथ उठाकर मुझे आगे बढनेसे रोक रही है। उस बिजलीके प्रकाशमें बस इतनी ही छटा दिखाई दी। इच्छा हुई, कि एक बार और देखूँ, परन्तु चारों ओर अन्धकार था। हृदयमें प्रबल इच्छा जागरित हुई। सोचा—क्या चोर लाल्टेनकी सहायता लूँ? परन्तु नहीं, शायद शत्रु देख लें। इस विचारसे लाल्टेन जलानेकी हिम्मत न पडी। पर मनमें यह विचार अवश्य उत्पन्न हुआ, कि एक बार यदि बिजली और भी चमक उठती तो अच्छा होता।

मेरी इच्छा पूर्ण हुई। एक बार फिर बिजली चमकी और मैंने भी देखा, कि वह रूपसी सुन्दरी मेरे बहुत ही पास खडी है। अब मैंने साहसकर पूछा,—"तुम कौन हो?"

रमणी हँस पड़ी। बोली—"यह स्थान बातें करनेका नहीं है। मेरे साथ आओ।" इतना कहकर वह स्त्री एक ओरको आगे बढ़ी। मैं मानों मन्त्र मुग्ध पशुको भाँति उसके पीछे पीछे चला। अभी कुछ ही दूर आगे बढा था, कि किसीने मानों मेरे कानमें आकर कहा—"देखना, इसकी बातोंमें न आना। सावधान! व्यसन सदा ही देखनेमें मुग्धकर होते हैं।"

मैंने पीछे घूमकर देखा, परन्तु कोई दिखाई न दिया। सोचा—मुझे भ्रम हुआ है। अत मैं उसके साथ ही साथ आगे बढ़ा।

पहले ही कह चुका हूँ, कि रमणी बड़ी ही सुन्दर थी। अब पास पास जानेसे यह भी मालूम हुआ, कि उसके शरीरसे नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंकी सुगन्ध आ रही है। कुछ भी हो, मुझे इन बातोंकी इस समय सुधि न थी। मैं यह जानना चाहता था, कि यह रमणी कौन है और इस तरह जगल-जंगल क्यों घूमती फिरती है?

इसी लिये कुछ ही दूर अग्रसर होनेपर मैंने उससे पूछा,—"तुम कौन हो, और इस तरह जंगल-जंगल इस घोर रात्रिके समय क्यों घूमा करती हो?"

रमणीने बहुत धीरेसे कहा,—"चुप रहो। शत्रु पासमें ही हैं। जरा भी सुन पायेंगे, तो जान न बचेगी।"

मैंने मन ही मन कहा,—"न जाने इस बार भाग्यमें क्या बदा है?" अस्तु मैं चुपचाप उसके साथ आगे बढता चला गया। जाते जाते हमलोग कितने ही स्थानोंको पारकर एक ऐसी जगह पहुँचे, जो चारों ओरसे हरियाले खेतोंसे लहलहा रही थी। जिसके पास ही एक खुशनुमा बाग लगा हुआ था, जिसके मनोहर फूलोंकी भीनी-भीनी सुगन्ध बराबर आ रही थी। इस समय आकाशके बादल भी हट रहे थे और कभी कभी चन्द्रदेव उन बादलोंकी ओटसे निकलकर लज्जावती रमणीकी भाँति एक एक

बार अपना चमकीला चेहरा दिखाकर फिर गायब हो जाते थे।

इस समय हमलोग बहुत दूर निकल आये थे। रात आधी-से अधिक ढल चुकी थी। थोड़ी ही देर बाद आकाशमें चन्द्रमा पूर्ण-रूपसे अपनी छबीली छटा दिखाने लगे। आकाशका जलद-खण्ड एक ओर सिमटकर इस तरह खड़ा हो गया, मानों वह चन्द्रदेवकी अगवानीके लिये तय्यार है और अपने स्वच्छ वस्त्र धारी दूतोंको इधर उधर पथ रक्षकके रूपमें खड़ा होनेके लिये भेज रहा है। चन्द्रदेव भी दौड़ते हुए जाते दिखाई देने लगे। इस समय बड़ा ही मनोहर दृश्य दिखाई दिया। वर्षासे खेत लहलहा रहे थे, उनपर बूदें, चन्द्रमाकी चटकीली चादनीमें, मानों अठखेलियाँ कर रही थीं।

इस स्थानपर आकर वह रमणी रुकी, साथ ही मैं भी खड़ा हो गया। वह रमणी मुस्कुराकर बोली,—"अब हमलोग निरापद स्थानपर आ गये। अब मुझे विश्वास हो गया, कि मैं तुम्हें बचा सकी। तुम इतने बड़े जासूस हो, पर इतना भी न सोच सके, कि भला इस बीहड स्थानमें अकेला तो न जाऊँ ?"

इतना कहकर उसने तीव्र दृष्टिसे मेरे चेहरेकी ओर देखा और मुस्कुरा दी। पर मेरा अन्तरात्मा काँप उठा। यह कैसे जान गई, कि मैं जासूस हू ?

ओह! कैसी मधुर मुस्कान थी! कैसी आमकी फाँकोंसी बड़ी बड़ी रसीली आँखें थीं! कैसी धनुषाकार चचल भौंहे थीं!

कैसा अर्द्ध चन्द्रको भी लज्जित करनेवाला चमकीला, दिव्य और स्वच्छ ललाट था! आईनेसे चमकते हुए गोल गोल गालोंमें गुलाबकी पँखड़ियोंको भी मात करनेवाला कैसा सुन्दर हल्का गुलाबी रंग और पतले पतले बिम्बफल जैसे अरुण अधरोंपर मन्द मुस्कान मानों मुझे मतवाला बना रही थी। समूचा शरीर मानों साचेमें ढला सा था। उपमाकी आवश्यकता नहीं- सभी मनोहर, सभी नयन मुग्धकर था।

इस समय वह तनकर मेरे सामने खड़ी थी। उसकी आँखें मेरे चेहरेकी ओर लगी थीं और मैं एक एक बार चोरोंकी भांति आँखें उठाकर जल्दीसे उसकी ओर देखता और फिर दृष्टि नीची कर लेता था।

उस युवतीसे मेरा मनोभाव मानों छिपा न था। उसने कुछ क्षणतक मेरे चेहरेकी ओर देखकर कहा,—"मैं तुम्हें पहचानती हूं—और अच्छी तरह पहचानती हूं। तुम प्रसिद्ध जासूस जीवानन्द हो, परन्तु फिर भी कहती हूं, कि इस बार तुमने भूल की है, इस रहस्यका भेद करना सहज काम नहीं है।"

मैंने कहा,—"मैं समझ गया, कि तुम मुझे पहचान गई हो, परन्तु जरा अपना भी परिचय दो। तुम जैसी सलोनी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखी। तुम रूप-रंगसे किसी धनी कुलकी कन्या मालूम होती हो, फिर तुम रात्रिके समय इस तरह क्यों घूमा करती हो?"

रमणी एक ठण्डी सांस लेकर बोली,—"जब तुम्हें बचाकर

यहाँतक ले आयी हूँ, तब अपना परिचय भी अवश्य ही दूँगी, परन्तु मेरी कथा, बड़ी ही दुःख भरी, बड़ी ही दर्द भरी और बड़ी ही भेद-भरी है।" इतना कहते कहते उसकी आँखोंसे आसुओंकी बूँदें टपक पड़ीं।

यह देखकर मैंने कहा,—"यह क्या! तुम रोती क्यों हो?"

स्त्री बोली,—"रोती अपने भाग्यको हूँ। अच्छा, अब यहाँ खड़े न रहो, मेरे मकानपर चलो, वहीं सब कथा तुमको सुनाऊंगी।

लाचार मैं भी उसके साथ ही साथ चला। थोड़ी ही दूरपर, एक ओर हाथका इशाराकर उसने कहा,—"यहीं पास ही मेरा मकान है। किसी प्रकारका भय न करो। चलो, मेरे साथ चलो।"

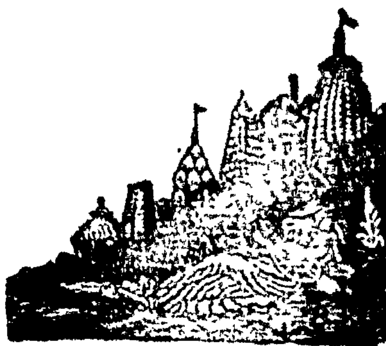
लाचार मैं भी उसके साथ जानेके लिये सहर्ष तय्यार हो गया। इस समय उस स्त्रीकी बातोंने मेरे हृदयपर ऐसा अधिकार जमा लिया था, मेरा कौतूहल इतना बढ़ा दिया था, कि मुझमें कुछ विचारनेकी शक्ति न रह गई थी।

जाते जाते राहमें मैंने पूछा,—"अच्छा, अपना नाम तो बता दो।"

वह रमणी बोली,—"क्या तुम अपनी उत्सुकता नहीं रोक सकते? मेरा नाम मायावती है। विशेष हाल तुमको वहीं चलकर बताऊँगी।" इतना कहकर उसने तेजीसे पैर बढ़ाये और मैं भी उसका अनुसरण करता हुआ, उसके पीछे चला। माया-

उसीने एक बहुत ही बड़े मकानके फाटकोंमें आकर मुझे बैठाया। परन्तु यह क्या ! ज्योंही उसने अपनी पालकीका दरवाजा खोला कि मैंने अपना मुँह खोला, त्योंही न जाने कहाँसे कई सुन्दर मनुष्योंने बड़ी सावधानतासे मुझपर आक्रमण किया।

उनमेंसे एकने बड़ी फुर्तीसे एक चादर मेरे मुँहपर डाल दी। उस चादरसे एक प्रकारकी कड़ी गन्ध आ रही थी, जिसके प्रभावसे मैं उसी समय बेहोश हो गया और फिर मुझे तन-बदन की भी सुधि न रही।



दूसरा परिच्छेद.

दूसरी चाल।

जिस समय मेरी बेहोशी दूर हुई, उस समय मैंने अपनेको अन्धकारमयी काल कोठरीमें कैद पाया। उस कोठरीमें इतना अन्धकार फैला था, कि यह भी न मालूम होता था, कि यह दिन है या रात। बेहोशी इतनी कडी दी गई थी, कि मेरा शरीर अब भी शिथिल सा हो रहा था। बेहोशी दूर होनेपर मैंने अपनी जय टटोली, तो घडी और जो कुछ रुपये तथा और सामान थे, उनका भी पता न था। बडी कठिन समस्यामें पड गया। मन ही मन विचारने लगा, यह तो अच्छी मायामें आ फँसा। वाहरी मायावती!

मायावतीका नाम स्मरण आते ही मनमें एक प्रकारका कौतूहल हुआ। मनमें सन्देह हुआ, कि कहीं यह मायावती भी तो शत्रुओंमें नहीं मिली हुई है! इस मायापुरीके साथ इस मायावतीके नामका भी कुछ सम्बन्ध मालूम होता है, परन्तु हृदय इस बातपर विश्वास करनेके लिये तय्यार न हुआ। न जाने उसमें क्या आकर्षण शक्ति थी, कौनसी मनमोहकता थी, कि उसकी ओरसे बुरा विचार मनमें यदि उत्पन्न भी होता था, तो ठहर नहीं सकता था। इसीलिये जिस समय मनमें मायावती पर सन्देह हुआ, उसी समय मानों किसीने कहा,—"नहीं, नहीं, उसपर अविश्वास न करो।"

ठीक इसी समय किसीने मानों मेरे कमरेकी कुण्डी खोली। साँकलकी झन झनाहटसे ही मुझे मालूम हो गया, कि कोई इस कमरेमें आना चाहता है। मैं सावधान होकर एक कोनेमें बैठ गया। तुरत ही दरवाजा खोलकर एक मनुष्य भीतर आ पहुँचा। आनेवाला पुरुष नहीं, वलिक स्त्री थी। दरवाजा खुलनेसे यह भी मालूम हो गया, कि समय दिनका नहीं, बल्कि रातका है। तो क्या मैं दस घण्टोंतक वेहोश पड़ा रहा?

वह स्त्री धड़धड़ाती हुई भीतर चली आई। अब मैंने देखा, कि वह भी सुन्दरी है पर सुन्दरतामें वह मायावतीकी दासी सी मालूम होती है। दासी एक हाथमें भोजनकी थाली लिये थी, दूसरेमें जलका लोटा।

उसने ये चीजें मेरे सामने रख दीं और एक ओर हटकर इस आशामें खड़ी हो गई, कि मैं भोजन कर लूँ, तो वह सामान ले जाये, परन्त मैं जिस विपत्तिमें पड़ा था, हृदयमें जैसी उथल पथल मची हुई थी उसने भूख प्यास सब मार दी थी। अत मैंने उसकी ओर देखकर कहा,—"तुम कौन हो?"

दासीने कोई उत्तर न दिया। मानों उसमें बोलनेकी शक्ति ही न थी।

मैंने फिर पूछा,—"कृपाकर इतना तो बता दो, कि मुझे इस तरह फँसा रखनेवाला कौन है?"

उत्तर नदारद! मैंने मन ही मन कहा,—क्या यह सचमुच ही गूँगी है?

मैंने फिर कहा,—"यह भी न सही, केवल यही बता दो, कि मायावती कौन है ?"

इस बार दासी मुस्कुराई, परन्तु कुछ बोली नहीं। अब मैं कुछ पूछना अरण्य-रोदन समझ हाथ मुँह धोकर थालीपर बैठ गया। परन्तु ज्योंही मैंने भात सानना आरम्भ किया, त्योंही उसमेंसे कागजका एक पुर्जा मिला। मुझे भोजन करते देखकर वह दासी वहाँसे चली गई और बाहरसे फिर साँकल चढाती गई। मुझे यह अवसर अच्छा मिल गया। मैंने पुर्जा खोलकर पढा। यह लिखा था—"देखना, सावधान रहना। तुम शत्रुओंके फेरमें पड़ गये हो, परन्तु में शीघ्र ही तुम्हारा उद्धार करूँगी।

तुम्हारी—

मायावती—"

पुर्जा पढकर बडी प्रसन्नता हुई। मैंने मन ही मन कहा—मायावतीमें जैसा रूप है वैसा ही गुण है। मेरा उसका कभी-का परिचय नहीं है, इतनेपर भी वह मेरे लिये कष्ट सहनेको तय्यार है। देखा जायगा, जो भाग्यमें बदा होगा, सो होगा। पत्रने मेरे शरीरमें प्राण डाल दिये। मैंने आनन्दसे भोजन किया। भोजनसे शरीरमें कुछ बल भर आया। मैं निश्चिन्त होकर एक ओर बैठ गया।

इसी समय फिर दरवाजा खुला और एक मनुष्य उस कमरे-में आया। उसको देखकर मैंने कहा,—"भाई! तुम भी मनुष्य

हो और मैं भी। क्या तुम बता सकते हो, कि मैं इस समय कहाँ कैद हू ?"

उसने तीव्र दृष्टिसे मेरे चेहरेकी ओर देखकर कहा,—"चुप रह मूर्ख! जानता नहीं, कि यह मायापुरी है ?"

उसका यह उत्तर सुनकर मुझे बडा क्रोध आया। परन्तु क्या करता ? मन मसोसकर समयकी प्रतीक्षा करता हुआ बैठा रहा। इसके बाद ज्योंही वह जूठे बर्तन उठानेके लिये झुका, त्योंही मैं उसपर बाजकी तरह टूट पडा। उसे इस बातकी आशा न थी, इसलिये सहजमें ही वह मेरे वशमें आ गया। मैं उसे नीचे पटककर उसकी छातीपर चढ़ बैठा। इसके बाद एक हाथसे उसका गला दबाकर मैंने उसके हाथ पैर उसकी धोतीसे कसकर बाँध दिये और उसके मुँहमें कपडा भर, उसकी कमरसे पिस्तौल निकालकर चल पडा।

अब मैं उस कमरेकी जंजीर बाहरसे चढ़ाकर उस मकानसे निकलनेकी चेष्टामें लगा। यह मकान दुतल्ला था। नीचेका खण्ड बिल्कुल ही अन्धकारमय हो रहा था, परन्तु ऊपरके खण्डके एक कमरेसे आलोककी एक क्षीण रेखा आती दिखाई देती थी। बाहर निकलने और स्वतंत्रताकी हवाके लगनेपर कष्टका समय भूल गया। मनमें कौतूहल जाग उठा। अतः मैं ऊपर जानेके लिये सीढी खोजने लगा। थोड़ी ही देरके परिश्रमसे मुझे सीढ़ी मिल गई और मैं बडी सावधानीसे पैर रखता हुआ, उसी कोठरीकी ओर चला जिसमेंसे रोशनी आती दिखाई देती थी।

मै दबे-पाँव उस कोठरीके दरवाजेपर जा पहुँचा, परन्तु वहाँ जो दृश्य दिखाई दिया; उससे कलेजा काँप उठा। मैंने देखा, कि कई भीषणकाय मनुष्य उस कोठरीमें बैठे हैं, बीचमें एक सुन्दरी स्त्री पड़ी हुई है। एक मनुष्य एक हाथसे उसका गला दबाये है और दूसरे हाथमें एक लम्बा चमकीला छूरा ताने बैठा है।

यह देखकर मैं समझ गया, कि अब कुछ ही क्षणमें इसका प्राणान्त हुआ चाहता है। परन्तु इसकी रक्षा कैसे की जाये? इस समय यह दृश्य देखकर मैं अपनी विपत्ति भूल गया। कोठरीका दरवाजा भिडकाया हुआ था। उसके दरारोंसे यह दृश्य देखकर मैं अपनेको सम्हाल न सका और पिस्तौल हाथमें लिये धडधडाता हुआ, उस कमरेमें घुस गया। जानेके साथ ही मने कसकर उस मनुष्यको लात मारी। वह लुढककर नीचे गिर पडा। साथ ही वह स्त्री भी झपटकर उठ खडी हुई। यह काम इतनी तेजीसे हो गया, कि शत्रुओंको कुछ करनेका अवसर ही न मिला। वे एकाएक मुझे वहाँ देखकर घबडा गये; परन्तु इसके बाद ही उन सबोंने मुझपर आक्रमण करना आरम्भ किया। मैं अकेला और वे कई थे। अब क्या करूँ? कुछ सोचनेका भी अवसर न था। क्षणभर बाद ही एक दुर्दान्त मनुष्य हाथमें पिस्तौल लेकर मेरी ओर झपटा। उसी क्षण मैं निर्जीव होकर भूमिपर गिर पडता, परन्तु ज्यों ही उसने मेरी खोपडीसे निशाना साधकर पिस्तौल दागना चाहा, त्योंही एकाएक उसी

कर मैं दीवारसे सट गया। वह मनुष्य दरवाजा छोड़ मुझे पकडनेके लिये दौडा। बस, यह मौका मुझे अच्छा मिल गया और मैं उसे एक वार जोरसे धक्का दे दरवाजा खोलकर तेजीसे भाग निकला। वह स्त्री भी मेरे साथ बाहर निकल आयी।

परन्तु अब भी निश्चिन्ती न थी। किवाड़ खुलनेका शब्द वे सुन चुके थे। इसीलिये वे तेजीसे बाहर निकलकर हमलोगोका पीछा करनेको तय्यार हो गये। मैं भागता जाता था, वह स्त्री भी मेरे साथ ही भागती जाती थी। अब पीछेसे दनादन गोलियोंका छूटना आरम्भ हो गया था। दौड़ते-भागते हमलोगोंका दम फूल रहा था। यह अवस्था देखकर मैं जमीनपर लेट गया। मेरी देखा-देखी वह स्त्री भी लेट गई और हमलोग एक मकानके चबूतरेसे सट गये। शत्रु हमलोगोंकी यह चाल न समझ सके और यह समझकर, कि हमलोग आगे बढ़ आये हैं, वे उसी ओर दौडते चले गये। अब निश्चिन्ती मिली। उनके आगे बढ़ जानेपर हम दोनों एक गलीमें घुसकर तेजीसे एक ओरको भागे। इसी तरह भागते हुए हमलोग एक मैदानमे जा पहुँचे।

इस स्थानपर आकर हमलोग सुस्तानेके लिये एक स्थानपर बैठ गये। अपनी सगिनीका परिचय जाननेकी बडी उत्सुकता हो रही थी। अत अब निराला देखकर मैंने उससे पूछा—"तुम कहाँकी रहनेवाली हो? और इन शत्रुओंके फेरमें कैसे जा फँसी थीं?"

वह स्त्री बोली,—"मेरा नाम शान्ति है, मैं इसी नगरके एक

उच्च वंशकी कन्या हू, मेरे पिताका नाम धर्म्मसिह है, तथा ”

आगे वह कुछ और कहना ही चाहती थी, कि इसी समय सामनेसे वही मायावती आती हुई दिखाई दी। मायावतीको देखते ही वह फुर्त्तीसे एक ओरको भाग खडी हुई और मैं किंकर्त्तव्य विमूढ सा मायावतीका अद्भुत वेश देखता हुआ वैठा रह गया।



तीसरा परिच्छेद

फिर मायावती।

मायावतीका वेश इस समय बिल्कुल ही निराला था। वर्षा दिनोंमें संध्याके समय अस्तगामी सूर्यकी किरणें काले बादलों किनारे किनारे जैसी प्रभामयी और मनोहर दिखाई देती अथवा घने मेघोंके पीछे छिपे हुए इन्द्रधनुकी रंगबिरंगी किरण जिस तरह बादलोंके किनारे या एक ओर कितने ही प्रकार रंगोंकी आभा दिखाकर दर्शकोंको उस लीलामयकी अनोखी सृष्टि छटा दिखाती हैं, उसी प्रकारसे मायावतीके शरीरपरकी पटापट रंगकी किनारीदार बढ़िया रेशमी साड़ी भी इस समय अपन अनोखी सौन्दर्य छटा दिखा रही थी। मायावती सदा अपने भ्रमर-कृष्ण घुघराले केश खुले रखती थी। इस समय तेजीसे झपटकर आनेके कारण उसके कितने ही लहराते हुए केश वायुके वेगसे उड़कर उसके चमकीले मुख मण्डल तथा उन्नत उरोजोंप आ पड़े थे। जिस समय वह मेरे सामने आकर तनकर खड़ी हुई और उसने अपनी रत्नजटित उँगलियोंसे वे केश हटाये, उस समय ऐसा मालूम हुआ, मानों उज्ज्वल शशाङ्कपरसे कृष्ण जलद-खण्ड हट गया। उसके एक हाथमें तलवार थी। वह चमचमाती तलवार मानों बता रही थी, कि मुझे अबला न समझो, समयपर मैं सबला भी हो सकती हू अथवा सौन्दर्यपूर्ण गुलाबकी रक्षा

जिस तरह काँटे करते हैं, अथवा सुगन्धमय चन्दनकी जिस तरह विषधर भुजङ्ग रक्षा करते हैं, उसी तरह मानों अपने सौन्दर्य-राशिकी रक्षा करनेके लिये मायावतीने भी यह तलवार ले ली थी। आकाशमें उज्ज्वल चाँदनी, पृथ्वीपर चारों ओर हरे भरे शस्यपूर्ण लहलहाते खेत, उनके बीचमें शृङ्गार और रौद्रका अद्भुत समावेशकर, हाथमें तलवार चमचमाती चतुरा मायावती ऐसी भली मालूम होती थी, मानों साक्षात् वनदेवी मेरे सामने आकर खडी है।

एकाएक मायावतीको उस स्थानपर आते और उस रमणीको भागते देखकर मैं चौंक पडा। समझ न सका, कि मायावती कैसे जान गई, कि मैं यहाँ हूँ और क्यों शान्ति उसे देखकर भाग गई? मैं अभी इतना सोच ही रहा था, कि मायावतीने मेरे पास आकर कहा,—"तुम्हारे लिये मैं बहुत चिन्तित हो रह थी। तुम कैसे निकल आये?"

मैंने कहा,—"मैं ईश्वरकी दयासे छूट आया।"

मायावती बोली,—"मेरा पत्र मिला था?"

मैंने कहा,—"हाँ, मिला था।"

मायावतीने मेरी ओर बडे ही नेह भरे नयनोंसे निरखकर कहा,—"बडी प्रसन्नता हुई। ईश्वरकी तुमपर बडी दया है। अच्छा, यह स्त्री कौन थी?"

मैं मन ही मन विचारने लगा—मायावतीको उसका नाम बताऊँ या नहीं। वह इसे देखकर भाग क्यों गई? इसमें अव-

श्य ही कोई रहस्य मालूम होता है। मुझे कुछ विचारते देखकर मायावती बोली,—"क्या सोच रहे हो?"

मैं चौंक पडा। बोला,—"कुछ नहीं।"

मायावती बोली,—"फिर बताते क्यों नहीं, कि वह स्त्री कौन थी?"

न जाने क्यों मायावतीके सामने मैं कुछ दूसरा ही हो जाता था। मैं अब उससे छिपा न सका। बोला,—"उसका नाम शान्ति है। वह डाकुओंके फेरमें जा फँसी थी। अपने साथ ही उसे छुडा लाया हूँ।"

मायावती बोली,—"शान्ति और दस्युओंके कुचक्रमें! आश्चर्य्य!!

मैंने कहा,—"तुम्हारी इस मायापुरीकी लीला तुम्हीं जानो।"

मेरा उत्तर सुनकर मायावती मुस्करा दी। मैंने कहा,—"आज यह लोहेकी तलवार किस लिये हाथमें ली है? तुम्हारे नेत्रोंमें तो असि, कटार, फन्दा और तीर चारों ही वर्त्तमान हैं।

मायावती ठठाकर हँस पडी। उस निस्तब्ध रात्रिमें उसका ठहाका पर्वत्रगात्रसे टक्कर खाकर जोरसे प्रतिध्वनित हो उठा। इसके बाद वह मेरे पास आकर बैठ गई और बोली,—"तलवार क्यों ली है, बताऊँ? आज इच्छा है, कि तुम्हें इस मायापुरीकी अद्भुत लीला दिखाऊँ। शायद तुम किसी फेरमें जा पडो, इसीलिये यह तलवार ली है। क्या चलोगे?"

मैंने कहा—"तुम्हारी बात टालनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, चलो।

इसके बाद हमलोग वहाँसे उठ खड़े हुए। मायावतीने कहा,—"परन्तु, बहुत सावधान रहना, नहीं तो सहजमें ही धोखेमें जा फँसोगे ?"

मैंने कहा,—"तुम साथमें हो, फिर क्या चिन्ता है ?"

अब हमलोग तेजीसे एक ओरको चल पड़े। कुछ दूर आगे बढ़नेपर मायावतीने एक मकानकी ओर इशारा किया। उस मकानकी खिड़कियाँ खुली हुई थीं, जिनसे दिव्य प्रकाश निकल रहा था। साथ ही सगीतकी सुमधुर ध्वनि भी सुन पड़ती थी। मायावतीने कहा,—"चलो, एकबार ऊपर चलकर देख आवें। ऐसा दृश्य तुम्हें कहीं दिखाई न देगा। परन्तु खूब सावधान रहना।"

नीचे दरवाजेपर पहरेका कोई प्रबन्ध न था। हमलोग धड़-धड़ाते हुए ऊपर चले गये। मकान बड़ी उत्तमतासे सजाया हुआ था। चारों ओरसे सुगन्ध आ रही थी। अभी मैं ऊपर गया ही था कि एक ओरसे गानेकी मधुर-ध्वनि सुन पड़ी। बड़ी ही मुग्धकर मधुर-ध्वनि थी। मैं मन्त्र-मुग्ध सर्पकी भाँति उसी ओर खिंच चला। वहाँ जाकर जो दृश्य देखा, वह अपने जीवनमें भूलनेका नहीं। एक बड़े ही सुसज्जित कमरेमें तकियेके सहारे एक परमा सुन्दरी रमणी बैठी हुई थी। उसका सौन्दर्य बड़ा ही सुन्दर, बड़ा ही मन-मोहक था। मायावती भी बड़ी सुन्दरी थी, परन्तु उसे यदि शरद्-सरिताकी शान्तधारा कहें तो यह लहराती हुई बरसाती नदी थी। अङ्ग प्रत्यङ्गसे सौन्दर्यकी प्रभा

फूटी पड़ती थी—मनको खींचनेवाला बड़ा ही अपरूप रूप था। उसका वह लावण्य देखकर मैं अपनेको भूल गया। यह भी भूल गया, कि मैं कहाँ हू और क्या कर रहा हूँ। एकदम उसकी ओर टकटकी लग गई। उस सुघड़ सुन्दरीका ध्यान किसी दूसरी ही ओर था! मानों वह अपनी सुन्दरी सखियोंके मुखसे तरंगित संगीत-लहरीमें स्नान कर रही थी। यह स्थान मानों सौन्दर्यका अखाडा हो रहा था। सभी ओर रूप-शिखा प्रज्वलित थी। और मैं पतङ्गके समान हो रहा था। अभी कुछ ही क्षण मैंने इस तरह देखा था, कि मानों किसीने मेरे कानमें आकर कहा—"सावधान!" परन्तु जो दृश्य आँखोंके सामने था, उससे कौन सावधान होता है? दूसरी बार फिर यही शब्द सुन पडा। मालूम हुआ, मानो स्वामी विवेकानन्द सावधान कर रहे हैं, परन्तु रूपका प्रलोभन यदि सहज होता तो पतङ्ग क्यों दीप-राशिमें कूदकर प्राण गँवाता? मैं अपना पराया, सब भूलकर उस रूप-सुधाका पान करने लगा।

कितनी देरतक मैं उस मनमोहिनीकी रसीली रूप-सुधाका रसास्वादन करता रहा, सो मालूम नहीं, परन्तु एकाएक किसी-की चीत्कार-ध्वनिसे मैं चौंक उठा। चौंककर चारों ओर देखने लगा तो मायावती गायब है! इसी समय एक बड़ा सुन्दर नवयुवक एक ओरसे आता दिखाई दिया।

युवकके चेहरेपर सुकुमारता और लावण्यकी खान थी। गोरा रँग, हृष्ट-पुष्ट शरीर, देखनेमें कान्तिमान और बड़ा ही सुन्दर था।

उसे देखते ही मेरा माथा ठनका। मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि कदाचित् यह उस रमणीका कोई आत्मीय है। यह विचार मनमें आते ही भय उत्पन्न हुआ। अपकर्मसे भय होता ही है। मैंने दूसरेके घरमें प्रवेशकर, दूसरेकी स्त्रीपर दृष्टि डाली थी—अपराधी तो था ही। अस्तु, मैं वहाँसे भागना ही चाहता था, कि उसने ललकारकर कहा—"पकडो, इस अभागेको।"

इसके बाद ही कई मनुष्य मुझपर न जाने कहाँसे टूट पडे। वह युवक भी तलवार निकालकर मेरी ओर झपट पडा। मैं भी सम्हलकर लडनेके लिये तय्यार हो गया, परन्तु उनसे बच न सका। उसके साथियोंने मुझे पकड़ लिया।

इस बार उस नवयुवकने कहा,—"तुमने किस अधिकारपर मेरे घरमें प्रवेश किया? क्या तुम नहीं जानते, कि मैं कौन हू?"

मैंने कोई उत्तर न दिया। अपने कर्म्मपर घृणा तथा लज्जा उत्पन्न हुई। उसने मुझे चुप देखकर अपने साथियोंसे मुझे कैदखानेमें ले जानेके लिये कहा और मैं भी लाचार होकर उनके पीछे पीछे चला।

मुझे सीधेसे चलते देखकर उस युवकके सिपाही कुछ असावधान हो गये। यह कैदखाना नीचेकी ओर एकतलेमें था। वे मुझे अपने साथ लेकर सीढीसे नीचे उतर रहे थे, सीढी-पर अन्धेरा पडता था। मैंने पैर अडाकर एक सिपाहीको धक्का दिया, वह सम्हल न सका। धडधडाकर नीचे गिरा। मुझे दो मनुष्य पकडे हुए थे, उनमेंसे एकने उसे पकडनेके लिये

बढ़ाया। यह अवसर मुझे अच्छा मिल गया। मैंने उसे भी झटका दिया, वह भी गिरा और उनके पीछे मैं भी धडधडाता हुआ नीचे उतर आया। नीचे फिर उन सबोंने मुझे पकड़नेकी चेष्टा की, परन्तु मै झपटकर दरवाजेके बाहर निकल आया। इसके बाद एक बार उस मकानको लक्ष्यकर मैंने अच्छी तरह देख लिया और फिर वहाँसे तेजीसे भागा।

वे मनुष्य भी मुझे भागते देखकर मेरे पीछे दौड़े। बहुत दूर-तक इसी तरह दौड़ा-दौड हुई। अन्तमें मैं भागनेमें उनसे तेज निकला और अन्धकारमें एक ओर छिप रहा। वे डाकू मुझे न पाकर लौट गये।

मैं वहासे भागता हुआ, बहुत दूर जङ्गलमें निकल गया। इस समय सवेरा हो चला था। मैं उसी स्थानपर विश्राम करनेके लिये बैठ गया।

दूसरे दिवस सवेरे अपने नित्यकर्मसे निश्चिन्त होकर मैं फिर इसी फिराकमें चला, कि आज दिनमें एक बार उस मकानको अच्छी तरह देख लूँ और इस मायापुरीको अच्छी तरह देखकर फिर शत्रुओंको पकड़नेकी चेष्टा करूँ।

यह सोचकर मैं उठ खड़ा हुआ। आज दिनभर मायापुरीमे इधर उधर घूमता रहा, परन्तु उस मकानका पता न लगा। एक बात यह अवश्य देखी, कि यद्यपि सब काम हो रहे हैं, परन्तु अधिवासियोंके चेहरेपर एक प्रकारका आतङ्क छाया हुआ है। मैंने कितने ही मनुष्योंसे इसका कारण पूछा, परन्तु कोई भी

ठीक ठीक उत्तर देनेको प्रस्तुत नहीं हुआ। यह देखकर मुझे और भी विस्मय हुआ। मैंने एक मनुष्यको एकान्तमें बुलाकर इसका कारण पूछा। उसने डरते डरते कहा,—"चुप रहिये। आप नहीं जानते, कि इस डाकू दलके दूत कितने वेश बनाये, इधर उधर घूमते और शत्रुओंका पता लगाते फिरते हैं। आप इस नगरीसे अपरिचित मालूम होते हैं। अच्छा हो, यदि सन्ध्या होनेके पहले ही आप यहाँसे चले जायें।"

मैंने कहा,—"तुम इतना क्यों डर रहे हो? यहाँ तो हम-लोगोंकी बातें कोई सुनता नहीं है।"

वह मनुष्य कोई उत्तर न देकर वहाँसे झटपट एक ओरको चला गया। मैंने उसको कितना ही पुकारा, परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

इस समय सध्या होनेमें कुछ ही देर थी। आज अपने निवासके लिये एक स्थान स्थिर करना भी अत्यावश्यक था, क्योंकि कोई ठिकाना नहीं, कि यहाँ कितने दिवस लग जायें। इसलिये मैं किसी एकान्त स्थानमें आश्रयस्थल खोजने लगा। बहुत परिश्रम करनेपर शहरके प्रारम्भ भागमें ही एक अच्छा मकान मिल गया। यह मकान ऊँचेपर और बहुत मजबूत गोलाकार बना हुआ था। एक मासका अग्रिम किराया देकर मैंने वह मकान ले लिया और बाजारसे आवश्यक सामान खरीद कर उसमें रख दिया। अब मैं एक प्रकारसे निश्चिन्त हुआ। उस रातको बाहर निकलनेका विचार न था। अत मैं निश्चिन्त

मनसे कुछ भोजन इत्यादि कर वहीं सो गया।

मैं रात्रिके नौ बजेके लगभग अपने बिस्तरेपर लेटा था। कितने ही प्रकारके विचार मनमें उठते और पानीके बुलबुले-की तरह विलीन हो जाते थे। मायावतीका रह रहकर स्मरण हो आता था और सबसे बड़ी फिक्र यह जाननेकी थी, कि वह रूपवती कौन है? इसी तरह कितनी ही बातें सोचता हुआ, मैं सो गया।



चौथा परिच्छेद ।

खोज ।

रात्रिभर स्वप्नमें मायावती तथा उस रूपवतीको ही देखता रहा। आह! सौन्दर्य्यका भी कितना विलक्षण प्रभाव होता है! सुना है, सौन्दर्य्य स्वर्गका पदार्थ है। स्वर्गकी सभी सामग्रियाँ अति सुन्दर, अति मनोहर, अति उज्ज्वल वर्णित हुई हैं—अत: इसमें कोई सन्देह नहीं कि सौन्दर्य्य ही स्वर्गका नन्दन-कानन हैं। परन्तु यदि सौन्दर्य्य वास्तवमें स्वर्गीय पदार्थ है, तो उसे देखकर मानव हृदयमें कुविचार क्यों उत्पन्न होते हैं? लालसा क्यों जागरित हो जाती है? सौन्दर्य्य राशि बुद्धि, विचार और विवेकको क्यों हर लेती है? उत्तर क्या दूँ, अपना संस्कार। सच ही तो, किसी सौन्दर्य मयी सजीव प्रतिमाको देखकर एक महात्मा उसमें महिमामयी जगन्माताका मनोहर प्रतिबिम्ब देखता और जगन्नियन्ताको कोटि कोटि प्रणाम करता है पर पापी अपनी पाप-वासना पूर्ण करनेकी दुरभिसन्धि ढूढ़ने लगता है।

कुछ भी हो, रात्रि उन दोनोंके सम्बन्धमें विचार करनेमें ही बीत गई। जागृतिमें नहीं, स्वप्नमें। सवेरा होते ही मैंने निश्चय किया, आज उस घरका पता लगाकर उस आदमीको पकड़नेकी चेष्टा करनी होगी जिसने मुझपर आक्रमण किया था। अत कुछ जलपानकर मैं वहाँसे निकल मायापुरीकी गलियोंमें फेरा लगाने लगा।

समूची मायापुरी उत्तरसे दक्षिण लम्बाईमें कुछ अधिक और चौड़ाईमें कुछ कम बसी हुई है। नगरीका निर्माण वडे ही कौशलसे किया गया था। नगरके उत्तर भागमें मानव-शरीरके मस्तककी भाँति अपना मस्तक ऊँचा किये एक पहाडी खड़ी है। पहाडीपर कितने ही प्रकारकी मनोहर लतायें तथा जङ्गल थे। उसके नीचेकी ओर एक नदी वह रही थी। उसमें दो छोटी नदियाँ दो ओरसे आकर और भी मिल गई थीं। इसके वाद वड़ा लम्बा चौडा मैदान था, जो नदीके कटावके कारण कुछ अर्द्धचन्द्राकार सा हो गया था। इसके वाद दो वडे वड़े सरोवर दो ओरको थे, जिनके वीचमें एक पतली सडक थी, जिसने दोनों सरोवरोंको अलग अलग कर दिया था। इन दोनों सरोवरोंमें स्फटिकके समान जल लवालव भरा हुआ था। इनसे सिंचाईका भी काम लिया जाता था। इसके वाद नगर आरम्भ होता था, जो दुतरफा वसा हुआ था। इसमें सभी प्रकारके मनुष्योंकी वस्ती दिखाई देती थी। नगरी सब तरहसे सम्पन्न मालूम होने-पर भी ऐसा मालूम होता था, कि इसपर विषादकी छाया पड़ी हुई है। मुझे राह तो कोई मालूम थी ही नहीं, परन्तु उस मकानका पता लगाना अत्यन्त आवश्यक था, जिसमें कल रात्रिके समय मैं गया था। अत दिनभर नगर-परिभ्रमण करता रहा। सध्या होते होते मैंने उस मकानका पता लगा लिया। यह मकान भी नगरके आरम्भ भागमें ही एक गलीमें था। वडा परि-श्रम करनेपर मैंने उस मकानका पता पाया।

जिस समय मैं उस मकानके पास पहुँचा, उस समय संध्या हो चुकी थी। आज उसमें इस समय सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने इधर उधर कई मनुष्योंसे पूछा, कि यह किसका मकान है? परन्तु कोई भी उत्तर देनेके लिये तय्यार न हुआ।

अभी पूरी तरह अन्धकार न हुआ था। अत' मैं कुछ देरतक इधर-उधर घूमता रहा। आज भी उस मकानका दरवाजा खुला हुआ था। बाहर कोई पहरेदार नही था। अन्धेरा हो जानेपर मैं दबे पाँव उस मकानमें घुस गया। मकानके निचले खण्डमें घोर सन्नाटा छाया हुआ था। अत एकबार सावधानीसे निचले खण्डपर दृष्टि डालकर मैं ऊपर चढा। मकान दुतल्ला था। ऊपर जाते ही मेरी दृष्टि सामनेके कमरेकी ओर पडी। मैंने देखा, कि उस कमरेमें रोशनी भरपूर हो रही है और एक बडे आईनेके सामने वही रमणी बैठी हुई है। उसकी एक सहेली उसके पीछे बैठकर उसके केश गूँथ रही है। इस समय मैं मन ही मन विचारने लगा, यह कैसा काण्ड है? बाहर पहरेका कोई प्रवन्ध नहीं अथच ये रमणियाँ इस तरह स्वच्छन्द भावसे यहाँ रहती हैं।

इतना सोचता हुआ, मैं वहाँसे आगे बढकर दूसरे कमरेकी ओर जाना ही चाहता था, कि एक युवती एक ओरसे झपटकर निकली और मेरे पास हीसे एक ओर जाना चाहती थी, कि उसका हाथ मेरे शरीरसे लग गया। यह स्थान छोटा था, जगह बहुत कम थी। मैंने समझा, कि अब सब गुड़ गोबर हो गया। मैंने झपटकर अपने एक हाथसे उसका मुँह बन्द कर दिया।

उसे चिल्लानेका भी अवसर न मिला। क्योंकि जेबसे क्लोरो-फार्मकी शीशी निकालकर मैंने उसे सुँघा दी और सावधानी-से उसी जगह एक खम्भेसे बाँध, एक ओरको अग्रसर हुआ। परन्तु मनमें खटका हो गया।

इसके बाद कान लगाकर मैं आहट लेने लगा, कि कहींसे कोई शब्द आता है या नहीं। परन्तु तुरन्त ही एक स्त्री हाथमें लालटेन लिये, "इतनी देर हो गई, कहाँ चली गई" कहती हुई, निकल आई। मैं पहलेसे ही सावधान था। एक ओरको छिप गया और ज्यों ही वह आगे बढ़ी, त्योंही मैंने पीछेसे क्लोरो-फार्मसे तर रूमाल उसकी नाकसे लगा दिया। वह बेहोश होकर गिरना ही चाहती थी, कि मैंने पीछेसे उसे सम्हाल लिया और उसी स्थानपर उसे बाँधकर अब मैं उधर ही चला, जिधरसे वह स्त्री आई थी। इसके बाद क्रमश समूचा मकान ढूढ आया; कहीं किसी पुरुषका नामोनिशान न दिखाई दिया। मैं और भी विस्मयमें पडा। विचारने लगा, वह पुरुष कौन था, जिसकी आज्ञासे मैं पकड लिया गया था?

अभी मैं एक स्थानपर खड़ा होकर यह सोच ही रहा था, कि सामनेसे वही मनमोहिनी रमणी जो केश गूँथ रही थी, आती हुई दिखाई दी। अब कहीं छिपनेका स्थान नहीं था। इस बार मैं साहसकर उसके सामने जा खडा हुआ और पिस्तौल हाथमें ले, उसे दिखाकर बोला—"सच सच बताओ, यह मकान किसका है और तुम कौन हो?"

मेरे हाथमें भरी हुई पिस्तौल देखकर भी वह स्त्री न डरी। बोली,—"आप इतना घबडाये हुए क्यों हैं? यहाँ इस समय कोई पुरुष नहीं हैं, डरनेको कोई बात नहीं है। मैं तो स्वय ही आपसे मिलनेके लिये व्यग्र हो रही थी।"

मैंने कहा,—"तुमने मुझे कहाँ देखा था, जो मुझसे मिलनेके लिये व्यग्र हो रही थीं?"

वह स्त्री मुस्करा दी। फिर वडे कोमल स्वरमें बोली,—"मुझे वडा दु ख है, कि आपपर कल अत्याचार किया गया। क्षमा कीजिये।"

मैंने कहा—"परन्तु तुम कौन हो, तुम्हारा उसका क्या सम्बन्ध है?"

रमणी बोली,—"मेरा नाम रति है।"

उसके मुँहसे उसका नाम सुनकर पुराणोंमें कथित कामदेवकी स्त्री रतिका रूप मानों मेरी आँखोंके सामने आ खडा हुआ। मैं मन-ही मन उन दोनोंकी सुन्दरताकी तुलना करने लगा। रतिको मैंने देखा न था, परन्तु यह ठीक मालूम होता था, कि रति मानों इस समय सजीव होकर मेरे सामने खडी है।

कुछ क्षणतक उसकी ओर देखनेके बाद, मैं मन ही मन बोला—"गुलाबमें काँटा होता है, केवडेके वनमें विषधर सर्प रहते हैं, सुन्दर स्वच्छ तुषारमें गला देनेकी शक्ति रहती है, प्रकृतिके क्रीडा-स्थल सुरम्य वनोंमें हिंसक जन्तु होते हैं, तो क्या ठिकाना कहीं इस मनमोहक रूपमें भी छलनाके कीट घुसे हों। यह सोच-

सुन्दरीको जिस तरह वस्त्र, आभूषणोंसे सुसज्जित और ठाट-बाटसे देखा था, उससे तो मालूम होता था, कि अत्यन्त सुखी होगी, परन्तु आज उसकी बातें सुनकर मेरा दिमाग घूम गया। यह कैसा रहस्य है !!

मैंने कहा,—"सुन्दरी ! तुम्हें क्या दुःख है ?"

रति एक ठण्डी साँस लेकर बोली,—"मैं इसी मायापुरीके अधिवासी एक धनी कुलकी एकमात्र सन्तान हूँ। मेरे पिता बड़े ही उदार तथा उच्च कोटिके मनुष्य थे। उन्होंने मुझे सुखी रखनेके लिये सब तरहके उपाय किये। अपनी शक्तिभर उन्होंने कोई भी बात उठा न रखी। मेरा विवाह एक बड़े ही सुन्दर, सज्जन तथा सर्वगुण सम्पन्न युवकसे निश्चित हुआ। आह ! उनकी मनमोहिनी मूर्त्ति मानों अभीतक मेरी आँखोंके सामने खड़ी है। इसके बाद ठीक विवाहवाले दिवस, रात्रिके समय, जब मैं अपने कमरेमें सो रही थी, वही कामरूपसिंह, जिसने उस दिन आपपर अत्याचार किया था, न जाने किस तरह एकाएक मुझे उठा लाया, तबसे मैं बराबर यहाँ कैद हूँ। वह नित्य यहाँ आकर मुझे सताता है, नित्य प्रति ही मुझपर अत्याचार करनेकी धमकियाँ देता है और नित्य प्रति ही मुझे अपनेसे विवाह करनेके लिये नाना प्रकारके प्रलोभन देता है, पर हृदय क्या कभी दो मनुष्योंको दिया जा सकता है ?"

मैंने कहा,—"नहीं, कदापि नहीं।"

इसी समय जोरसे ठहाकेकी आवाज सुन पड़ी। ऐसा

मालूम हुआ मानों कोई मेरे पीछे खडा होकर हँस रहा है। तुरन्तही पीछेसे किसीने कहा,—"हाँ, हो सकता है?"

मैंने घूमकर पीछेकी ओर देखा। देखते ही काँप उठा,—"मैंने देखा, कि कामरूपसिंह एक हाथमें नङ्गी तलवार तथा दूसरेमें पिस्तौल लिये ठीक मेरे पीछे खडा है। उसके पास ही उसके और भी कई साथी उसी भावसे खडे होकर मुसकुरा रहे हैं।

अब क्या करूँ? कामरूपसिंहकी ओर मेरी टकटकी बँध गई। उसका भी बडा ही हृष्ट पुष्ट और कमनीय रूप था। उसे देखकर इस बातका सन्देह भी न होता था, कि यह कोई डाकू है। इस समय वह खडा खडा मेरी ओर देखकर हँस रहा था।

अब मैंने एक बार उस सुन्दरीकी ओर दृष्टि फेरी। इस समय वह स्त्री खड़ी खडी हँस रही थी। अब मैं समझ गया, कि यह इन डाकुओंका षडयन्त्र था। रतिपर बडा क्रोध आया, परन्तु उपाय क्या था?

इसी समय कामरूपसिंहने मेरे सामने आकर कहा—"क्यों? उस दिन तो धोखा देकर भाग गये थे, परन्तु आज?"

मैंने साहसकर कहा,—"जो उस दिन था, सो आज भी।"

कामरूपसिंह बोला,—"मालूम होता है, कि तुम्हें अपनी जान प्यारी नहीं है।"

मैंने कहा,—"जिस दिनसे इस कार्यमें हाथ डाला, उसी दिनसे अपने प्राणोंकी ममता त्याग दी है।"

इतना सुनते ही उन मनुष्योंने प्रवल वेगसे मुझपर आक्रमण किया। इस समय मैं क्या करता? कामरूपसिंह तथा उनके साथियोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेकी वडी चेष्टा की, परन्तु किसी तरह कृतकार्य न हो सका और उसी समय गिरफ्तार हो गया।

दूधका जला मठा फूँक फूँककर पीता है। कामरूपसिंहके साथी उस दिन मेरे हाथो धोखा खा चुके थे। अत' आज वे बड़ो सावधानतासे मुझे लेकर एक ओर अग्रसर हुए। कितने ही कमरे गलियारे पार करते हुए, वे मुझे लेकर एक निभृत स्थानमें जा पहुचे। यहाँ आकर मेरी आँखोंपर पट्टो वाँध दी गई और फिर ऐसा मालूम हुआ, मानों दो मनुष्य मुझे पकड कर नीचेकी ओर लिये जा रहे हैं। इस तरह थोड़ी दूर और आगे वढ़ जानेपर मेरी आँखोंकी पट्टो खोल दी गई। इसके वाद उनमेंसे एक मनुष्यने मुझे मेरे रहनेका स्थान वता दिया और वहाँसे चला गया।

यह मकान कहाँ था, कुछ ठीक मालूम न हुआ। परन्तु जितना रास्ता चलना पडा था, उससे इतना मालूम हो गया, कि उस मकानसे कुछ दूर हटाकर मैं इस स्थानपर लाया गया हूं। जो कुछ हो, जिस समय मेरी आँखोंकी पट्टो खोल दी गई, उस समय मैंने देखा, कि मैं एक वडे ही सुरम्य स्थानमें हूं। एक ओर एक सुन्दर मकान बना हुआ है, जो वडी उत्तमतासे सजाया हुआ है, उसके सामने ही एक छोटासा खुशनुमा वाग

लगा हुआ है। वह कमरा जो मेरे रहनेके लिये नियत किया गया था, नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थों की सुगन्धसे सुगन्धित हो रहा था। मैं मनही मन सोचने लगा,—"यह क्या? मैं कैदखाने भेजा गया हू। परन्तु यह तो कैदखाना नहीं एक सुरम्य आनन्दगृह मालूम होता है!"

जिस समय मैं यह सोच रहा था, ठीक उसी समय एक ओरसे पायलकी चित्ताकर्षक ध्वनि सुन पडी और उसके बाद ही दो सुन्दरी स्त्रियाँ मेरे लिये भोजनका थाल लिये वहाँ आ पहुचीं। दोनों ही सुन्दरी थीं। उन्होंने मेरे पास आकर बडी नम्रतासे मुझे प्रणाम किया और थाल एक ओर रखकर बोली,—"आइये, भोजन कीजिये।"

मैं कामरूपसिंहके ये काण्ड देखकर अवाक् रह गया। यह क्या? यदि मुझे इतना आराम ही देना था तो फिर इस तरह कैदकर रखनेकी क्या आवश्यकता थी? उस समय यह न सोच सका, कि अत्यन्त आराम भी दु खदायक होता है।

जिस तरह दुःख न हो तो सुखमें प्रसन्नता नहीं प्राप्त हो सकती अथवा रात न हो तो दिनमें क्या सुख है, इसका अनुभव नहीं हो सकता, उसी तरह यहाँ मै दिन-रात ही आनन्दसे रहने लगा। इसीलिये कुछ दिन बाद यह आनन्द भी फीका लगने लगा। वे रमणियाँ सब प्रकारसे मेरी सेवा करनेके लिये तय्यार रहती थीं। अच्छेसे अच्छा पदार्थ भोजनको मिलता था, नित्य उन दोनों स्त्रियोका गाना सुनता था, टहलने घूमनेकी

इच्छा होती तो सामने ही वाग था, अर्थात् सिवा इस वातके किसी वातकी कमी नहीं थी, कि मैं स्वतन्त्र न था।

इसी तरह अनेक दिन वीत गये। यह सुख अच्छा न मालूम होने लगा। न जाने क्यों इतना सुख, आराम, आनन्द सव कुछ रहनेपर भी मेरा शरीर दिनों-दिन क्षीण होता जाता था। जव आईनेमें अपना चेहरा देखता तभी वह कान्तिहीन दिखाई देता, तभी मालूम होता, मानों मेरे शरीरका तेज निकला चला जा रहा है। ऐसा क्यों होता है? दो चार दिन वाद अपने कतिपय साथियोंके साथ आकर कामरूपसिंह मुझे देख जाता था। फिर पुरुषोंका चेहरा न दिखाई देता था। तो क्या दिन-रात स्त्रियोंकी सगतिमें रहनेके कारण ही मैं निस्तेज होता चला जाता था? अपनी यह अवस्था देखकर मुझे वड़ा दुःख होता था। कभी कभी अपनी अवस्थापर मैं आप ही झुँझला उठता था। अव न तो गाना वजाना ही अच्छा लगता था और न उन सुरूपा सर्वनाशिनी रमणियोंका कुटिल कटाक्ष ही।

मैं मन ही मन विचारने लगा। कामरूपसिंहने मुझे अच्छा फँसाया। देखनेमें तो मुझे सव प्रकारसे सुख और आराममें रखा है, परन्तु न जाने कौनसा विष मुझे भोजन या जलके साथ नित्य प्रति पिलाता है, कि मेरा शरीर ही आधा होता चला जाता है?

इस तरह जव अपने शरीरपर ध्यान जाता तो मन वड़ा ही दुःखित हो जाता था और कामरूपसिंहपर वड़ा क्रोध चढ़ आता

था। परन्तु क्या कर सकता था? बाहर निकलनेका बहुत कुछ उपाय किया। उन दोनों रमणियोंको भी नाना प्रकारके प्रलोभन दिये; परन्तु मेरी समस्त आज्ञायें पालन करनेके लिये प्रस्तुत रहनेपर भी इस सम्बन्धमें वे ऐसी बन जाती थीं, कि उन्हें कुछ मालूम ही नहीं। मानों वे वहाँसे निकलनेका पथ ही न जानती हों।

इसी तरह कुछ दिन और बीते। मैं जालमें फँसे हुए पक्षीकी भाँति तडपता था, परिताप करता था, रोता था, परन्तु वश कुछ न चलता था। अन्तमें एक दिन मैंने हताश होकर खाना पीना छोड दिया। उन स्त्रियोंके पास आते ही उन्हें हटाकर अपने कमरेकी साँकल भीतरसे बन्द कर ली और चुपचाप अपने पलङ्ग पर लेटकर अपने भविष्यकी चिन्ता करने लगा। पहले तो उन रमणियोंने किवाड खुलवानेकी बडी चेष्टा की, परन्तु जब किसी तरह भी मैंने किवाड़ न खोले तो वे लाचार होकर अपने कमरेमें सोनेके लिये चली गईं।

मैं नाना प्रकारकी चिन्ता करता हुआ अपने पलङ्गपर पडा पड़ा अपने भविष्यकी चिन्ता करता हुआ सो गया।

रात्रिके लगभग बारह बजनेके समय एकाएक नींद खुल गई। ऐसा मालूम हुआ मानों कोई धीरे धीरे मेरे किवाड थपथपा रहा है। आवाज सुनकर पहले तो यह विचार उत्पन्न हुआ, कि शायद वे ही दोनों कुलटायें आई होंगी, परन्तु उस थपथपाहटपर ध्यान देनेसे मालूम हुआ, कि मानों कोई बहुत धीरे धीरे डरता हुआ किवाड़ थपथपा रहा है।

इस बातका ध्यान मनमें आते ही मैंने उठकर किवाड खोल दिये। उस समय जो दृश्य मैंने देखा, उससे मेरी प्रसन्नताका वारापार न रहा। क्योंकि मैंने देखा, कि मेरे परम बन्धु सयमसिंह दरवाजेपर खडे हैं। उन्हें देखते ही मैं उनसे लिपट गया।

कुछ देर बाद जब हमलोग अलग हुए तब संयमसिंहने कहा—"तुम जबसे इस मायापुरीमें आये तबसे मानों मुझे एक-दम भूल ही गये ?"

मैंने कहा,—"हितैषी संयम ! तुम्हे भूल जानेके कारण ही तो यह दुर्दशा भोग रहा हू , परन्तु यह तो बताओ, कि तुम इस भयानकपुरीमें क्यों और कैसे आ पहुचे ?"

इसके उत्तरमें सयमसिहने जो कुछ कहा वह बड़ा ही आश्चर्यप्रद, उपदेशप्रद तथा कौतूहलवर्द्धक था।



पाँचवाँ परिच्छेद ।



संयमसिंहकी आत्मकथा ।

जिस तरह प्रकृति सब पदार्थोंको उत्पन्न करनेपर भी उन्हें ग्रास करनेके लिये तय्यार रहती है, इतनेपर भी उन्हीं पदार्थोंकी सहायता लेकर जीव अपनेको पुष्ट करता है और बराबर प्रकृतिसे युद्ध किया करता है। यहाँतक कि जब वह देख लेता है, कि अब मैं उसके ग्राससे किसी तरह नहीं बच सकता तो पुत्र उत्पन्न कर, उसे अपना उत्तराधिकारी बना, प्रकृतिसे युद्ध करनेके लिये छोड देता है। ठीक उसी तरह, इतने दिनातक प्रिय बन्धु जीवानन्दका जब पता न लगा और न उनका कोई पत्र ही आया तो मुझे उसकी खोजमें प्रस्थान करनेकी आज्ञा मिली और मैं अपने ज्येष्ठ पुत्रको समस्त गृह भार तथा कार्य भार, साथ ही मायापुरीका कुछ रहस्य समझाकर, वहाँसे चल पडा, क्योंकि मैं जानता था, कि मायापुरी कोई साधारण स्थान नहीं है, कितने ही मुखोंसे उसका विकट वर्णन सुन चुका था। परन्तु वह मित्र ही क्या जो समयपर अपने बन्धुकी सहायता न करे। इसीलिये मैं बडी शीघ्रतासे वहाँसे चल पडा और ठीक उस समय मायापुरीमें जा पहुँचा जिस समय सन्ध्याकी छबीली छटा मायापुरीके पहाडोंपर, वृक्षोंपर, ऊँचे ऊँचे महलोंपर, और उन्नत गुम्बजोंपर पडकर बता रही थी, कि ध्यान रखो, सुखके बाद दुःख अवश्य होता है.

इस समय यदि मेरी चमकीली चमक दमक देखकर मुग्ध हो रहे हो, तो रात्रिके दु खमय अन्धकारमें ठोकरें खानेके लिये भी प्रस्तुत रहना।

परन्तु यहाँ आकर मैं बडी विपत्तिमें पडा। मालूम नहीं, कि जीवानन्द कहाँ ठहरे थे, उन्होंने अबतक क्या किया अथवा कहाँ जा फँसे। मैं कुछ भी जानता न था। अस्तु, योंही कुछ सोचता विचारता मैं आगे बढता चला जाता था, कि इतनेमें ही रात हो गई और धीरे धीरे बाजारकी सब दूकानें बन्द हो गईं। चारों ओर सन्नाटा छा गया। उस घोर सन्नाटेमें मैं अकेला छिपता हुआ नगरमें भ्रमण कर रहा था, कि इसी समय एक ओरसे दो पुरुष आते हुए दिखाई दिये। दोनो ही बडे सुन्दर थे। ऐसा स्वरूप मैंने आजतक न देखा था। इस रात्रिके समय, इन दोनों-को घूमते देखकर मुझे कुछ सन्देह हुआ और मैं अभी उनका पीछा करनेका विचार कर ही रहा था, कि इसी समय उनमेंसे एक जो उन दोनोंमें अधिक सुन्दर था, बोला,—"आजका कुछ समाचार मालूम है?"

दूसरा बोला,—"नहीं, कुछ भी तो नहीं।"

पहलेने कहा,—"बसन्तसिंह! देखो, अब इस तरह असाव-धान रहनेका समय नहीं है। यदि नगरपर पूरा ध्यान न रखा जायगा तो हमलोगोंकी बडी दुर्दशा होगी?"

दूसरा बोला,—"नहीं! यह क्या कहते हो? हमलोगोंने तो कभी किसी प्रकारके कामकी अवहेलना नहीं की।"

कामरूप बोला,—"यह ठीक है, परन्तु देखो, धर्मसिंहने अबतक उस पत्रका कोई उत्तर न दिया। इतनेपर भी हमलोगोंका किया कुछ नहीं होता है?"

बसन्त बोला,—"आपका कथन सत्य है, परन्तु वह अवधि भी तो अभी बीत नहीं गई है।"

कामरूप—परन्तु क्या तुम समझते हो, कि अवधि बीत जानेपर वे हमलोगोंके इच्छानुसार काम करेंगे?

बसन्त—आशा तो नहीं है।

कामरूप—फिर क्या होगा?

बसन्त—ज़बर्दस्ती शान्ति उससे छीन ली जायगी।

कामरूप—एक बार छीन तो लाये थे, परन्तु क्या लाभ हुआ? क्या उसे अपने पास रख सके?

बसन्त—उस दिन अचानक जीवानन्द न जाने कैसे वहाँ आ पहुँचा।

कामरूप—उस दिनकी बात मुझे मालूम है, परन्तु—" इतना कहकर उसने एकबार सावधानतासे इधर उधर देखकर बसन्तके कानमें कुछ कह दिया। मुझे उन दोनोंकी बात सुनकर इतना अवश्य मालूम हो गया, कि जीवानन्दका और इनका सामना हो गया है और ये जीवानन्दको अवश्य ही जानते हैं। इतना मालूम होनेपर भी इस बातकी बड़ी चिन्ता थी, कि जीवानन्द इस समय कहाँ और किस अवस्थामें हैं तथा इस समय वे क्या कर रहे हैं। यही सब सोचता विचारता मैं

बर उनके पीछे बढ़ता चला जाता था, वे भी कदम बढ़ाये चले ही जाते थे, कि इसी समय एक ओरसे एक मनुष्य उनके पास और आ पहुँचा।

वह मनुष्य इस समय एक प्रकारसे घबड़ाया हुआ था। उसकी यह अवस्था देखकर कामरूपसिंहने पूछा,—"क्या समाचार है?"

वह मनुष्य बोला,—"यह पत्र लीजिये।"

इतना कहकर उसने एक पत्र कामरूपसिंहके हाथमें दे दिया। कामरूपसिंहने पत्र खोलकर पढ़ा। पढ़कर मुस्कराया। बोला,—"कोई चिन्ता नहीं। रानीसे कह देना, घबडानेकी कोई बात नहीं है। कामरूपसिंहके जालसे बचकर भाग जाना कोई साधारण काम नहीं है।"

मैं समझ न सका, कि यह क्या मामला है और कामरूपसिंहके जालसे बचकर कौन नहीं जा सकता? इसके बाद कामरूपसिंहने उससे कहा,—"तुम सावधानतासे गुप्त महलकी रक्षा करना, मैं समझ लूँगा।"

इसके बाद कामरूपसिंह और उसके साथी तेजीसे आगे बढ़ते हुए एक मकानमें घुस गये। मैं कुछ क्षणतक उस मकानकी ओर ध्यानसे देखता रहा, इसके बाद वहाँसे हटनाही चाहता था, कि इसी समय एक बड़ी ही सुन्दरी रमणी मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। उसका सौन्दर्य वास्तवमें अलौकिक था। इच्छा होती थी, कि उसे देखता ही रहूं। परन्तु ज्योंही उसे देखनेकी

इच्छा होती त्योंही मन कहता कि पर-स्त्रीको देखना पाप है। और मैं मन मारकर अपनी दृष्टि नीची कर लेता था।

उस स्त्रीने मेरे पास आकर कहा,—"क्यों तुम भी अपना प्राण देने आये हो? न जाने जीवानन्द किस अवस्थामें पडे हैं, मैंने उनका कितना पता लगाया, परन्तु कहीं पता नहीं लगता।"

मै वडे सकोचमें पड गया, कि यह कौन स्त्री है, जो जीवानन्दसे इस तरह परिचित है और उन्हें इस तरह गली गली खोजती फिरती है। मुझे कुछ सन्देह हुआ। मैं मनही मन विचारने लगा, कि यह कौन है?

उस स्त्रीने मुझे चिन्तामें निमग्न देखकर पूछा—"क्या सोच रहे हो?"

मैंने कहा—"सोच यह रहा हूँ, कि तुम कौन हो और जीवानन्दसे तुम्हारा परिचय किस भाँति हुआ?"

उस स्त्रीने कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखकर कहा,—"यह भी वताना पडेगा? मेरा नाम मायावती है, और भी कुछ वताऊँ?"

मैंने कहा,—"तुम्हारी इच्छा!"

मेरा उत्तर सुनकर मायावती झुंझलायी। बोली,—"तुम वडे नीरस पुरुष हो?"

इस वार मैंने हँसकर कहा,—"सो कैसे?"

मायावती वोली,—"तुम्हारे मित्रके लिये मैं पगली हो रही हू। चाहती हूँ, कि उपद्रवी डाकुओंसे किसी तरह उनकी रक्षा

करूँ, परन्तु तुम न जाने अपने मनमें क्या सोचते हो, कि मेरी बातोंका सहजमें कोई उत्तर ही नही देते।"

एक बार तो इच्छा हुई, कि मायावतीसे अपना पूरा पूरा हाल कह दूँ, परन्तु फिर यह सोचकर मैं चुप रह गया, कि कहीं यह उसी दलकी न हो और मुझसे भेद लेकर शत्रुओंको साव-धान न कर दे। यही सोचकर मैंने कहा—"मैं क्या बताऊँ? योंही यहाँ आ गया हूँ। जीवानन्दसे मेरा परिचय अवश्य है। इससे अधिक कुछ बता नहीं सकता।"

मायावती मेरा यह उत्तर सुनकर और भी झुंझलायी। बोली,—"न बताओगे तो जहन्नुममें जाओ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, कि तुम कौन हो, परन्तु यह भी बता देती हू, कि मेरी सहायताके बिना तुम जीवानन्दका उद्धार नही कर सकते।"

उसकी इन बातोंसे मेरा सन्देह और भी बढ़ गया। मैंने कहा,—"न सही।"

मायावती इतना सुनते ही तेजीसे उस स्थानसे चली गई। अपने मनकी बात कहता हूं। इस ससारमें पद पदपर शत्रु हैं, अत सन्देहहीन हो जाना बडा ही कष्टकर है। मैं कुछ भी न समझ सका, कि वह शत्रु-पक्षकी थी अथवा मित्र पक्षकी। उसकी बातोंसे इतना ही पता लगता था, कि वह जीवानन्दको अच्छी तरह जानती है, साथ ही मुझे भी कुछ न कुछ

है। अस्तु, उसकी इस झुंझलाहट और

देरतक खड़ा खड़ा विचार करता रहा

अन्य कोई कार्य करना अनुचित समझकर मैं वहाँसे लौटना ही चाहता था और कुछ ही दूर अग्रसर हुआ था, कि एक मकानसे बडे जोरसे चिल्लानेकी आवाज आई। ठीक ऐसा मालूम होता था, मानों कोई स्त्री बडे ही आर्त्तस्वरसे कातर प्रार्थना कर रही है।

उस शब्दको सुनकर मैंने मन ही मन उसकी सहायता करना स्थिर किया। मैंने दरवाजेपर जाकर धक्का दिया। न जाने किस कारणसे दरवाजा खुला हुआ था। मेरे धक्का देते ही दरवाजा खुल गया और मैं भीतर जा पहुँचा। यहाँ भीतर रोशनी हो रही थी। उस दरवाजेके पाससे ही ऊपर जानेकी सीढी थी। ज्यों ज्यों मैं ऊपर जाता था, त्यों त्यों चिल्लानेकी आवाज और भी स्पष्ट सुन पडती थी। मैं धडधडाता हुआ, अब ऊपर जा पहुचा। परन्तु ज्योंही मैं ऊपर जाकर किसी कमरेमें पैर रखना ही चाहता था, कि एकाएक मैंने देखा, कि एक मनुष्य उस कमरेसे झपटकर दूसरी राहसे बाहर निकल गया। इसके बाद मैं बाहर ही खडा होकर उस कमरेका दृश्य देखने लगा। मैंने देखा, कि फर्शपर एक लाश पडी हुई है और उसकी बगलमें ही एक रूपवती सुन्दरी बैठकर इस समय रो रही है। लाशका मस्तक गायब था, परन्तु आश्चर्य्यकी बात तो यह थी, कि इतनी चिल्लाहट और रोना पीटना होनेपर भी अभीतक उसकी सहायताके लिये कोई न आया था। यह अवस्था देखकर मुझे सन्देह हुआ, कि यह स्त्री अकेली ही तो इस मकानमें नहीं रहती। क्या

करूँ, परन्तु तुम न जाने अपने मनमें क्या सोचते हो, कि मेरी बातोंका सहजमें कोई उत्तर ही नहीं देते।"

एक बार तो इच्छा हुई, कि मायावतीसे अपना पूरा पूरा हाल कह दूँ, परन्तु फिर यह सोचकर मैं चुप रह गया, कि कहीं यह उसी दलकी न हो और मुझसे भेद लेकर शत्रुओंको सावधान न कर दे। यही सोचकर मैंने कहा—"मैं क्या बताऊँ? योंही यहाँ आ गया हूं। जीवानन्दसे मेरा परिचय अवश्य है इससे अधिक कुछ बता नहीं सकता।"

मायावती मेरा यह उत्तर सुनकर और भी झुंझलायी बोली,—"न बताओगे तो जहन्नुममें जाओ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, कि तुम कौन हो, परन्तु यह भी बता देती हूं, कि मेरी सहायताके विना तुम जीवानन्दका उद्धार नहीं कर सकते।"

उसकी इन बातोंसे मेरा सन्देह और भी बढ़ गया। म कहा,—"न सही।"

मायावती इतना सुनते ही तेजीसे उस स्थानसे चली गई अपने मनकी बात कहता हूं। इस संसारमें पद पदपर शत्रु हैं, अत सन्देहहीन हो जाना बड़ा ही कष्टकर है। मैं कुछ भी न समझ सका, कि वह शत्रु-पक्षकी थी अथवा मित्र पक्षकी। उसकी बातोंसे इतना ही पता लगता था, कि वह जीवानन्दको अच्छी तरह जानती है, साथ ही मुझे भी कुछ न कुछ पहचानती है। अस्तु, उसकी इस झुंझलाहट और कटाक्षपातपर मैं बहुत देरतक खड़ा खड़ा विचार करता रहा। इसके बाद इस समय

अन्य कोई कार्य करना अनुचित समझकर मैं वहाँसे लौटना ही चाहता था और कुछ ही दूर अग्रसर हुआ था, कि एक मकानसे बड़े जोरसे चिल्लानेकी आवाज आई। ठीक ऐसा मालूम होता था, मानों कोई स्त्री बड़े ही आर्त्तस्वरसे कातर प्रार्थना कर रही है।

उस शब्दको सुनकर मैंने मन ही मन उसकी सहायता करना स्थिर किया। मैंने दरवाजेपर जाकर धक्का दिया। न जाने किस कारणसे दरवाजा खुला हुआ था। मेरे धक्का देते ही दरवाजा खुल गया और मैं भीतर जा पहुँचा। यहाँ भीतर रोशनी हो रही थी। उस दरवाजेके पाससे ही ऊपर जानेकी सीढ़ी थी। ज्यों ज्यों मैं ऊपर जाता था, त्यों त्यों चिल्लानेकी आवाज और भी स्पष्ट सुन पड़ती थी। मैं धड़धड़ाता हुआ, अब ऊपर जा पहुचा। परन्तु ज्योंही मैं ऊपर जाकर किसी कमरेमें पैर रखना ही चाहता था, कि एकाएक मैंने देखा, कि एक मनुष्य उस कमरेसे झपटकर दूसरी राहसे बाहर निकल गया। इसके बाद मैं बाहर ही खड़ा होकर उस कमरेका दृश्य देखने लगा। मैंने देखा, कि फर्शपर एक लाश पड़ी हुई है और उसकी बगलमें ही एक रूपवती सुन्दरी बैठकर इस समय रो रही है। लाशका मस्तक गायब था, परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह थी, कि इतनी चिल्लाहट और रोना पीटना होनेपर भी अभीतक उसकी सहायताके लिये कोई न आया था। यह अवस्था देखकर मुझे सन्देह हुआ, कि यह स्त्री अकेली ही तो इस मकानमें नहीं रहती।

कोई भी पुरुष इस मकानमें नही है, जो ऐसे अवसरपर इसकी सहायताके लिये उपस्थित हो? यह देख मैं साहसकर उस कमरेमें घुस गया।

वह स्त्री मुझे देखते ही जोर जोरसे रोने लगी। रोती रोती पछाड खाकर गिर पड़ी। मैंने उसे बहुत तरहसे समझा बुझाकर पूछा। पहले तो रुलाईके कारण बहुत देरतक उसके मुँहसे बोल ही नहीं निकली। इसके बाद बडी कठिनतासे उसने शान्त हो, सिर उठाकर मेरी ओर देखा। आह! कैसा अद्भुत सौन्दर्य था! मालूम होता था, कि आकाशका चन्द्रमा नीचे उतर आया है। वह स्त्री बड़ी देरतक मेरे चेहरेकी ओर देखती रही। इसके बाद बोली,—"आप यहाँ कैसे आ पहुचे?"

मैंने कहा,—"सुन्दरी! पहले तुम अपना परिचय बताओ।"

उसने कहा,—"मुझ अभागिनीका परिचय ही क्या? आज तक हमलोग दो बहनें थीं, परन्तु अब एक मैं ही रह गई?"

मैं—परन्तु क्या तुम बता सकती हो, कि तुम्हारी बहनका सिर कौन काट ले गया?

वह बोली,—"किसे बताऊँ? कामरूपसिंहकी अनेक दिनोंसे उसपर दृष्टि थी। परन्तु वह किसी तरह अपने पातिव्रतसे अलग नहीं हुई। बहन तो मेरी गई ही; परन्तु इतने हीसे सान्त्वना है, कि उसने धर्म्म न गँवाया।"

इतना कहकर वह फिर जोर जोरसे रोने लगी। उसकी क्रन्दन-ध्वनिसे वह स्थान गूँज उठा। कुछ देरतक रोनेके बाद

वह बोली—"हाय! अब मैं किसकी शरण जाऊँगी! कौन मेरी रक्षा करेगा!!"

मैंने कहा, -"सुन्दरी! क्या तुम्हारा और कोई आत्मीय नहीं है?"

वह रोती रोती बोली,—"हैं, पिता हैं, परन्तु अब उनका क्या ठिकाना? वे आयेंगे तो मैं क्या उत्तर दूँगी? आज सध्यासे ही तो उनका भी पता नहीं है। मुझसे कह गये थे, कि मैं शीघ्र ही आऊँगा। उनकी ही आशामें नीचेका दरवाजा भी अबतक खुला पडा था, परन्तु पिता भी नहीं आये और इधर अपनी बहनको भी मैंने खो दिया।"

क्या उत्तर दूँ, कुछ समझमें न आता था। उसकी बहनकी लाश अबतक उसी स्थानपर पड़ी थी। मैं बडे सकोचमें पड गया। क्या करूँ, कुछ समझ न सका।

अभी मैं उस स्थानपर खडा खडा कुछ सोच ही रहा था और वह सुन्दरी कातर नयनोंसे मेरी ओर देख ही रही थी, कि एकाएक सीढीपर कुछ पैरोंकी धमधमाहट सुन पडी और तुरन्त ही कई मनुष्य ऊपर आ पहुचे। उन सबके हाथमें शस्त्र था। यह अवस्था देखते ही मैं उसी स्थानपर एक ओर छिप गया। वे आकर सीधे उस कमरेमें चले गये, जिसमें अपनी बहनकी लाशके पास बैठकर वह स्त्री रो रही थी। उनको ऊपर आते देखकर वह स्त्री और भी जोर जोरसे रोने लगी। उनमेंसे कुछ लोगोंने लाश उठाई और उसे लेकर नीचे उतर गये। इस

मुँहमें वस्त्र ठूँसा हुआ है। यह देखते ही मैं समझ गया, कि मैं जो न कर सका था, वह संयमसिंहने कर दिखाया। इसके बाद संयमसिंह उनमेंसे एकको, बन्धन खोलकर, बाहर ले आये। वह इस समय बहुत ही भयभीत हो रही थी।

बाहर लाकर संयमसिंहने उसके मुँहका बन्धन खोल दिया। इसके बाद पिस्तौल निकालकर उसकी ओर निशाना साधकर उन्होंने बिगडकर कहा—"अब यह बताओ, कि यहाँ और कौन कौन कैद है? यदि ठीक न बताओगी तो अभी गोली मार दूँगा।"

संयमसिंहकी यह भाव-भङ्गी देखकर वह रमणी काँप उठी। पहले तो उसने बताना न चाहा, परन्तु जब संयमसिंह उसपर अत्याचार करनेके लिये तय्यार हो गये तो वह बाध्य होकर बतानेके लिये राजी हुई। उसने कहा,—"आप मेरे साथ चलिये, मैं आपको सब दिखा देती हु।"

सयमसिंहने कहा,—"अच्छी बात है।"

इसके बाद आगे आगे वह स्त्री, उसके पीछे सयमसिंह और संयमसिंहके बाद मैं वहाँसे चला। कई कोठरी, दालान, तथा मकान पार करते हुए, हमलोग एक दूसरे तहखानेमें जा पहुँचे। यह तहखाना बडा ही अन्धकारमय था।

उस रमणीने कहा,—"यहाँ आपका घुसना सहज नहीं है। दरवाजेके पास ही आपको दो जबर्दस्त मनुष्य दिखाई देंगे। उनसे बचकर यदि आप भीतर चले जायें तो आप निःसन्देह कितने ही मनुष्योंकी रक्षा कर सकेंगे।"

इतना सुनते ही संयमसिंहने मेरी ओर इस तरह देखा मानों मेरी सम्मति जानना चाहते हों। मैंने कहा,—"मैं तय्यार हूं, परन्तु मेरे पास कोई शस्त्र नहीं है।"

संयमसिंहने अपने पाससे मुझे एक दूसरी पिस्तौल निकाल कर दी। अब हमलोग बडी सावधानीसे उस तहखानेकी ओर अग्रसर हुए। इस समय आगे आगे संयमसिंह, उनके पीछे वह स्त्री और उसके बाद मैं था।

अभी हमलोग कुछ ही दूर आगे बढ़े होंगे, कि सहसा किसी की पद ध्वनि सुन पडी। तुरन्त ही उस रमणीने कहा,—"आगे रक्षक घूमघूमकर पहरा दे रहा है।"

हमलोग भी सावधान थे। वास्तवमें जो उस तहखानेमें घुसनेकी राह थी, ठीक उसी स्थानपर एक बलिष्ठशरीर, भीषण-काय मनुष्य घूमघूमकर पहरा दे रहा था।

कुछ देरतक तो हमलोग खडे खडे उसकी ओर देखते रहे। इसके बाद ज्योंही वह मुँह-फेरकर हमारी ओर मुडा त्योंही संयमसिंहने जेबसे क्लोरोफार्म्मभरी पिचकारी निकाली और निशाना साधकर उसकी नाकपर छोड दी। उस तेज गन्धसे वह घबडाकर एक बार इधर उधर देख, बेहोश होकर गिरना ही चाहता था, कि हमलोगोंने झपटकर उसे इसलिये पकड लिया जिसमें उसके गिरनेका शब्द न हो। इसके बाद उसके हाथ पैर बाँध दिये गये और वह उसी स्थानपर एक ओर रख दिया गया।

इतना कामकर, हमलोग निश्चिन्त हो आगे बढ़ना ही चाहते थे, कि एक दूसरा पहरेदार आ पहुचा।

अब क्षणभर भी विलम्ब करनेका समय न था, क्योंकि यदि वह दूसरा पहरेदार चिल्ला उठता तो सब गुड़ गोबर हो जाता। हम दोनों एकाएक उसपर टूट पड़े। गलेकी अगल-बगल दो ऐसी शिरायें हैं, जिन्हें यदि कसकर दबा दिया जाये तो मनुष्यमें न कुछ बोलनेकी शक्ति रह जाती है और न उसमें चेतना ही रहती है। सयमसिंहने झपटकर उसका गला पकड़ दबाया। वह मनुष्य चिल्लाना चाहता था, परन्तु चिल्ला न सका और हम दोनोंने उसे जबर्दस्ती बेहोशकर, उसी स्थानपर पटक, उसके हाथ पैर बाँध दिये। इसके बाद जिस कोठरीमें उनका निवास था, उसीमे डालकर बाहरसे साँकल चढ़ा, हमलोग अब आगे बढ़नेके लिये तय्यार हो गये। वह रमणी हमलोगोका यह व्यवहार देखकर थर थर काँप रही थी।

अब हमलोग उसे साथ ले आगे बढ़े। यहाँसे नीचे जानेके लिये सीढ़ियाँ बनो हुई थीं। परन्तु वहाँ बड़ा अन्धकार था। मैंने उस रमणीसे पूछा, कि अब यहाँ कोई पहरेदार है या नहीं।

उसने कहा,—"मुझे तो दो हीकी खबर हैं।"

अत उसकी बातोंसे अनिश्चितता टपक रही थी। इसीलिये लालटैन जलानेका हमलोगोंका साहस न हुआ। उसी तरह अँधेरेमें ही कई डण्डे सीढ़ियाँ उतर जाने बाद हमलोग एक दालानमे जा पहुचे। यहाँ आते ही हमलोगोंके पास आकर एक

मनुष्यने डपटकर पूछा,—"तुम लोग कौन हो ?"

परन्तु उत्तर देनेके पहले हम दोनोंकी ही पिस्तौलें उसकी ओर सध गई । यह देखकर वह घबडा उठा।

इसी समय मैं उसकी खोपडीपर निशाना साध क्रुद्ध स्वरमें बोला,—"चुप रहो। अब यदि एक भी शब्द मुखसे निकाला तो गोली तुम्हारी खोपडीके पार हो जायगी।"

प्राणका भय सबको रहना है, वह दो दो पिस्तौलोंका निशाना अपनी ओर सधा देखकर काठकी मूर्त्तिकी तरह खडा हो गया।

इसी समय उस रमणीने कहा,—"कैदखानेकी चाभी इसीके पास होगी।"

मैंने कहा,—"तुम तो कहती थी, यहाँ दोही हैं।"

रमणीने भयसे काँपते हुए कहा,—"क्षमा कीजिये, मुझसे भूल हो गई।"

इसके बाद मैंने उससे चाभी माँगी। उसने साफ इन्कार कर दिया। अब लाचार हो हमलोगोंको जबर्दस्ती करनेके लिये तय्यार होना पडा। किसीका खून करनेकी हमलोगोंकी इच्छा न थी और वह चाभियाँ देनेके लिये तय्यार न था। बडी कठिन समस्यामें प्राण पडा था। इधर सवेरा होनेमें भी विशेष विलम्ब न था।

यह अवस्था देखकर हमलोगोंने जबर्दस्ती उससे चाभियाँ छीन लेनेका विचार किया। मैं उसी तरह उसपर निशाना साधकर खडा रहा और सयमसिंह उससे लिपट गये। यह स...

मनुष्य न था। वह समझ गया था, कि ये गोली नहीं मारेंगे। अत वह निर्भय हो उनसे युद्ध करने लगा। दोनोंमें कुश्ती होने लगी। दोनों ही बली थे परन्तु हम दो और वह अकेला था।

अत हम दोनोंने मिल, उसे पटककर उसके मुँहमें कपड़ा भर दिया और हाथ पैर बाँध दिये। चाभीका गुच्छा उससे छीन लिया गया और वह भी वेहोशकर उन्हीं जमादारोंवाली कोठरीमें डाल दिया गया।

नीचे रोशनी हो रही थी। हमलोगोंने देखा, कि आँगनकी चारों ओर कितनी ही कोठरियाँ बनी हुई हैं, जिनमे ताले बन्द हैं। अस्तु, हमलोगोंने झपटकर पहली कोठरी खोली, इसमेंसे एक नवयुवक निकाला गया। जो इस समय बडा ही दुर्बल कृश और निस्तेजसा मालूम हुआ। उसका परिचय पूछनेपर उसने कहा, कि वह एक धनीका पुत्र था, परन्तु कामरूपसिंहके फेरमें पडकर उसका धन, रूप सब गया और अब वह इस अवस्थामें यहाँ कैद होकर पडा हुआ दरिद्रता भोग रहा है।

यह सुनकर हमलोगोंने दूसरी कोठरी खोली। उसमेंसे एक स्त्री निकली। स्त्रीकी अवस्था अनुमानत तीस वर्षकी होगी। उसके चेहरेपर अब भी लावण्य दिखाई देता था। उससे हाल पूछनेपर उसने संक्षेपमें कहा, कि कामरूपसिंहके प्रेममें पडकर उसने अपने पतिकी हत्या कर डाली थी। इसके बाद जब कामरूपसिंहकी इच्छा पूर्ण हो गयी तो उसकी समस्त धन-सम्पत्तिपर हाथ साफकर उसे कैद कर दिया।

तीसरी कोठरी खोलते ही एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया एक नवयौवना स्त्री उसमेंसे निकली। चेहरा खूब कृश, शरीर पर कितने ही प्रकारके घावके चिह्न वर्त्तमान थे। ऐसा मालूम होता था, मानो इसका शरीर गला जा रहा है। उससे पूछनेपर उसने कहा, कि ये सब कामरूपसिंहके अत्याचारके फल हैं। उसने जबर्दस्ती अपनी अभिलाषाकी तृप्ति करनेपर भी मुझे इतना सताया है, कि समस्त शरीर गर्म लोहेसे दाग दिया है और फिर बिना ओषधिके इस अवस्थामें कैद कर रखा है। हाय! अब मैं क्या करूँगी? इतना कह वह फूट फूटकर रोने लगी।

चौथी कोठरीसे एक बालिका निकली। बालिकाकी अवस्था तेरह या चौदह वर्षकी होगी। उससे पूछनेपर मालूम हुआ, कि कामरूपसिंहके प्रपञ्चमें पड़कर उसकी माता उसे साथ ले गृह-त्यागिनी हुई है। वह कहाँ गई, पता नहीं है। परन्तु दो वर्षसे वह इसलिये यह दारिद्र्य और कारागार भोग रही है, कि काम-रूपसिंहकी बात वह नहीं मानना चाहती।

मैंने मनही मन कहा,—"सबमें तुम्हीं धन्य हो।"

उस स्थानसे सब मिलाकर लगभग बारह स्त्री पुरुष बाहर निकले, परन्तु उस एक बालिकाके अतिरिक्त सबकी ही घृणित अवस्था हो रही थी। कोई कामरूपसिंहके फेरमें पड़कर अपना धन धर्म खो चुका था, कोई शरीरसे अवसन्न हो रहा था, किसीके शरीरपर रोग वर्त्तमान थे और कोई नरपिशाचके समान अपना समस्त खोकर पागलोंकी तरह अपना जीवन व्यतीत कर

था। सभी कहते थे, कि पहले मैं बड़े आराम और शानसे रखा गया था। परन्तु पीछे उनकी यह दुर्दशा दिखाई दी। नरकका दृश्य सामने उपस्थित था। मैंने मनही मन परमात्माको धन्यवाद दिया, कि उन्होंने समयके पहले ही मेरी रक्षाके लिये संयमसिंहको मेरे पास भेज दिया।

इसके बाद हमलोग उन सबको लेकर वहाँसे बाहर निकलकर एक ओर जाना ही चाहते थे, कि उस स्त्रीने दौड़कर मेरे पैर पकड लिये और बोली,—"अब यहाँ रहनेमें मेरी भी कुशल नहीं है। अत आप मुझे भी अपने साथ लेते चलिये।"

लाचार उसे भी हमलोगोंने अपने साथ ले लिया और हमलोग तेजीसे पैर बढ़ाते हुए वहाँसे उस ओरको चले, जिधर वासस्थान बनाया था। उन लोगोंको ले जाकर हमलोगोंने उसी मकानमें रखा। इसके बाद पुलिसके सिपाहियोंकी सहायतासे उन्हें अपने अपने स्थानपर भिजवा दिया।

जिस समय हमलोग इस कामसे निश्चिन्त हुए, उस समय सवेरा हो चला था। अभी सूर्य्योदय होनेमें कुछ विलम्ब था। आकाशमें लालिमा छा रही थी, बागोंमें गुलाबोंकी कलियाँ इस तरह चटक रही थीं, मानों मदन-महीपके सुन्दर सुकोमल बालको ये चटकारी देकर जगा रही हों।

तुरन्त ही खयाल हो आया, कि यदि जीवानन्द इसके पंजेमें फँसे होंगे, तो फिर उनको छुड़ाना कठिन हो जायगा। इसीलिये मैं बराबर केवल उसकी गतिपर लक्ष्य करता हुआ उसके पीछे पीछे चला गया। थोड़ी दूरतक और आगे बढ़नेपर कामरूपसिंहने एक मकानके दरवाजेको कई बार खटखटाया। तुरन्त ही किसीने दरवाजा खोल दिया और कामरूपसिंह उसमें चला गया। मैं बाहर ही खड़ा खडा उस मकानमें घुसनेकी राह देख रहा था, कि इतनेमें ही एक मनुष्य उस मकानसे कुछ बडबड़ाता हुआ बाहर निकला। उसकी भाव-भङ्गीसे ऐसा मालूम होता था, कि कामरूपसिंहने जबर्दस्ती उसे किसी कामसे बाहर भेजा है। अब मैं उस मकानको एक बार अच्छी तरह देखकर, कि जिसमें भूल न जाऊँ, उस मनुष्यके पीछे हो लिया। थोड़ी दूर आगे बढ़नेपर ज्योंही वह एक पतली गलीमें घुसा, त्योंही मैंने पीछेसे उसका गला जोरसे धर दबाया। उस मनुष्यने एक बार चौंककर पीछे-की ओर देखा। इसके बाद ही मैं उसे नीचे गिराकर उसके कलेजेपर चढ़ बैठा और गलेपर हाथ रखकर पूछा—"सच सच बता तू कौन है?"

उस मनुष्यने कोई उत्तर न दिया। उसको उत्तर न देते देखकर मैंने जेबसे पिस्तौल निकाल ली और उसके कपालको लक्ष्यकर कहा-"इस बार भी यदि उत्तर न दिया तो खोपडी उडा दूँगा।"

इसबार वह मनुष्य घबडाया। बोला—"मैं कामरूपसिंहका साथी हूं।"

मैंने पूछा—"ठीक बताओ, इस समय जीवानन्द कहाँ हैं ?"

प्राणभयसे उसने काँपते हुए कहा—"क्षमा कीजिये, मैं उनका पता नहीं जानता।"

मुझे उसकी बातोंपर विश्वास न आया। मैंने तुरन्त ही उससे कहा—"झूठ बोलता है, मुझे ठीक मालूम है, कि जीवानन्दको कामरूपसिंहने कैद कर रखा है।"

वह बोला—"मैं नहीं जानता।"

मैंने देखा, कि अब यह सीधी तरहसे न मानेगा। इसलिये यह दिखानेके लिये कि मैं तुम्हें मार डालूँगा, मैंने पिस्तौल उसकी खोपडीसे सटा दी और कुछ कहना ही चाहता था, कि इसी समय न जाने किधरसे आकर एक मनुष्यने अचानक इतने जोरसे मुझे धक्का दिया, कि मैं सम्हल न सका और नीचे जा गिरा। अब वह भी उठ खडा हुआ और इसके बाद मैं अकेला और वे दो! दोनों ही भूखे व्याघ्रकी भाँति मुझपर झपट पडे। मैं भी उनसे सामना करनेके लिये तय्यार हो गया। अभी हमलोगोंमें युद्ध आरम्भ ही हुआ था, कि इसी समय एक स्त्री दौडती हुई हमलोगोंके बीचमें "हाँ, हाँ" करती हुई आकर खडी हो गयी।

एकाएक उस स्त्रीको अपने बीचमें आकर खडी हो जाते देखकर हम तीनों ही चौंक उठे। पहले तो उस स्त्रीको मैं पहचान न सका, परन्तु एकाएक जब उसने ललकारकर उन लोगोंको ठहरनेके ‌ ।, उस समय मैंने देखा, कि यह

वही है, जिसकी वहन उसी दिवस मारी गयी थी। यह देखकर मेरे आश्चर्य्यका कोई ठिकाना न रहा, साथ ही उस समय और भी आश्चर्य्य हुआ, जिस समय वह अपने वस्त्रसे छुरा निकालकर उन सबसे लड़नेके लिये तय्यार हो गयी।

वे मनुष्य भी उस स्त्रीको वीचमें पड़ते देखकर एक वार भौंचकसे रह गये और फिर एकाएक सबके सब उस स्थानसे इस तरह भाग गये जिस तरह भेड़ियेको देखकर वकरियाँ।

उनके भागते ही वह स्त्री मेरे पास आकर वड़े ही मीठे शब्दोंमें बोली—"आप कैसे इनके फेरमें जा फँसे थे?"

मैंने कहा—"मैं राहमें चला जा रहा था, एकाएक ये आक्रमण कर वैठे।"

वह रमणी बोली—"मुझे पहले ही सन्देह हुआ था, कि ये दुराचारी आपका भी पीछा करेंगे ; क्योंकि इनके सरदार कामरूपसिंहने मेरी आपकी वातें सुन ली थीं। अत' जब कामरूपसिंहके पीछे पीछे आप भी चले, तभी मुझको सन्देह हुआ, कि भालूकी भाँति ये भी धोखा देकर आपपर आक्रमण करेंगे। इसी लिये आप दोनोंके जानेके बाद मैं भी आपलोगोंके पीछे पीछे ही रवाना हुई और ईश्वरकी दयासे ठीक समयपर यहाँ आ पहुंची।"

इतना कहकर उसने वड़ी प्रेम-पूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखकर थोड़ी देर वाद फिर कहा—"अब मेरे साथ चलिये, यहाँ खड़े रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

एकाएक उस स्त्रीका आना, हम

उसके आते ही उन दुराचारियोंका भाग जाना, सभी बातें मुझे सन्देहमें डाल रही थीं। क्या करूँ, कुछ समझ न सकता था? कुछ सोचकर मैंने उस स्त्रीसे कहा—"अच्छा, मैं तुम्हारे साथ चलनेके लिये तय्यार हूं।" इसके बाद हमलोग तेजीसे एक ओरको रवाना हो गये और थोडी ही देरमें उसके मकानपर जा पहुँचे।

जिस समय हमलोग उस मकानमें पहुँचे, उस समय फर्श अच्छी तरह साफ कर दी गयी थी, कमरेमें एक क्षीण आलोक जल रहा था और बीचमें तकियेके सहारे एक अधेड मनुष्य, बैठा हुआ था, जिसकी बडी अधपकी दाढी नाभीतक झूल रही थी। वृद्ध बडा दु खित मालूम होता था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें टपक रही थी। वह एकाएक हमलोगोंको देखकर जोरसे रो उठा। साथ ही मेरी सङ्गिनीने भी उसके करुण रूदनमें रो रोकर सहायता देना आरम्भ कर दिया। कुछ ही क्षणमें वह मकान क्रन्दन ध्वनिसे पूर्ण हो गया। रोनेसे यदि दु खका बोझ कुछ हल्का होता हो तो, कुछ देरतक रो लेने बाद जब दु:खका वेग कुछ कम हुआ तो उस वृद्धने आँखें पोंछकर उस स्त्रीकी ओर देखते हुए कहा—"बेटी! यह कौन हैं?"

उस स्त्रीने कहा-"बाबा! क्या बताऊँ? ये तनिक भी पहले आ जाते तो सम्भव था, कि मेरी बहनकी जान बच जाती। ये कुछ पीछे यहाँ पहुँचे, इतनी देरमें कामरूपसिंह मेरी को मारकर चला गया था। इसके बाद जब मैं इनसे

रही थी तो वह अपने साथियोंके साथ फिर आया, परन्तु सौभाग्यवश इनपर उसकी दृष्टि न पड़ी और ये बच गये, परन्तु इन्होंने बिना मुझसे कहे, जब उसका पीछा किया तब मैं शान्त न रह सकी। मैं जानती थी, कि कामरूपसिंहके मनुष्य धोखा देकर इनपर अवश्य ही चोट करेंगे। कुछ भी हो, आपके आशीर्वादसे मैं यथा-समय वहाँ पहुचकर इनकी रक्षा करनेमें समर्थ हुई हू।"

अब उस वृद्ध पुरुषने मेरी ओर देखकर कहा—"आपका परिचय ?"

परन्तु परिचय देना मुझे साँपके बिलमे हाथ डालनेसा मालूम होता था। न जाने क्यों मन इनपर विश्वास करनेकी आज्ञा न देता था। अपने मनकी इस गतिपर मैं स्वय झुँझला उठता था, परन्तु उसके विपरीत चल न सकता था। इसीलिये मैंने कहा—"आपकी कन्याने बडी विपत्तिके समय मुझे सहायता पहुचाई है। अत मैं इनका अत्यन्त कृतज्ञ हू। परन्तु कई अनिवार्य्य कारणोंसे अभी मैं अपनेको प्रकट नही कर सकता।"

इतना सुनते ही उस रमणीने घूमकर मेरी ओर देखा। बड़ी बडी आँखोंमें डबाडब भरे आँसू और कुछ अरुणाई, बीचमें काली पुतली—ठीक ऐसा मालूम होता था, कि दो सुन्दर सरोवरोंमें सूर्य्योदयके समय एक एक नील कमल खिल रहे हैं। उसकी दृष्टिसे ऐसा मालूम होता था, मानों मेरी इस बातपर उसे कुछ आश्चर्य्य, कुछ क्रोध और कुछ अभिमान भी हुआ। शायद उसने मुझे अकृतज्ञ समझा। इसीलिये उसने अपनी सुरी-

हीदार गर्दन घुमाकर बडी शानसे मेरी ओर देखा और फिर सिर झुका लिया।

इसी समय वह वृद्ध बोल उठा—"अच्छी बात है, न सही। हमें जाननेकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। अब बहुत रात गई, इस समय आराम कीजिये (उस स्त्रीकी ओर देखकर) बेटी! अब इनके आरामका बन्दोबस्त कर दो। इस रात्रिके समय अब ये कहाँ जायँगे।"

इतना सुनते ही वह स्त्री उठ खडी हुई। मैं इनका रहस्य जाननेके लिये बडा उत्सुक हो रहा था। इससे बढकर दूसरा मौका कौन मिल सकता था? इसलिये उस सुन्दरीके साथ जानेके लिये तय्यार हो गया। सुन्दरी मुझे अपने साथ लिये कई कमरे, दालान पार करती हुई एक स्वच्छ सजे सजाये कमरेके दरवाजेपर जा पहुंची। इसके बाद उस कमरेमें मुझे पहुचाकर वह वहाँसे हटना ही चाहती थी, कि मैंने कहा—"सुन्दरी! मालूम होता है, कि मेरा उत्तर सुनकर और अपना प्रकृत परिचय छिपाते देखकर तुम रुष्ट हो गई हो, परन्तु रुष्ट होनेकी बात नहीं है। यहाँकी जैसी अवस्था देख रहा हूँ, उससे सहजमें किसीपर विश्वास करनेकी इच्छा नही होती।"

रमणी रूखे स्वरमें बोली—"आपकी इच्छा! हमलोग तो आपको बाध्य नही करते। और ऐसी कोई आवश्यकता भी तो नहीं है।"

इतना कहकर वह रमणी उस कमरेसे यह कहकर चली गई,

कि "अब आप रातभर विश्राम कीजिये। सवेरे ही आपसे मिलूँगी।"

उसके चले जाने बाद उस मकानके चिराग बुझ गये। मैं भी उस कमरेमें बिछे हुए पलङ्गपर जा लेटा और आँखें बन्दकर कुछ सोचने लगा। कमरेका दरवाजा कुछ सोचकर ही मैंने भीतरसे बन्द न किया था ; परन्तु अच्छी तरह भिड़का लिया था।

लगभग एक घण्टेतक उस मकानमें पूरा सन्नाटा छाया रहा। ऐसा मालूम होता था, मानों सभी घोर-निद्रामें पड़े हैं। मैं भी अर्द्धनिद्रित अवस्थामें पडा था, कि एकाएक ऐसा मालूम हुआ मानों मेरे कमरेका दरवाजा किसीने खोला। उस समय कमरेके लैंपकी रोशनी अत्यन्त क्षीण हो रही थी। मैंने उसी क्षीण आलोकमें देखा, कि वही रमणी किवाड़ जरा खोलकर मेरी ओर देख रही है। थोडी देरतक मुझे अच्छी तरह देखने बाद, उसे जब विश्वास हो गया, कि मैं सो गया हू, तो वह दबे पाँव वहाँसे चली गई। इसी समय किसीने मानों मेरे कानमें धीरेसे कहा—"सावधान!"

मैं सावधान ही था, उसके जाते ही मैं उठ खडा हुआ। इसके बाद लैम्प बुझाकर मैंने दबे पाँव उस रमणीका अनुसरण किया। वह रमणी अन्धकारमें ही कुछ दूर जाकर एक कमरेमें घुस गई। मैं भी दबे पाँव उसके पीछे पीछे उस कमरेतक जा पहुचा।

दरवाजा भिड़का हुआ था। दरारोंसे झाँककर देखा, कि

ीषण वेशधारी मनुष्य अर्द्ध चन्द्राकार भावसे बैठे हुए हैं, उनके बीचमें वहाँ कामरूपसिंह बैठा हुआ है।

यह स्त्री वहाँ जाकर बोली—"सयमसिंह एकदम बेहोश सोया हुआ है।"

कामरूप बोला—"क्या तुमने अच्छी तरह देख लिया है ?"

स्त्री बोली—"खूब अच्छी तरह।"

कामरूप—तो आज इसे समाप्त ही कर देना चाहिये।

एक पुरुष बोल उठा—"परन्तु रानीकी क्या आज्ञा है ?"

कामरूप बोला—"रानीकी आज्ञाकी आवश्यकता नहीं है।"

दूसरा बोला—"परन्तु इस सम्बन्धमें एक बार रानीसे पूछ लेना आवश्यक है।"

तीसरा बोला—"मेरी रायमें जीवानन्द जिस कारागारमें कैद है, उसीमें इसको भी कैद कर देना चाहिये। फिर रानीकी आज्ञा लेकर दोनोंको वहीं समाप्त कर दिया जायेगा।"

कामरूप बोला—"जीवानन्द गुप्त महलमें कैद है। वहाँ इसको भेजना किसी अवस्थामें भी उचित नहीं। शायद वहाँ अब स्थान भी नहीं होगा ?"

स्त्री बोली—"परन्तु रानीकी सम्मतिके विरुद्ध इसकी हत्या करना भी उचित नहीं है।"

यह सुनकर कामरूपसिंह कुछ चिन्तित होकर बोला—"मुझे मालूम होता है, कि सयमसिंहका नाश किये बिना हमलोगोंकी रक्षा नहीं है। एक सयम द्वारा सभी कार्य हो सकते हैं। देखो,

इसके फँसानेकी कितनी चेष्टा की गई, परन्तु कोई फल न हुआ। आज न जाने कैसे वह इसकी बातोंमें आ गया।"

स्त्री बोली—"तथापि मुझे विश्वास नहीं है, कि वह मेरे जालमें अधिक दिन रहे।"

कामरूपसिंह कुछ सोचकर बोला—"अच्छा, दुर्जनसिंह! तुम मानिनीको साथ लेकर रानीके पास जाओ और शीघ्र ही उनकी आज्ञा ले आओ। तबतक हमलोग सयमसिंहपर दृष्टि रखेंगे।"

उनमेंसे एक भीषणकाय मनुष्य अकड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ, साथ ही वह रमणी भी इठलाती हुई उठकर चली।

अब मैं दरवाजेसे कुछ हटकर खड़ा हो गया। वे दोनों वहाँ से निकलकर तेजीसे एक ओरको चले।

मुझे उनका पीछा करनेकी कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि मैं समझ गया था, कि ये अभी लौटकर आ जायँगे, पर एक बार रानीका महल देख लेनेकी प्रबल इच्छा हुई। परन्तु यह सोचकर, कि शायद फिर भीतर न घुस सकूँ, मैं अपनी दण्डाज्ञा सुननेके लिये वहीं चुपचाप खड़ा रहा। इस बीचमें वे दस्यु आपसमें एक विचित्र भाषामें न जाने क्या बातें करते रहे, जो समझमें न आती थी। लगभग आध घण्टे बाद वे दोनों लौट आये। रानीने मुझे कैद करनेकी आज्ञा दी। अब मेरे सावधान होनेका अवसर आ गया। रानीकी इस आज्ञापर कामरूपसिंह झुँझलाया भी, परन्तु कुछ बोल न सका। अन्तमें बहुत

कुछ सोच-विचारकर यह स्थिर किया गया, कि मैं बेहोशकर कारागारमें पहुँचा दिया जाऊँ।

अभी इस तरहकी वातें हो ही रही थीं, कि इसी समय मुझे किसी मनुष्यकी पद ध्वनि सुन पडी। मैं एक ओर हटकर खडा हो गया। तुरन्त ही मैंने देखा, कि एक मोटा ताजा मनुष्य उसी दरवाजेकी ओर आ रहा है। वह मनुष्य वहाँ आकर धडधडाता हुआ भीतर चला गया और घवडाहटके साथ बोला—"जीवानन्दने भोजन त्याग दिया है और उन दोनोंको भी अपने पास नहीं जाने देता।"

कामरूपसिंहने कहा—"क्या वासना सुन्दरी और कामना कुमारीका प्रभाव कम हो गया? यह तो वड़े आश्चर्य्यकी वात है! परन्तु कोई चिन्ता नहीं। मनोहरसिंह, तुम घवड़ाओ मत। जाओ, सावधानतासे गुप्त महलकी रक्षा करो, मैं कल अवश्य आऊँगा।"

इसके वाद वह मनुष्य वहाँसे लौटकर वाहरकी ओर चला। मैंने भी उसका पीछा किया। सदर-दरवाजेपर इस समय एक वलिष्ठ पहरेदार वैठा हुआ था। वह मनुष्य उससे दो चार वातें कर वाहर चला गया। अव विलम्ब करनेका समय न था, मैंने एकाएक पीछेसे क्लोरोफार्मकी पिचकारी उसकी नाकपर मारी। वह क्षणभर वाद ही उसी स्थानपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और मैं तेजीसे उस मनुष्यके पीछे चल पडा। वह मनुष्य अभी थोडी ही दूर गया था, कि मैं अपना वेश परिवर्त्तनकर एक वृद्ध

कृपकके रूपमें उसका पीछा करने लगा। मेरे पहने हुए कपड़ोंकी गठरी मेरी पीठपर बँधी थी।

वह मनुष्य अनेक पथोंसे होता हुआ, एक बडे ही गन्दे मुहल्लेमें जा पहुचा। एक कच्चे मकानके दरवाजेको उसने तीन बार थपथपाया। भीतरसे किसीने पूछा "संकेत।" वह बोला "माया"। दरवाजा खुल गया और वह मनुष्य उस मकानमें चला गया।

आज रात्रि भरका ही समय था। यदि इतने समयके बीच में जीवानन्दका उद्धार न कर सका, तो संभव है, कि कल कामरूपसिंह उन्हें कहीं अन्यत्र भेज दे अथवा किसी दूसरे ही कुचक्रमें फँसा दे, यह सोचकर मैंने आजही उनका उद्धार करना निश्चित किया। साथही मनमें यह चिन्ता भी लगी हुई थी, कि मुझे उस मकानमें न देखकर कहीं वे दुर्दान्त डाकू इधर ही न आ जायें। परन्तु अब अधिक सोच-विचारका समय न था, मैंने शीघ्रतासे उस दस्यु दलके मनुष्योंसी ही अपनी सूरत और वेश-भूषा बनाई और शीघ्रतासे उस मकानके दरवाजेपर जा पहुंचा। मैंने जोरसे दरवाजेमें धक्का दिया। तुरन्तही किसीने पहलेकी ही भाँति पूछा—"तुम कौन हो ?"

मैंने कहा—"दरवाजा खोलो, मुझे सरदारने भेजा है!"

भीतरसे शब्द आया—"संकेत।"

मैंने कहा—"माया"। दरवाजा खुल गया। खुलते ही यमदूतके समान एक कृष्ण-काय दुर्दान्त-शरीर मनुष्य तीक्ष्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखता हुआ दिखाई दिया।

मुझे सामने देखते ही उसने पूछा—"तुम्हें किसने भेजा है ?"

मैंने कहा—"सरदार कामरूपसिंहने। वे मानिनीवाले मकानमें बैठे कुछ परामर्श कर रहे हैं। संयमसिंह उस मकानसे भाग गया है। मनोहरसिंहके द्वारा अभी उन्होंने कल आनेको कहला भेजा था, परन्तु शायद संयमसिंहने उनकी बातें सुन ली हों, इसलिये मुझे भेजा है, कि जीवानन्दको दूसरे स्थानमें पहुँचा दूँ।"

उसने पूछा—"कहाँ पहुँचाने कहा है ?"

मैं क्या उत्तर दूँ। "रानीका महल"का नाम स्मरण था, मैंने कहा—"रानीके महलके खास कैदखानेमें।"

वह मेरा उत्तर सुनकर कुछ सोचमें पड गया। कुछ क्षण बाद बोला—"कोई पत्र दिया है ?"

मैंने कहा—"नहीं, उन्होंने कहा है कि संकेत शब्द ही पत्र है।"

उसने पूछा—"तुम कबसे इस दलमें आये ?"

मैंने कहा—"अभी थोडे ही दिन हुए हैं।"

हम दोनोंकी बातें हो ही रही थीं, कि इसी समय मनोहरसिंह वहाँ आ पहुँचा। उस पहरेदारने उससे भी पूछा ; परन्तु उसे भी मेरी बातपर विश्वास न हुआ। अब बडी कठिन समस्यामें जान पडी। दोनों ही मेरे विरुद्ध हो गये। एक, मुझे गिरफ्तार करनेके लिये मेरी ओर अग्रसर हुआ और दूसरा उसकी सहायताको। इसी समय एक सुन्दरी रमणी भी वहाँ न जाने किस ओरसे आ पहुँची। एकाएक उस स्त्रीको देखते ही मुझे खयाल हो आया, कि शायद इनके सम्बन्धमें ही मनोहरसिंहने कहा था

उसने आते ही दूसरे मनुष्यको सम्बोधनकर कहा—"मनोहर-सिंह! अबतक जीवानन्द दरवाजा नहीं खोलता। सरदार हम लोगोंको दण्ड तो न देंगे? तुम एक बार फिर सरदारके पास जाओ।"

मैंने उस स्त्री द्वारा अपना काम बनानेकी आशासे तुरन्त ही पिस्तौल निकालकर उस पहरेदारपर आक्रमण किया। गोली उसकी जाँघमें लगी और वह चिल्लाकर गिर पड़ा, तुरन्त ही मनोहरसिंहने मुझपर आक्रमण किया। गोली मेरे ललाटके पाससे निकल गयी, परन्तु अब वह अकेला था। मैंने उसका निशाना चूकता देखकर उसके हाथमें गोली मारी। पिस्तौल उसके हाथसे छूटकर गिर पडी। दूसरी गोली उसके पैरमें लगी और वह गिर पड़ा। अब मैंने क्लोरोफार्मकी सहायतासे उन्हें बेहोशकर एक कोठरीमें कैद कर दिया। वह स्त्री यह दशा देखकर भयसे काँप रही थी। मैंने अब उसकी ओर पिस्तौलका निशाना साधकर कहा—"बताओ, जीवानन्द कहाँ है?"

पहले तो वह स्त्री कुछ हिचकिचायी, पीछे प्राणभयसे तय्यार हो गई। वह मुझे कई कोठरियाँ तथा दालानमें घूमाती हुई एक तहखानेमें ले गई। तहखानेका पथ बडा ही अन्धकारमय तथा सकीर्ण था, परन्तु भीतर जाकर मेरे आश्चर्य्यका वारापार न रहा, क्योंकि मैंने देखा, कि वह स्थान बड़ी उत्तमतासे सजाया हुआ है, जिसमें नाना प्रकारके सुन्दर पुष्प खिले और फल लदे हुए हैं।

अभी हमलोग भीतर पहुँचे ही थे, कि इसी समय एक दूसरी

स्त्री जो पहलीसे सुन्दरतामें किसी दर्जे कम न थी, लपकती हुई वहाँ आ पहुँची और बोली—"क्यों कामना! तुम किसे ले आई?"

वह बोली—हाँ, बहन वासना! आज एक नवीन अतिथिको ले आई हूं।"

मालूम हो गया, कि मेरी सगिनीका नाम कामनाकुमारी है और दूसरीका वासना सुन्दरी! वासना सुन्दरी वास्तवमें बड़ी सुन्दरी थी, परन्तु उसके चेहरेपर तेजके बदले पीलापन झलक रहा था, चेहरा बड़ा हँसमुख तथा भावपूर्ण था। कामना-कुमारी भी वैसोही दिखाई देती थी। इन दोनोंमें उतना ही अन्तर था जितना शिशिर और हेमन्तमें रहता है। दोनों देखनेमे बहनें मालूम होती थीं। दोनोंकी ही दृष्टि रसीली, पर हृदय कलुषित था। दोनोंके ही हाव-भाव कटाक्ष प्रलोभक, परन्तु संकट फल-दायी थे। दोनों ही चचला अथच मदोन्मत्त करनेवाली थीं। जिस समय वासना तीव्र गतिसे चलती, उस समय मालूम होता था, कि पथके बाधक भीषणसे भीषण दुरूह पर्वत भी वह चूर्ण विचूर्ण कर डालेगी। साथही उसी तरह जब कामना अपना वेग दिखाती, तब उसके सामने कर्म्म-अपकर्म्म एक आडम्बर दिखाई देने लगते थे। अस्तु एकाएक वासनाने जिस समय कामनासे आकर प्रश्न किया, उस समय कामना कुछ सकुचा गई। वासनाने फिर पूछा। अब वासनाने आद्योपान्त सब घटनायें कह सुनायीं। सुनते ही वासनाने एक बार झिझककर मेरी ओर देखा

और बोली—"आप जब आही गये हैं तब आपकी सब तरहसे खातिर करना हमलोगोंका कर्त्तव्य है। अतः आइये, बैठिये।"

मैंने कहा—"पहले यह तो बताओ, कि जीवानन्द कहाँ हैं ?"

जीवानन्दका नाम सुनते ही उसने कहा—"यह मैं तो नहीं जानती, शायद कामना जानती हो ?" इतना कहकर उसने एक मतलबभरी दृष्टि कामनापर डाली। कामनाने कहा-"थे तो यहीं परन्तु इसी समय कहाँ जा छिपे हैं, मैं नहीं कह सकती। मैं तो स्वयंही यह समाचार सरदारको कहलानेके लिये बाहर गयी थी।"

मैंने देखा, कि इनसे अब सहजमें काम न निकलेगा। वासनाने कामनाको भी अपने पक्षमें मिला लिया है। यह देखकर मैंने पहले वासनापर ही आक्रमण किया। वह बिचारी सम्हले सम्हले तबतक मैंने उसे बेहोशकर उसके हाथ पैर बाँध दिये। इसके बाद पिस्तौल निकालकर कामनाकी ओर बढ़ा। वह पिस्तौल मेरे हाथमें देखते ही काँप उठी। बोली—"मैं बता देती हूं।" इतना कहकर उसने वह कोठरी दिखाई जिसमें जीवानन्द थे। उसके हाव-भाव तथा भय-कम्पित कलेवरको देखकर ही मुझे विश्वास हो गया, कि यह झूठ नहीं बोल रही है। इसके बाद उसके भी हाथ-पैर बाँध, बेहोशकर मैंने उसीमें डाल दिया और जीवानन्द जिस कोठरीमें थे, वहाँ जा पहुचा। धन्य परमेश्वर कि जीवानन्दको मैंने सकुशल पाया ! इसके बाद क्या हुआ, सो जीवानन्दके मुँहसे सुन ही चुके हैं।

आठवाँ परिच्छेद ।



जीवानन्दकी आत्मकथा ।

समयपर तिनकेका सहारा ही बहुत होता है। तिसपर मुझे तो सयमसिंह जैसे सयमीका सहारा मिला था। फिर भला कामरूपके निविड कारागारसे मेरे मुक्त होनेमें क्या सन्देह था ? अत सयमसिंहकी दयासे मैं कारामुक्त हो, अन्य कैदियोंको यथा-स्थान भेजकर जिस समय निश्चिन्त हुआ, उस समय मनमें कुछ शान्ति आयी, शरीर प्रफुल्ल और मन पुलकित मालूम होने लगा। संयमसिंह मेरे पास ही थे। मैंने उनकी ओर देखकर स्नेह भरे वचनोंमें कहा --"बन्धु सयम ! तुम्हारी दयासे ही आज मेरा नवीन जीवन हुआ।"

संयमसिंहने मेरी ओर देखा और हँसकर कहा-"सब उसी मायामयकी अपार लीला है, परन्तु अब अपने बन्धु सयमको छोडनेकी कभी चेष्टा तो न करोगे न ?"

मैंने कहा—"नहीं बन्धु, मेरी बातपर विश्वास रखो। परन्तु अब कामरूपसिंहको गिरफ्तार करनेकी शीघ्र ही चेष्टा करनी चाहिये।"

संयमसिंहने कहा—"मैं अभी तय्यार हूँ।"

मायापुरीकी लीलासे मैं परिचित था। किस समय क्या

विपत्ति-पर्वत ढह पड़े, इसका कोई ठिकाना न था। इसीलिये मैंने कहा—"आज दिन भर तो शान्ति लेने दो।"

सयमसिहने सहर्ष मेरी बात स्वीकार कर ली। दिनभर हमलोग कामरूपसिहको गिरफ्तार करनेके उपाय ही सोचते रहे, परन्तु वर्षाके बादलके समान ही अनेकानेक रङ्ग दिखाकर तर्ककी चोटसे वे सभी छिन्न भिन्न हो गये। इसके बाद समयानुसार कार्य करनेका विचारकर सन्ध्या होते ही अपने सरो-सामानसे सुसज्जित हो, हमलोग घरसे निकल पडे और सीधे उस मकानकी ओर चले जिसमे मेरे कारागार-वासका सूत्रपात हुआ था।

संध्या हो गयी थी। कृष्ण अष्टमीके चन्द्रदेव निर्मल आकाशमें अपनी तारा-सखियोंके साथ रासमण्डल मचा रहे थे। मायापुरीके सुन्दर सजीले मकानोंपर उनकी किरण रेखायें अनोखी छटा दिखा रही थीं। हमलोग भी इस समय प्रसन्न-चित्त हो अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो रहे थे। अस्तु, जिस समय हमलोग उस मकानके दरवाजेपर पहुचे, उस समय रात अधिक बीत गयी थी। उस गलीमें घोर सन्नाटा छाया हुआ था। उस मकानमें भी घोर सन्नाटा था। आज रमणी-कण्ठ निसृत, वह आकर्षक मधुर तान नहीं सुन पड़ती थी। मनो दीपक ज्योति राशिसे वह मकान जगमगा न रहा था और वह हृदयपर आघात करनेवाले, नूपुरकी ध्वनिसे गूंजरित ही हो रहा था, बल्कि श्मशानसा सन्नाटा, निर्जीव विस्तृत भूखण्ड सी

निस्तब्धता तथा किसी भीषण तूफानके आगमनके पहले जैसी शान्ति बिराज रही थी। उस मकानकी ऐसी विपरीत अवस्था देखकर मैंने संयमसिंहसे दबी जबानमें कहा—"आज तो यहाँका रङ्ग-ढङ्ग ही बदल गया है।"

संयमसिंहने कहा—"सम्भव है, कि कामने हमें फँसानेकी यह चाल चली हो, परन्तु इससे हतोत्साह होनेका कोई कारण नहीं है। देखो, दरवाजा खुला है, भीतर चलो।"

इसके बाद ही हमलोग दबे पाँव भीतर घुस गये। नीचेकी कोठरियोंके दरवाजोंमें ताला लगा हुआ था। यह देखकर हमलोग ऊपर चढ़ गये। जिस कमरेमें मैंने उस दिवस रतिको अनोखी शानसे बैठे देखा था, वह इस समय उजाड़के समान हो रहा था। न तो उसकी वह सजावट ही थी और न वह चमक दमक ही। प्राणहीन शरीर जिस तरह निस्तेज हो जाता है, बुद्धिहीन पुरुष जिस तरह त्याज्य रहता है, उसी तरह रतिहीन यह कमरा भी निस्तेज और शृङ्गारहीन रहनेके कारण ऐसा मालूम होता था, कि इसके अधिवासी इसे छोडकर चले गये हैं। उस दिवस जिस कमरेमें रतिको चोटी गूथवाते देखा था, उसकी भी वैसी ही दशा थी, जैसी पतिहीन स्त्री, अथवा अलंकारहीन कविताकी रहती है। सारांश यह, कि मकानका पहला भाग घोर अन्धकारमय, जनशून्य और निस्तब्ध हो रहा था। अब हमलोग दूसरे भागमें घुसे। वहाँकी भी वही दशा देखी। हमलोगोंने प्रत्येक कोठरी, दालान सब कुछ खोज डाले। परन्तु कहीं किसी

का पता नहीं चला। लाचार हमलोग उस मकानसे लौटना ही चाहते थे और उतरकर पहले खण्डके बिचले भागमें आये ही थे, कि एकाएक जिन कोठरियोंमें हमलोग ताले बन्द देख गये थे, उनका दरवाजा खुल गया और उनमेंसे कितने ही सशस्त्र डाकू बाहर निकलकर हमलोगोंकी ओर झपट पड़े। उनमेंसे एकके हाथमें एक बड़ी लाल्टेन थी, जिसके प्रकाशसे वह आँगन उजियाला हो रहा था।

फिर विपत्तिमें जान पडी, परन्तु इस बार हमलोग भी साव-धान थे और डाकू-दल भी थोडी भूल कर गया। अभी हमलोग सीढ़ीपर ही थे और दरवाजा होकर आँगनमें भी न पहुंचे थे, कि वे बाहर निकल पडे। यदि वे हमलोगोंके आँगनमें पहुचनेपर बाहर आते, तो अनायास ही हमलोगोंको पकड़ सकते थे, परन्तु वे चूक गये। यह अच्छा अवसर समझकर सयमसिंहने उस मनुष्यके हाथमें लक्ष्यकर गोली मारी, जिसके हाथमें लाल्टेन थी। निशाना अचूक बेठा और उस डाकूके हाथसे लाल्टेन छूट पड़ी। घोर अन्धकार छा गया। डाकू-दल घबडा उठा। मैंने और संयमसिहने और भी कई आवाजें कीं—दो बार गोली भी चलायी, जो दो डाकुओंको लगी और वे चिल्लाकर लोट पडे। इसी समय अवसर देख, हमलोग आँगनमें आकर एक किवाड-की ओटमें छिप रहे। इस समय आँगनमें धुआँधार गोलियाँ चल रही थीं। हमलोगोंके धोखेमें डाकू-दलके मनुष्य आपसमें ही लड और चिल्ला-चिल्लाकर भूतलशायी हो रहे थे।

इसी समय एक डाकू दूसरी लालटैन निकालकर वहाँ आ पहुँचा। उसकी रोशनीमें मैंने भी देखा, कि कामरूपसिंह अपने ही मनुष्योंको आहत और मृत देख तथा हमलोगोंको न देखकर अवाक् हो रहा है। तुरन्त ही उसने चिल्लाकर कहा—"तुम-लोग यह क्या कर रहे हो? वे दोनों कहाँ चले गये?"

इसी समय किसीने ऊपरसे कहा—"संयमके आगे कामको पराजित होना ही पड़ेगा। अब जीवानन्द अकेला नहीं, उसके साथ संयमसिंह भी है।"

कामरूपसिंहने गरजकर कहा—"बड़े बड़े सयमीको काम-रूपने पलमें गिरा दिया है। (अपने मनुष्योंसे) जल्दी जाओ, ऊपर कौन है? उसे पकड़कर मेरे पास लाओ।"

तुरन्त ही ऊपरसे उत्तर मिला—"मैं तो सदा ही तुम्हारे पास रहता हू, परन्तु तुम मेरी बात कभी नहीं मानते हो। संयमी जब संयमच्युत होता है, तभी उसपर तुम्हारा प्रभाव हो सकता है—अन्यथा नहीं। जबतक संयमसिंह जीवानन्दके साथ है, तबतक तुम उसे नहीं पकड़ सकते।"

आवाज पहचानीसी मालूम हुई। इतने दिनोंतक कामरूप-सिंहके फेरमें रहनेके कारण स्मरण शक्ति कुछ हीन हो गई थी। अत कुछ देरतक सोचने बाद, स्मरण आया, कि यह विवेका-नन्दके शब्द हैं, विवेकानन्दको यहाँ पाकर मनमें कुछ आश्चर्य और सन्देह भी हुआ, कि कहीं वह भी तो इसी दलमें सम्मिलित नहीं हैं, परन्तु उनकी बातें तो अपने ही पक्षकी भी होती थीं।

कुछ निर्णय न कर सका। कई डाकू दूसरी लाल्टेन ले उस बोलनेवालेकी खोजमें ऊपर चले गये। कामरूपसिंह नीचे खड़ा होकर चिल्लाता और बड़बड़ाता रहा।

इतनेहीमें उसके साथियोंने ऊपरसे कहा—"यहाँ कोई भी नहीं है।"

यह सुनकर कामरूपसिंह और भी खिजला उठा। वह गरज गरजकर अपने मनुष्योंको हम दोनोंको खोजने और उस बोलनेवालेका पता लगानेकी आज्ञा देने लगा। वे डाकू भी खिजलाये हुए उन्मत्तसे इधर उधर हमलोगोंको ढूँढ़ने लगे।

विपत्तिमें धीरज ही प्रधान है। हमलोगोंको गायब और अपने मनुष्योंको मृत तथा आहत देखकर कामरूपसिंह घबड़ा गया था। इसीलिये उसके पास ही रहनेपर भी वह हमलोगोंका पता न लगा सका और न उसके मनुष्य ही। वे दौड़ते हुए ऊपर नीचे सब ओर खोजते थे, परन्तु किवाडके पीछे कोई न आता था। कुछ देरतक यही अवस्था रही। जब हमलोगोंका किसी तरह पता न लगा, तब कामरूपसिंहने चिल्लाकर कहा—"वे जा कहाँ सकते हैं? बाहरका दरवाजा बन्द है, वे अवश्य ही यहीं कहीं हैं।"

इसी समय ऊपरसे फिर शब्द आया—"अवश्य हैं, परन्तु सयमके पास तुम नहीं जा सकते।"

यह आवाज सुनते ही कामरूपसिंह तिलमिला उठा और झपटकर ऊपर चला गया। उसके साथियोंने भी उसका ही

अनुसरण किया। कामरूपसिंहको ऊपर जाते देखकर, संयमसिंह मेरा हाथ पकड़े हुए, झपटकर बाहरी दरवाजेके पास आ पहुँचे और क्षणभर बाद ही दरवाजा खोलकर हमलोग बाहर निकल आये। बाहर निकलकर सयमसिंहने दरवाजा बन्दकर ताला लगा दिया। इसके बाद मुझे उसी स्थानपर खड़े होकर साव-धानतासे उस स्थानकी रक्षा करनेका भार देकर सयमसिंह लपकते हुए एक ओर चले गये और थोड़ी ही देर बाद कई सशस्त्र सिपाहियोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे। इनमें शान्तिसिंह सन्तोषसिंह, क्षमासिंह, प्रभृति कई सिपाही तो मेरी खूब जान-पहचानके थे, परन्तु मैं इन्हें वहीं छोड आया था। इस समय इन्हें तथा अन्य सिपाहियोंको देखकर मेरे आश्चर्यका वारापार न रहा, क्योंकि मैंने आजतक इन्हें सयमसिंहके साथ न देखा था और यही समझता था, कि सयमसिंह दो चार मनुष्योंको साथ लेकर ही मेरी सहायताके लिये आये हैं। अस्तु, सयमसिंहने आते ही उन सिपाहियोंको यथास्थान खड़ा कर दिया और उन्हें खूब समझाकर हम दोनों चार सिपाहियोंको साथ ले भीतर घुसे। आँगनमें अब भी सन्नाटा था, परन्तु पैरोंके शब्दसे मालूम होता था, कि ऊपर कुछ मनुष्य चल रहे हैं। अब मैंने साहसकर नीचे खाँस दिया। खाँसनेका शब्द सुनते ही, उनमेंसे एकने झाँककर नीचेकी ओर देखा। तुरन्त ही लोग धड़धड़ाते हुए ऊपरसे नीचे उतर आये, परन्तु जो सीढ़ीसे नीचे आया, वही गिरफ्तारकर, बाहर पहुँचा दिया गया। इस तरह उसी

दिवस कई मनुष्य गिरफ्तार हुए, परन्तु कामरूपसिंह नीचे न उतरा। अब उन गिरफ्तार मनुष्योंको उसी मकानके एक कमरेमें कैद और पहरेका पूरा प्रबन्धकर, हमलोग बाहरके दरवाजेमें भीतरसे ताला लगा, कामरूपसिंहको खोजमें ऊपरकी ओर चले। हमलोगोंने रत्ती-रत्तीकर समूचा मकान ढूँढ़ डाला परन्तु कहीं भी कामरूपसिंहका कोई चिह्न न दिखाई दिया। न जाने कैसे और कहाँ वह अन्तर्द्धान हो गया। इसी खोज-ढूँढ़में सवेरा हो गया, परन्तु तब भी उसका पता न लगा। लाचार उन सिपाहियोंको साथ लेकर, हमलोग लौट आये। इस समय सवेरा हो चला था।

इतने मनुष्योंको गिरफ्तार देखकर, बाजारके लोग बड़े आश्चर्यमें आ गये थे और एक बहुत बडी भीड हमलोगोंके पीछे आ रही थी। जिस समय हमलोग प्रधान पथ पारकर आगे बढे, उस समय मैंने देखा, कि एक ओरसे एक बडा ही विचित्र मनुष्य हमलोगोंकी ओर बडी तीक्ष्ण दृष्टिसे देखता हुआ चला गया। वह बडा ही दुबला पतला परन्तु लम्बा था, सिरके केश रूखे छोटे तथा खडे थे, आँखें लाल हो रही थीं और छोटी छोटी थीं, नासिकाका अग्रभाग कुञ्चित तथा होठ मोटे थे, उसका पैर साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा कुछ अधिक लम्बा था। उस मनुष्यकी आकृति भयानक और चाल अत्यन्त तेज थी। उस मनुष्यको इस तरह अपनी ओर देखते देखकर, मुझे बडा ही सन्देह हुआ; परन्तु उस समय कुछ बोलनेका अवसर न था। इन गिरफ्तार डाकू-

ओंको मायापुरीसे बाहर प्रधान अफसरके पास भेज देना परम आवश्यक था, क्योंकि उनकी ऐसी ही आज्ञा थी। अस्तु, हमलोग उन्हें साथ लिये हुए अपने डेरेपर चले आये और तुरन्त ही उन्हें हथकडियाँ पहनाकर, कड़े पहरेमें बड़े अफसरके पास भेजवा दिया। सयमसिंह भी शीघ्र ही लौट आनेका वादाकर उनके साथ चले गये।

इस झमेलेमें ही दिनका अधिक भाग बीत गया और क्रमश: सूर्यदेवके अस्ताचलकी ओर पधारनेका समय आ गया। अभी मैं भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त हो बैठकर कामरूपसिंहके भाग जानेपर अफसोस कर ही रहा था, कि इसी समय किसीने दरवाजा खटखटाया। तुरन्त ही मैंने झाँककर नीचकी ओर देखा तो विचित्र शक्ल सूरत की एक रमणीको हाथमें पत्र लिये दरवाजेपर खडी पाया।



नवाँ परिच्छेद।



अमर्षसिंहका फेर।

जब सन्देहका कीड़ा मनुष्यके हृदयमें प्रवेश कर जाता है, तब उसे पद-पदपर सन्देह ही होता है। वह प्रत्येक मनुष्यकी प्रत्येक चालपर सन्देह करने लगता है और जासूसोंका तो जीवन ही सन्देहमय है। यदि वे सन्देह करना न सीखें, तो इस जासूसी जीवनमें उन्हें कभी सफलता ही प्राप्त न हो। अतः उस विचित्र स्त्रीको देखकर मेरे मनमें पहले ही सन्देह हो गया, परन्तु यह जानना भी आवश्यक था, कि वह स्त्री कौन है। अतः मैंने पहरेदारको दरवाजा खोलकर उस स्त्रीको भीतर बुलानेके लिये कहा।

पहरेदार उस स्त्रीको अपने साथ लिये हुए ऊपर आ पहुंचा। उस स्त्रीका रङ्ग घोर कृष्ण रहनेपर भी उसमें सुन्दरता थी। उसके हाथ-पैर हृष्ट-पुष्ट तथा देखनेमें वह अबला नहीं बल्कि सबला मालूम होती थी। उसके हाव-भावसे ही मालूम होता था, कि उसमें चञ्चलता नहीं बल्कि गम्भीरता है, उसकी पोशाक देखकर ठीक पता नहीं लगता था, कि वह किस देशकी रहनेवाली है, परन्तु भाषा बड़ी ही प्राञ्जल और उन्नत बोलती थी और उसकी बातें ऐसी होती थीं, जिससे हृदयपर प्रभाव पड़ता था।

उस स्त्रीने आगे बढ़कर कहा—"क्या आपका ही नाम जीवानन्द है ?"

मैंने कहा—"हाँ।"

इतना सुनते ही उसने एक पत्र मेरे हाथमें दे दिया। पत्र हाथमें लेकर मैंने पूछा—"तुम कहाँसे आयी हो ?"

उस स्त्रीने गम्भीरतासे कहा—"इसी मायापुरीसे।"

मैं—तुम्हें किसने भेजा है ?

स्त्री—पत्रमें उसने अवश्य ही अपना नाम लिखा होगा।

मैं—तुम्हारा नाम ?

स्त्री—इच्छामती।

मैं—नाम तो बड़ा विलक्षण है !

स्त्रीने कोई उत्तर न दिया। मैंने पत्र खोलकर भेजनेवालेका नाम देखा। नीचे मायावतीके सुन्दर अक्षरोंमें उसका नाम लिखा था। पत्रमें लिखा था :—

"यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि कामरूपसिंहके कठोर कारागारसे तुम निर्विघ्न छूट आये। मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ। तुम एक विलक्षण और प्रसिद्ध जासूस हो। इस पत्रके साथ ही एक दूसरा पत्र भी भेजती हूँ। इसको पढ़ लेना और यदि मेरी सहायता करनेकी कुछ भी इच्छा हो, तो इस स्त्रीके साथ बिना विलम्बके चले आना।

तुम्हारी—

मायावती।"

दूसरे पत्रमें लिखा था:—

"तुम्हारी इतनी स्पर्द्धा, कि मेरे कार्यमें हस्तक्षेप करो। सावधान! आज रात्रिके बारह बजेतक मैं तुम्हारे उत्तरकी राह देखूँगा। यदि इस बीचमें तुमने मेरी अभिलाषाकी पूर्त्तिका प्रबन्ध न किया, तो ठीक १२॥ बजे तुम इस संसारमें जीवित न रह सकोगी—

अमर्षसिंह।"

पत्र पढ़कर कुछ समझ न सका, कि पत्र भेजनेवालेने क्यों, तथा किसके पास यह पत्र भेजा है। मायावतीपर मेरी बड़ी श्रद्धा थी। बहुत सोचा-विचारा, परन्तु कुछ भी तत्त्व न निकला। अन्तमें मैंने इच्छामतीकी ओर देखकर पूछा—"यह पत्र किसके पास आया था?"

स्त्री बोली—"क्या पत्रमें इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है?"

मैं—बिल्कुल नहीं।

स्त्री—तो मुझे भी खबर नहीं है।

मैं—अच्छा, तुम्हारा और मायावतीका क्या सम्बन्ध है?

स्त्री—बतानेकी आवश्यकता नहीं है।

मैं—तुम्हारी स्वामिनी, सङ्गिनी अथवा तुम्हारा उनसे जो भी सम्बन्ध हो, मुझसे सहायता माँगती हैं, परन्तु तुम्हारी बातोंसे मालूम होता है, कि तुम्हें कुछ भी बतानेकी आज्ञा नहीं है।

स्त्री—आप जो चाहें समझ लें।

मैं—अच्छा, यही बताओ कि मायावती कौन है?

स्त्री—इसी नगरकी रहनेवाली एक रमणी।

मैं—इतना तो मैं भी जानता हूं।

स्त्री—इससे अधिक जानकर आपका कोई लाभ नहीं।

मैं—तो उसकी सहायता करनेमें भी कुछ लाभ नहीं। जो अपना परिचयतक नहीं दिया चाहती, वह कैसे किसीसे सहायताकी आशा कर सकती है?

स्त्री—परिचय न देनेपर भी वह सदा आपके लिये व्याकुल रहती हैं?

मैं—प्रमाण।

स्त्री—पत्र।

मैं—यह तो अपने स्वार्थके कारणसे भेजा गया है। सम्भव है, कि सहायताकी आवश्यकता न होती तो वे पत्र भी न भेजतीं इतने दिन मैं कारागारमें रहा, परन्तु उन्होंने मेरे छुडानेके लिये क्या चेष्टा की?

स्त्री—उनकी चेष्टामें सयमसिंहने बाधा पहुंचायी। जब ये सयमसिंहसे मिलीं तो उन्होंने उनपर विश्वास न कर उनका तिरस्कार किया।

मैं—यह नयी बात मालूम हुई। संयमसिंहने तो अबतक इस बातका कोई जिक्र न किया। यह कैसे हुआ?

स्त्री—कैसे और कहां हुआ, सो आप पत्र भेजनेवालीसे

पूछ लीजियेगा और अपना अपराध क्या कोई किसीसे कहता है, जो संयमसिंह आपसे कहते ?

मैं उस स्त्रीकी दृढ़ता और वाक्‌चातुरीपर चकित रहकर कुछ देर बाद बोला—"तुम्हारा यह तात्पर्य है, कि यदि संयमसिंह यहाँ न आते तो मायावती मुझे अवश्य छुडा लेती ?"

स्त्री—सम्भव था।

मैं—तब तो वे बड़ी शक्तिशालिनी हैं। कामरूपसिंह जैसे दुर्दान्त डाकूके कवलसे किसीकी रक्षा करनेका साहस करनेवाला तो कोई साधारण पुरुष या स्त्री, नहीं हो सकती।

स्त्री—सम्भव है।

मैं—इस जगतमें असम्भव क्या है ? स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं ?

स्त्री—मुझे अधिकार नहीं है।

मैं—तो जाओ, मैं न जाऊँगा।

स्त्री—अच्छी बात है, यही उत्तर लिख दें। वे भी समझ लेंगी कि जिसके लिये वे सदा चिन्तित और आकुल रहती हैं, वह बड़ा कठोरहृदयी, भीरु तथा स्वार्थी है।

मैं—यह तुमने कैसे कहा ?

स्त्री—विपत्तिमें पड़नेकी बात सुनकर निम्न श्रेणीके भी मनुष्य, कुछ और नहीं तो परोपकारके विचारसे दौड़े जाते हैं, और आप इतने बड़े जासूस होकर भी अपने प्राण-भयसे कोठरीमें छिपनेकी चेष्टा करते हैं। साँप काटनेका मन्त्र सीखनेपर अपना

स्वार्थ न रहनेपर भी झाड़ैयाको जाना ही पडता है, नहीं तो वह प्रायश्चित्ती होता है। क्या आप नहीं जानते कि यह अमर्पसिंह डाकू है, यदि इस समय भी सहायता न करेंगे तो यह जासूसी विद्या क्या कोहवरमें काम देगी ?

मैं—तुम ठीक कहती हो, परन्तु सँपेराको यह भी तो बताना चाहिये, कि किसे साँपने काटा है और वह कहाँ है ?

स्त्री—अब बातोंमें समय नष्ट न कीजिये। शीघ्र चलिये, जो पूछना हो सो उनसे ही पूछियेगा।

पहले ही कह चुका हूं, कि मायावतीकी आज्ञा न जाने क्यों मैं टाल न सकता था। अत अपने सरो सामानसे सुसज्जित हो, पहरेवालोंको सावधानकर उस स्त्रीके साथ वहाँसे चल पड़ा।

इस समय सन्ध्या हो चली थी। अस्ताचलगामी सूर्यदेवकी सुनहरी किरणें मायापुरीके मकानोंके ऊँचे ऊँचे गुम्बदों तथा मीनारोंपर सुनहरी छटा दिखा, दर्शकोंको यह उपदेश दे रही थीं, कि सुखके बाद दु ख अवश्य होता है। यदि इस समय मेरी चमक दमक देखकर पुलकित हो रहे हो, तो रात्रिके भीषण अन्धकारमें ठोकरें खानेके लिये भी तय्यार रहना। मैं उस स्त्रीके साथ बराबर आगे बढता चला। हमलोग नगरके मध्य भागमें भी अभी न पहुँचे थे, कि सन्ध्या हो गई। अन्धकार क्रमश अपना अधिकार बढ़ाता अग्रसर होने लगा। कुछ दूर और आगे बढने पर मैंने पूछा—"अब कितनी दूर और जाना होगा ?"

वह स्त्री बोली—"अब अधिक दूर न जाना होगा। हमलोग यथास्थान आ पहुँचे हैं।"

इतना कह, कुछ दूर और आगे बढ़कर वह स्त्री एक पतली गलीकी ओर मुड गई। मैं भी उसके पीछे पीछे चला। अभी कुछ ही दूर और आगे बढ़ा होऊँगा, कि एक मकानसे बडे जोरसे चिल्लानेकी आवाज आयी। ऐसा मालूम हुआ, मानों कोई प्राण-भयसे चिल्ला रहा है। वह स्त्री भी अवाक् सी उसी मकानकी ओर देखने लगी। इसके बाद ही बडा हल्ला सुन पडा। कई मनुष्योंके रोनेकी आवाज सुन पडने लगी। मैंने उस स्त्रीसे कहा—"अवश्य ही इस घरमें डाकू घुसे हैं।" अभी वह स्त्री इसका कुछ उत्तर देना ही चाहती थी, कि इसी समय भीषण वेगसे उस मकानका दरवाजा खुल गया और एक मनुष्य एक हाथमें नङ्गी तलवार तथा दूसरेमें एक छिन्न मस्तक, जिससे रक्तकी धार बह रही थी, लिये हुए, झपटकर बाहर निकला और बडी तेजीसे एक ओरको भाग चला। यही वह मनुष्य था, जिसे राहमें मैंने अपनी ओर बडी कुटिल दृष्टिसे देखते देखा था। इसे देखते ही वह स्त्री चिल्ला उठी—"यही अमर्पसिंह है।" यह आवाज उस पुरुषके कानमें भी गई और उसने एक बार घूमकर तीक्ष्ण दृष्टिसे हमारी ओर देखा और फिर वहाँसे भाग चला।

अमर्पसिंहका नाम स्वामी विवेकानन्दसे मुझे पहले ही मालूम हो चुका था। मायावतीके पत्रसे ही उसके अत्याचारका कुछ नमूना दिखाई दिया था और इस समय तो मैंने प्रत्यक्ष ही उस-

का निष्ठुर कार्य देखा। इच्छा हुई, कि अभी इसका पीछाकर इसे पकड लूँ। परन्तु मायावतीने बुलाया था, शायद वहाँ अधिक सुयोग प्राप्त हो, इसी विचारसे चुप रह गया। परन्तु एक बार अमर्षसिंहके आक्रमणका कारण जाननेकी इच्छा हुई। अत मैं उस स्त्रीसे बाहर ही खडी रहनेको कह भीतर चला गया। भीतर कितने ही स्त्री पुरुष जोर जोरसे रो रहे थे। मैंने एक पुरुषसे पूछा—"क्या हुआ है, तुम लोग इतना क्यों रो रहे हो ?"

उत्तरमें वह बोला—"क्या बताया जाये, आज इस कुलका सर्वनाश ही हो गया। भाई-भाईमें बहुत दिनोंका विरोध चला आता था, न जाने कैसे एक भाईने अमर्षसिंहकी सहायतासे अपने भ्राताका सिर कटवा डाला। हाय ! अब उसके स्त्रीकी क्या दशा होगी ? कोई उसका रक्षक नहीं है।"

इतनेमें ही कई मनुष्य एक लाशको उठाये नीचे आँगनमें उतर आये। उनके साथ ही एक नवयौवना सुन्दरी भी विलाप करती हुई नीचे उतर आयी। यह दृश्य देखकर मेरा हृदय काँप उठा मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि जिस तरह होगा अमर्षसिंहके इस अत्याचारका अवश्य बदला लूँगा। इसके बाद मैं उन लोगोंको समझा-बुझाकर बाहर निकल आया। वह स्त्री अभीतक उसी प्रकारसे खडी थी। हम दोनों फिर आगे बढ़े। जाते जाते एक ऐसे स्थानमें पहुँचे जहाँ निम्नश्रेणीके मनुष्यों-का अधिवास था। यहाँ आकर वह स्त्री एक और भी पतली

गलीमें घुसी। यह गली बड़ी ही गन्दी और घोर अन्धकारपूर्ण थी। चारों ओरसे दुर्गन्ध आ रही थी। यह दृश्य देखकर मैंने कहा—"तुम मुझे कहाँ लिये जा रही हो?"

उस स्त्रीने घूमकर मेरी ओर देखते हुए कहा—"मायावतीके मकानमें।"

मैंने कहा—"क्या वे ऐसे गन्दे स्थानमें रहती हैं?"

स्त्रीने चकित होकर कहा–"उनकी प्रगति सभी स्थानोंमें है।"

मैंने पूछा—"उस बार तो वे मुझे एक राज-महलसे मकानमें ले गई थीं, आज तुम किस नरकमें लिये जाती हो?"

स्त्रीने कहा—"उनमें यही तो विचित्रता है, एक बार उनके प्रभावसे जो कल्पित स्वर्गके नन्दन-काननमें प्रवेश करता है, वही फिर नरकको देखनेके लिये बाध्य होता है।

मैंने चकित होकर कहा—"तो वे हैं, कौन?

स्त्री झुँझलाकर बोली—"यह उनके पास जाकर ही पूछियेगा।"

मैंने हाथमें पिस्तौल ले, गरजकर कहा—"यदि ठीक ठीक न बताओगी तो इसी समय तुम्हारी खोपड़ी उड़ा दूँगा।"

वह स्त्री हँसती हुई बोली—"तो फिर मायावतीके पास कैसे जायेंगे?"

मैंने कहा—"मुझे तुमपर सन्देह होता है, मैं न जाऊँगा। जिसे मुझसे मिलनेकी जरूरत होगी, वह स्वयं मेरे पास चला आयगा।"

स्त्री बोली—"अच्छी बात है। आप न जाइये।" इतना कहकर वह आगे बढ़ी और उस घनघोर अन्धकारमें न जाने कहाँ गायब हो गयी। उसके गायब होते ही न जाने किधरसे कई मनुष्य 'पकडो पकडो' करते हुए निकल पडे। हाथमें पिस्तौल तो थी ही, गलीसे निकलकर उसके कोनेपर ही मैं खडा हो गया। तुरन्त ही एक दुर्दान्त दानव सा मनुष्य, एक लम्बा छुरा लिये निकल पडा। इसके बाद ज्यों ही उसने मेरी ओर मुँह फेरा त्योंही मैंने पिस्तौलकी नली उसके सिरसे साधकर कहा—"खबरदार! एक कदम भी आगे बढे, कि गोली तुम्हारी खोपडी-से पार हो जायगी।" वह मनुष्य चौंककर खड़ा हो गया, परन्तु इसी बीचमें उस गलीसे कई मनुष्य और भी निकलकर मुझपर आक्रमण करनेके लिये तय्यार हो गये। मैं अकेला और वे चार थे परन्तु ऐसी घटनाओंसे कितनी ही बार पाला पडा था। अत: भयकी कोई विशेष बात न थी, मैंने एकको गोली मारी, वह गिरा। उसके गिरते ही उन मनुष्योंने एक साथ ही मुझपर आक्रमण किया। फिर गोली चलायी। एक दूसरा भी धराशायी हुआ। यह दशा देखकर वे दोनों एक ओर न जाने किधर अन्तर्द्धान हो गये और उनके बदले हँसती हुई मायावती मेरे सामने आ खडी हुई। उसका चेहरा इस समय सुन्दर सरोजकी तरह खिल रहा था। मेरे पास आकर उसने बडे प्रेमसे कहा—"जीवा-नन्द! तुम्हारे छुटकारेपर बधाई है! ओह! मैं कितनी चिन्तित थी!"

मैंने कहा—"परन्तु चिन्तित होकर तुमने किया क्या ?"

माया०—"भला मैं अबला होकर क्या कर सकती थी ? चेष्टामें अवश्य थी, इतनेमें तुम्हारे मित्र संयमसिंह आ गये और तुम्हारा उद्धार हुआ ।"

मैंने कहा—"अच्छा, आज तुमने मुझे क्यों बुलाया है ?"

माया०—क्या तुम्हें बडा कष्ट हुआ ?

मैं—तुम्हारे लिये मैं सब कष्ट सहनेको प्रस्तुत हूँ, परन्तु तुम्हारी माया कुछ समझमें नहीं आती । बताओ, इस मायापुरीसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?

माया०—यह बात समयपर तुम्हें आप ही मालूम हो जायगी। देखो, कामरूपसिंहके कुछ साथियोंको तो तुमलोगोंने गिरफ्तार कर लिया , परन्तु वह भाग गया । वही इस दलका सरदार है । उसके ही आदेशानुसार अमर्षसिंह, अभिलाषसिंह, हसदअली मोहनचन्द, गर्वसिंह, प्रभृति दस्यु उपद्रव मचाया करते हैं । तुमलोगोंके भयसे वह इस समय कहीं छिप गया है, परन्तु उसका साथी अमर्षसिंह यहाँ बडा उपद्रव मचा रहा है । आज रात्रिके बारह बजे, उसने मेरी बहनके घरपर आनेको पत्र लिखा है । बताओ, उसके भयसे क्या मैं अपनी बहन उसे व्याह दूँ ?"

मैं—नहीं, कदापि नहीं ।

माया०—तो चलो, उसकी रक्षा करो । तुम्हारा ही तो भरोसा है ?

मैं—तुम्हारे पति अथवा अन्य आत्मीय उसकी सहायता क्या नहीं कर सकते ?

माया०—(हँसकर) मैंने तो व्याह ही नही किया है। और भी एक बात नहीं जानते हो ? व्याधा ही पक्षीको जालमें फँसाकर पकड सकता है, जिसकी बन्दरी वही नचाता है, तुम सदासे जासूसी करते आये हो, यह काम तुम्हारी सहायतासे ही हो सकता है।

उसके विवाह न करनेकी बात सुनकर मनमें एक कौतूहल सा हुआ। मैंने कहा—"तुमने अबतक विवाह क्यों न किया ?"

माया०—ईश्वरकी इच्छा। परन्तु अब इस झमेलेको छोडिये। मेरे साथ आइये।

इतना कहकर मायावती आगे बढी। मैं पीछे पीछे चला थोडी दूर अग्रसर होते ही कुछ रक्तके चिह्न दिखाई दिये। मायावती बोली—"अमर्पसिंहने आज अवश्य किसीको सताया है।"

मैंने कहा—"अपनी मायापुरीकी लीला तुम्हीं जानो।"

माया०—अभी बारह बजनेमें तो देर है, चलो, एक बार इस रक्तका अनुसन्धान किया जाये।

इसके बाद ही हम दोनों उस रक्तको लक्ष्यमें रखकर बराबर आगे बढते चले गये। थोडी दूर बाद ही बहुतसे मनुष्योंकी भीड एकत्र दिखाई दी। पास जाकर हमलोगोंने देखा, कि एक स्त्री जमीनपर पडी है और अमर्पसिंहका एक शिष्य छुरा ताने उसके कलेजेपर बैठा है। पता लगानेपर मालूम हुआ,

किसी विषयपर इन दोनोंका मतान्तर हुआ और इसीलिये अमर्षसिंहकी इच्छानुसार वह उसकी हत्या करनेके लिये तय्यार है। वह स्त्री जार जार रो रही थी, उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। यह अवस्था देखकर मुझसे चुप न रहा गया। मैंने उसके पास जाकर उसे छोड़ देनेकी प्रार्थना की। उसी समय न जाने कहाँसे अमर्षसिंह वहाँ आ पहुंचा। उसके आते ही उस शिष्यको और भी सहारा मिल गया और उसने छुरा उठाकर उसे मारना ही चाहता था, कि इसी समय मैंने उसे एक घूसा जमाया। मेरा घूसा खाकर वह तिलमिला उठा। साथ ही अमर्षसिंह और वह, दोनों ही मुझपर आक्रमण करनेके लिये तय्यार हो गये। बड़ी कठिन समस्यामें प्राण पर गया। इसी समय न जाने किधरसे दो मनुष्य दौड़ते हुए वहाँ आ पहुंचे। उनमेंसे एकने अमर्षसिंहके कानमें कुछ कहा और उसे सुनते ही वह तथा उसका शिष्य, दोनों ही इस तरह वहाँसे भागे कि फिर उनका पता न लगा। अबतक मायावती कहीं छिपी थी। उनके भागते ही मेरे पास आकर बोलीं—"शीघ्र चलो, वे सहजमें ही यहाँसे जानेवाले न थे। अवश्य ही किसी न किसी गहरी दुरभिसन्धिके कारण यहाँसे गये हैं। अत कहीं न कहीं उनका अत्याचार अवश्य होगा। शीघ्र ही बाधा देनी चाहिये।"

इतना सुनते ही मैं तय्यार हो गया। हम दोनों तेजीसे एक ओरको रवाना हुए। मायावती आगे आगे थी।

कुछ दूर जानेपर हमलोगोंने देखा, कि कई मनुष्य भागते चले

आ रहे हैं। उनके पास आनेपर उनसे पूछनेपर मालूम हुआ, कि डाकुओंके दलने एक प्रतिष्ठित धनीके घरपर आक्रमण किया है। वे थानेमें खबर देने जा रहे हैं। यह समाचार सुनते ही हमलोग वहाँ जा पहुचे। मकानका दरवाजा भीतरसे बन्द था और बेतरह चिल्लानेकी आवाज आ रही थी। मैंने अब समय नष्ट करना उचित न समझकर दरवाजेमें जोरसे लात मारी। दरवाजा चरचराकर टूट गया। मैंने हाथमें पिस्तौल लेकर उस घरमें प्रवेश किया। बडा ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया। एक लम्बा पुरुष जिसके पीछे अमर्षसिंह खडा था, बडे जोरसे चिल्ला रहा था। एक सात आठ वर्षकी कन्या एक ओर बेहोश पडी हुई थी, दूसरी ओर अर्द्धमृत अवस्थामें एक स्त्री थी, जिसका सिर दीवारसे टकराकर फट गया था। एक ओर एक नन्हासा बालक जमीनपर पडा बिलख रहा था और वह गरज गरजकर उपस्थित पुरुषोंको गालियाँ देता और धिक्कारता था। बडा ही वीभत्स दृश्य था। साक्षात् नरकपुरीका दृश्य दिखाई देता था। उसकी यह अवस्था देखकर वहाँके उपस्थित मनुष्य भयसे काँप रहे थे। कोई उनके पास जानेका साहस न करता था। अमर्षसिंह कुछ बोलता न था, परन्तु धीरे धीरे उसकी पीठ इस तरह ठोकता था, मानों, उसको शाबाशी दे रहा हो। यह दशा देखकर मेरे मनमें बडी ग्लानि हुई। मैं उसे समझानेके लिये उसके पास जाना ही चाहता था, कि इसी समय अमर्षसिंहने डपटकर कहा—"खबरदार! अब एक कदम भी आगे न बढ़ना, नहीं

तो तुम्हारी जान न बचेगी। हम समझते हैं, कि सरदारके कै
खानेसे छूटनेके कारण तुम्हें अभिमान हो गया है और अब तु
हमारे प्रत्येक कार्यमें हस्तक्षेप करनेके लिये तय्यार हो।"

मैंने कहा—"तुम लोगोंके दिवस अब पूरे हो गये हैं। य
अपना भला चाहते हो तो अभी आत्मसमर्पण करो।"

परन्तु 'एक तो बैजू बावरे, दूजे चढ़ी भङ्ग।' अमर्पसिंह ना
तथा क्रोधकी सवारी, फिर वह कब रुक सकता था। जि
तरह भेडिया अपने शिकारपर टूट पड़ता है, उसी तरह वह
इतना सुनते ही मुझपर टूट पडा। मैं भी सावधान था।
तेजीसे झपटकर पीछेकी तरफ हटा, परन्तु यह क्या? एकाए
वह स्थान चरमराकर टूट पडा और मैं लुढ़कता लुढ़कता ए
घोर अन्धकारमय गढेमें जा गिरा। बडी गहरी चोट लगी
अभी मैं सम्हलूँ सम्हलूँ, कि अपने साथियोंके साथ अमर्पसिं
आ पहुँचा। उस समय चोटके कारण मेरा शरीर अवश हो र
था। इसके बाद इतना ही मुझे मालूम हुआ, कि कुछ मनुष्यों
मुझे पकड लिया। फिर मैं बेहोश हो गया।



दसवाँ परिच्छेद ।

संयमसिंहकी आत्मकथा ।

कालचक्रकी भी कैसी विचित्र गति है! आशाका कैसा-मनोमोहक रूप है और उसके बाद निराशा भी कैसी भयावनी होती है!! कहाँ तो उन दस्यु-दलवालोंको सदर थानेमें पहुचाकर लौटते समय मनमें अपार आनन्द, चित्तमें असीम प्रफुल्लता और हृदयमें अगाध उत्साह भरा था, कहाँ मायापुरीमें आते ही, दो दिनोंसे जीवानन्दके गायब हो जानेका समाचार सुनकर, सब आनन्द, प्रफुल्लता और उत्साह—दु ख, चिन्ता और उद्वेगमें परिणत हो गये। पहरेवालोंसे पूछनेपर इतना ही मालूम हुआ, कि एक स्त्री एक दिन एक पत्र लेकर आयी थी, उसीके साथ जीवानन्द जो गये सो फिर लौट कर न आये। इसीलिये कहते हैं कि जिसे सुख भोगना हो वह किसी बातकी आशा ही न करे। परन्तु उस मायामयकी मायामें हस्तक्षेप करनेका किसे साहस है? अस्तु, यह समाचार सुनते ही मैं समझ गया, कि हो न हो, वे अवश्य ही किसी दुर्दान्त डाकूके चूडान्त चक्रान्तमें जा फँसे हैं। अब उपाय?

उसी दिवस रात्रिके दस बजेके लगभग, मैंने क्षमासिंहको साथ लेकर, जीवानन्दकी खोजमें प्रस्थान किया। हम दोनों दरिद्र भिखमङ्गोंकी शक्ल बना और मैले कपड़ोंकी झोलीमें

पिस्तौलें तथा आवश्यक-साधन छिपाकर चल पड़े। पहले उस गुप्त महलकी ओर गये, परन्तु वहाँका दरवाजा खुला और स्थान जनहीन सा दिखाई दिया। चारों ओर घोर अन्धकार था। अत वहाँसे लौटकर हमलोग मानिनीवाले मकानके दरवाजेपर आये ही थे, कि उसमेंसे एक मनुष्य झपटकर वाहर निकला। मैंने तुरन्त ही आगे वढ़कर करुण-स्वरमें उससे भिक्षा माँगी। उसने एक वार गौरसे मेरा और मैंने भी छिपी दृष्टिसे उसका चेहरा देखा। मनुष्य अपरिचित सा दिखाई दिया। वह जाना ही चाहता था, कि मैंने कहा—"मैं भूखा हू, एक पैसा दीजिये।" वदलेमें उसने झिडकी और गालियाँ दीं। समूचे वटुएका एक चावल ही देखा जाता है, कि सीझा है या नहीं। उसकी वातसे ही मालूम हो गया, कि यह भले आदमियोंकी सङ्गतिमें नहीं रहता। मैंने सुनते ही फिर कहा—"दो मुट्ठी अन्नके वदले गालियाँ देकर जानेसे कार्य सिद्ध न होगा।" सुनते ही वह विगड़ उठा। मुझे मारनेके लिये तय्यार हो गया। जासूसी जीवनमें मार, गाली और यातना एक साधारण वात है। परन्तु वह मार न सका। क्षमासिहने वीचमें ही वाधा दे दी। वह मुझे छोडकर आगे वढ़ा। अव मैं क्षमासिहको उसका पता लगानेकी आज्ञा दे, उस मकानके दरवाजेपर जा पहुँचा। पहरेदार एक तिपाईपर वैठा हुआ, वडी शानसे पहरा दे रहा था। मैंने उसके पास जाकर उसी ढङ्गसे भिक्षा माँगी। उसने मुझे दुरदुरा दिया। वडे आदमियोंका जमादार था—वड़ोंको कौन दोप दे सकता है? परन्तु

मुझे तो दोष देना था। अत उसके विगडनेपर मैं उलझ पडा। उसने मारनेकी चेष्टा की तो मैंने उसे नीचे दे मारा और जवर्दस्ती उसे वेहोशकर हाथ पैर वाँध, उसीकी कोठरीमें वन्दकर, ताला लगा, ऊपर चढ गया। सामनेवाले कमरेमें ही मानिनी वैठी हुई अपनी एक सगिनीसे हँस हँसकर वातें कर रही थी। वही हाव-भाव कटाक्ष था। मैं कुछ देरतक कान लगाकर उनकी वातें सुनता रहा, परन्तु कुछ समझ न सका। उस मकानका दर-वाजा मैं भीतरसे वन्द कर आया था, अत वाहरके किसी मनुष्य के आनेका भय न था। अव मौका देख, मैं अपने दोनों हाथोंमें दो पिस्तौलें लिये उनके सामने जा खडा हुआ। वे दोनों मुझे देखते ही उसी तरह चौंक पडीं, जिस तरह अपने सिरहाने काले नागको देखकर कोई चौंक उठता है। परन्तु मुझे पहचान न सकीं। उन्होंने चिल्लाना चाहा, परन्तु तुरन्त ही मैंने पिस्तौलकी नली उनकी ओर सीधी कर दी। अत कोई चिल्ला न सकी। अव मैंने जवर्दस्ती उन्हें भी वेहोशकर हाथ पैर वाँध दिये और धीरेसे उठाकर उसी पहरेदारवाली कोठरीमें वन्द कर आया। अव सामनेवाले कमरेके पीछेकी राहसे मैं उसी ओर चला, जिस ओरके कमरेमें वैठकर डाकूदल मुझे फँसानेकी चेष्टा कर रहा था, परन्तु आज वहाँ कोई न था। कितनी ही कोठरियाँ घूमता घूमता, मैं अपने सोनेवाले कमरेमें जा पहुचा। वहाँ दो मनुष्य घोर निद्रामें पडे थे। मैंने चटपट क्लोरोफार्मसे वस्त्र भिगोकर उनकी नाकोंपर रख दिया। वे दोनों एक वार जरा काँपकर

बेहोश हो गये। इसके बाद मैंने उनकी जेबोंकी तलाशी लेनी आरम्भ की। कुछ रुपयेके नोट तथा पिस्तौलें मिलीं। ये सब हस्तगतकर मैंने इधर उधर बहुत देखा, परन्तु कहीं कोई भी न मिला। अत. उन दोनोंके हाथमें हथकडियाँ पहनाकर मैं इसी आशामें बाहरकी ओर आया कि शायद क्षमासिंह कुछ समाचार लेकर आया हो, परन्तु वहाँ भी कोई दिखायी न दिया। क्षमासिंहके किसी विपत्तिमें पड़नेकी आशङ्कासे मैं काँप उठा। फिर लौटकर उसी कमरेमें गया, जिसमें उन दोनोंको हथकडियाँ पहनाकर बन्द कर आया था, परन्तु आश्चर्य्य! इतनी ही देरमें वे दोनों गायब हो गये थे। यह देखकर मैं अवाक् रह गया। तो क्या कोई मेरी गति-विधिको लक्ष्य कर रहा था? अवश्य, नहीं तो वे क्या हो जाते? अब मैं नीचेकी ओर दौडता हुआ गया, परन्तु और भी आश्चर्य्य!! कोठरीका दरवाजा भी खुला था तथा वे दोनों रमणियाँ और जमादार भी गायब थे। मैंने झाँककर बाहरकी ओर देखा। राजपथ शून्य और निस्तब्ध हो रहा था।

इसमें सन्देह नहीं, कि मकानमें कोई न कोई अवश्य है—यही सोचकर मैं इस बार खूब सावधानतासे ऊपर आया और सब कमरे दालान देखता हुआ, धीरे धीरे जब मकानके मध्य-भागमे पहुचा, ठीक उसी समय जोरसे ठहाकेकी ध्वनि सुन पडी। मैंने ध्यानसे उसी ओर देखा, जिधरसे आवाज आई थी। जब कि मैं ऊपरकी ओर देख रहा था, एक बार पिस्तौलकी आवाज हुई

और गोली मुझे स्पर्श न कर पाससे ही दूर निकल गई। मैं अब अपनेको निरापद न समझकर वहाँसे हट, ऊपरकी ओर, उधर ही चला जिधरसे हँसनेकी आवाज आयी थी। अभी कुछ ही दूर आगे बढ़ा था, कि एक ओरसे दो जबर्दस्त डाकू मुझपर झपट पड़े, परन्तु इसी समय एक और भी आश्चर्यकी बात हुई, न जाने किधरसे क्षमासिंह वहाँ आ पहुँचा। उसने आते ही एकको पकड़कर जमीनपर दे मारा और दूसरेको मैंने। उन दोनोंके हाथ पैर बाँधकर हमने एक ओर डाल दिया और क्षमासिंहको उनके पहरेपर नियुक्तकर मैं हँसनेवालेकी खोजमें चला। वह इस समय कहीं छिप गया था। अन्तमें बहुत कुछ ढूढनेपर एक कोठरीमें दो स्त्रियाँ छिपी दिखाई दीं। आश्चर्य! यह मानिनी और उसकी संगिनी थी। मैंने उनको पकड़ लिया। मानिनी अपनेको गिरफ्तार देखकर मेरे पैरोंपर गिर पड़ी। मैं उसकी इतनी कातरता देखकर चकित रह गया। न जाने इस समय उसका मान कहाँ चला गया था। मैंने अब उसको पकड़कर पूछा—"मानिनी! ठीक बताओ, अब यहाँ और कौन कौन है?"

मानिनी बोली—"केवल एक मनुष्य और था जो हम दोनोंको गिरफ्तार होते देखकर भाग गया।"

मैंने कहा—"तुमने मुझे पहचाना?"

मानिनी बोली—"आपका नाम संयमसिंह है।"

मैं मानिनीके मुँहसे अपना नाम सुन, चकित होकर बोला—"तुमने कैसे जाना कि मैं ही संयमसिंह हूँ?"

मानिनी—"आपकी आखोंके नीचेके तिलसे।"

मानिनीने ठीक चिह्न ही बताया था। उसे छिपानेका कोई ध्यान ही न रहा था।

उस तिलके कारण यह डाकूदल मुझे पहचान जाता है। यह बात उसी समय मेरे ध्यानमें आयी। मैंने कहा—"तुम बडी चतुरा हो, परन्तु यह बताओ कि इस डाकूदलमें क्यों आ मिली हो और वह कौन थी जो मारी गयी।"

मानिनी बोली—"आजतक मुझे कभी किसीसे हार न खानी पड़ी थी, परन्तु मालूम होता है, संयमके सामने मान भी नहीं ठहर सकता। अस्तु, सभी बताऊँगी। उस दिन कोई मारा न गया था, यह भी डाकुओंकी चालाकी थी।"

मैं यह सुनकर आश्चर्य्यचकित रह गया। मायापुरीमें कितने प्रपञ्च फैले हैं। किस तरह जाल, फरेब, प्रतारणा, परद्रव्य लुण्ठन और स्त्रीहरण आदि कार्य हो रहे हैं! इन डाकुओंका यह उपद्रव देखकर मनमें बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। परन्तु सहना भी कर्त्तव्य समझकर चुप हो रहा। वह भागा हुआ मनुष्य शायद अपने साथियोंको बुला लाये, तो विपत्तिमें पड़ना पडेगा—यही सोचकर उन दोनों स्त्रियों, दोनों डाकुओं तथा क्षमासिंहको साथ लेकर मैं शीघ्रतासे वहाँसे रवाना हो गया। मकानमें बाहरसे ताला बन्दकर उन सबको थानेमें पहुँचा, वहाँ पहरेका भी पूरा प्रबन्ध कर दिया। पाँच सशस्त्र सिपाही उस मकानमें पहरा देनेके लिये भेज दिये गये। इन कामोंमें रात्रिका अधिक समय व्यतीत हो

गया। अभीतक क्षमासिहकी बातें सुननेका भी अवसर न प्राप्त हुआ था। अब क्षमासिहसे पूछनेका अवसर मिला। मैंने उसकी ओर देखकर पूछा—"तुम कैसे आये?"

क्षमासिह बोला—"मैं आपसे विदा होकर उसका पीछा करता हुआ जिस समय चला, उसी समय मालूम होता है, कि वह मनुष्य जान गया, कि कोई पीछे लगा है। अत. कितनी ही गलियोंमें वृथा ही चक्कर लगाता हुआ, वह मनुष्य इधर-उधर घूमने लगा और जब एक स्थानपर उसने अपने पास किसीको न देखा तो फुर्तीसे एक मकानमें घुस गया। उसके भीतर घुसते ही उस मकानका दरवाजा भीतरसे बन्द हो गया। वह मनुष्य फिर अन्दर जाकर झाँककर देखने लगा परन्तु मैं दूरपर था, इस लिये देख न सका। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उस मकानमें अवश्यही कोई न कोई रहस्य है। यह खबर देनेके लिये ही मैं लौट आया। उस समय इस मकानका फाटक खुला था। तुरन्तही दो मनुष्य बाहर निकलकर कहीं चले गये। वे दरवाजा खुला छोडकर ही चले गये। यह देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैं ऊपर चला आया।"

मैंने कहा—"तो चलो मैं वहाँ चलनेके लिये तय्यार हूँ।"

परन्तु अभी सवेरा होनेमें थोडा विलम्ब था। अत हमलोगोंने आज वहाँ जाना स्थगित कर दिया और सवेरा होते ही मैं नित्य-कृत्यसे निश्चिन्त होकर थानेमें जा पहुचा। थानेके बाहरके एक कमरेमें वे दोनों डाकू तथा दूसरे में मानिनी कैद की गई थी।

मैं पहले मानिनीवाले कमरेमें घुसा। देखा कि मानिनी सि
झुकाये हुई एक कोनेमें बैठी है। उसका चेहरा मुर्झाया हुआ
वह किसी चिन्तामें इस तरह लीन हो रही हैं कि मेरा दरवाज
खोलकर भीतर जाना भी उसे मालूम न हुआ। उसकी यह दश
देखकर मेरे मनमें दु:ख हुआ। मैं मन ही मन सोचने लगा f
क्या गर्व चूर्ण करनेके लिये ही विपत्तिकी सृष्टि की गई है?

जब मैंने भीतर जाकर उसको पुकारा तो उसने चौंककर मे
ओर देखते हुए पूछा—"आपको आये कितनी देर हुई?"

मैंने कहा—"अभी आया।"

मानिनी—क्या आज्ञा है?

मैंने कहा—"मानिनी! तुम्हारी बातोंसे मालूम होता है, f
तुम किसी प्रतिष्ठित कुलकी कन्या हो और कर्म्म दोषसे इन डाकु
ओंको कुसंगतिमें आ पड़ी हो। अत क्या तुम्हारा अब य
कर्त्तव्य नहीं है कि परोपकारकर अपने पापका प्रायश्चि
करो।"

न जाने क्यों मानिनीकी आँखें डबडबा आयीं। उसने न
स्वर और रुद्ध कण्ठसे कहा—"आपका कहना ठीक है। परन्तु
सुना है, कि पापियोंको पाप अपनी ओर ही खींचता है। वैस
ही जिसका जबर्दस्त भाग्य हो, वही पापका एक बार संग ह
जानेपर उसे त्यागकर सुमार्गपर आ सकता है।"

मैं—भाग्यको क्यों दोष देती हो? हमारे कर्म्म ही तो भाग्यके
सृष्टि करनेवाले हैं, परन्तु उस बातको इस समय छोड़ दो

मेरी इच्छा है, कि तुम अब सुमार्गपर चलकर अपने किये हुए अपराधोंके लिये ईश्वरसे क्षमा माँगो।"

मानिनी बड़े ही विजडित स्वरमें बोली—"पराधीन मनुष्यके विचार भी पराधीन हो जाते हैं। इतने दिनोंतक मैं डाकुओंके दलमें थी—उनकी आज्ञा माननी पड़ती थी, कलसे आपकी बन्दिनी हूँ, अब आपकी आज्ञा माननी पड़ेगी।"

मानिनीसे इसके पहले भी मेरी बातें हुई थीं। उसकी बातों तथा हाव भावसे बराबर गर्व और अभिमान टपकता था, परन्तु वही मानिनी इस समय जलकी भाँति हो रही थी, जिसपर जो रङ्ग चढ़ाया जाये, वही चढ़ जाता है।

मैंने कहा—दुराचारियोंके दमनमें सहायता देना भी पापका प्रायश्चित्त ही है। तुम इसी ढङ्गसे यह प्रायश्चित आरम्भ करो। इसके बाद मैं सदा तुम्हारी सहायता करूँगा।

मानिनी—स्वीकार है।

मैं—क्या शुद्ध हृदयसे स्वीकार है?

मानिनी—आजतक परमात्माको स्मरण करनेका कभी काम न पड़ा। आज आपकी बन्दिनी न होती तो, शायद आज भी उसका स्मरण न होता। शायद मुझे उसका स्मरण दिलानेके लिये ही यह विपत्ति आयी है। अस्तु, मैं परमात्माका नाम ले, शपथपूर्वक कहती हूँ, कि आपकी आज्ञाका पालन करूँगी।

मैं—पहले यह बताओ, कि कामरूपसिंह कौन है?

मानिनी—इस डाकूदलका सरदार।

मैं—यह तो मैं भी जानता हूँ, परन्तु इस समय वह कहाँ छिपा है ?

मानिनी—यह अमर्षसिंह तथा डाकूदलके चार अन्य मनुष्योंके सिवा और कोई नहीं जानता।

मैं—अच्छा, वह भाग क्यों गया ?

मानिनी—भागा नहीं है, अवसर देख रहा है।

मैं—अमर्षसिंहका पता कैसे लग सकता है ?

मानिनी—कामरूपसिंहका वही प्रधान सहायक है। उसका कोई निश्चित स्थान नहीं है। जहाँ शराबकी दूकानें तथा अन्य उत्तेजक सामान हों, जहाँ विशेष मनोमालिन्य रहता हो, जिस स्थानपर अभिलाषाकी तृप्ति नहीं होती हो, उन्हीं स्थानोंमें अमर्ष सिंह छिपा रहता है और अवसर पाते ही अपना काम बना लेता है।

मानिनी इतनी सरलतासे बातें करती थी, कि उसपर सन्देह करनेका कोई स्थान न मिलता था और न कुछ पता ही लगता था, कि उसका क्या उद्देश्य है। अत. मैंने कुछ जोरसे कहा—"तब तुम उसका ठीक ठीक पता नहीं जानतीं ?"

मानिनी—डाकू भी क्या कभी अपना ठीक ठीक पता किसी-को बताते हैं ? और खासकर स्त्री जातिको, जिन्हें वे एकदम दुर्बल-हृदय समझते हैं ?

मैं—तुम्हारा कहना सत्य है, परन्तु मैं उसे कहाँ खोजूँ ?

मानिनी—जो स्थान मैं बता चुकी हूं, वहीं।

मैं—उसके रहनेका अथवा दस्यु-दलके मनुष्योंसे मिलनेका कोई निश्चित स्थान है ?

मानिनीने कुछ सोचकर कहा—है, परन्तु आप शायद वहाँ-तक न पहुच सकेंगे। वह बडा ही घृणित और अन्धेरा स्थान है।

मैं—तुम कभी गयी हो ?

"नहीं, परन्तु पता बता सकती हूँ।" इतना कहकर उसने एक मकानका पता बता दिया और मेरे कथनानुसार अमर्ष-सिंहके नाम एक पत्र भी लिख दिया। मैं उठकर दोनों कैदियों-की ओर चला, जिन्हें रात्रिमें पकड लाया था। वे दोनों भी बड़े विचित्र मनुष्य थे। उनसे बहुत कुछ माथा मारने, नाना प्रकारके भय दिखाने, तथा कितने ही प्रलोभन देनेपर भी कुछ पता न लग सका। लाचार मैं उठकर अपने स्थानपर चला आया। भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त होकर, मैं मानिनीके बताये हुए स्थानकी ओर चला। साथमें वेश बदले हुए पाच अन्य सिपाही और क्षमासिंहको भी ले लिया। इस समय दोपहर हो चुका था। हमलोग कुछ दूर दूरपर, अलग अलग, उसी मकानकी ओर अग्रसर हुए। मानिनीकी बतायी हुई गलीके पास जिस समय हमलोग पहुचे, उस समय सचमुच ही ऐसा मालूम हुआ, मानों हमलोग नरकमें जा रहे हैं। यहां आकर क्षमासिंहने कहा, कि यही वह मकान है। गलीके मोडपर ही मैंने सब सिपाहियोंको उनका कर्त्तव्य और किस सकेतपर क्या करना पडेगा, सो बता दिया और मैं खूब सावधानतासे

साथ लिये उस मकानकी ओर चला, जिसका पता मानिनीने बताया था और जो ठीक इसी गलीके अन्तमें था। मकानके दरवाजेपर ही पकौड़ी, चने घुँघनी वगैरहकी एक दूकान थी और एक दुबला पतला मनुष्य वहाँ बैठा हुआ था। उसने मुझे देखते ही अपनी दूकानमें लटकता हुआ, एक घण्टा बजा दिया। घण्टेकी टन-टन ध्वनि उस गलीमें गूँज उठी। इसके बाद उसने मेरी ओर देखकर कहा—"क्या चाहिये?" मैंने अपना परिचय देनेके लिये कहा—"माया"। मेरी चाल काम कर गयी। उसने मुझे अपने दलका मनुष्य समझकर कहा—"उधरसे भीतर चलकर बैठिये। मैं वहीं जलपान पहुँचा देता हूं।"

"अच्छा।" इतना कह, मैं दरवाजेकी ओर बढ़ा। पास जाते ही मैंने देखा, कि एक मनुष्य दरवाजेका आधा भाग खोलकर मेरी ओर देख रहा है। उस मनुष्यपर दृष्टि पड़ते ही मैंने उसे पहचान लिया। यह वही था जो मानिनीके मकानसे भाग निकला था। शायद यह हमलोगोंको पहचान न सका। उसने आगे बढ़कर पूछा—"तुम्हारा नाम?"

उसका स्वर बड़ा कर्कश था। मैंने कहा—"माया"।

"भीतर आइये"। इतना कहकर वह आगे बढ़ा और मैं उसके पीछे पीछे जाता-जाता ठीक बीचो-बीच आँगनमें जा पहुंचा। इस आँगनकी पूर्व ओर खूब सजा हुआ एक कमरा था जिसमें इस समय कई मनुष्य बैठे हुए थे। सबके आगे

नङ्गी तलवार रखी थी और सबके चेहरेसे भीषणता टपक रही थी।

मुझे वहाँ देखते ही एक मनुष्यने आगे बढ़कर कहा—"तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो?"

मैं—मुझे मानिनीने भेजा है। अमर्षसिंहसे मिलना चाहता हूं।

प्र०—इस मकानका पता तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

मैं—मानिनी द्वारा।

प्र०—मानिनी इस समय कहाँ है?

मैं—हाजतमें।

प्र०—तुमसे किस तरह भेंट हुई?

मैं—वहीं?

प्र०—क्यों?

मैं—स्त्रियोंका कष्ट न देख सकनेके कारण मैं उसकी सहायताके लिये वहाँ गया था।

प्र०—तुम कौन हो?

मैं—एक सौन्दर्योपासक।

मेरा यह उत्तर सुनकर सभी ठठाकर हँस पड़े। उसके बाद उसने पूछा—"कोई पत्र लाये हो?"

मैं—अवश्य।

प्र०—लाओ।

मैं—अमर्षसिंहके सिवा दूसरेको नहीं दे सकता।

प्र०—वे यहा नहीं हैं।

मैं—मैं उनकी राह देखता बैठा रहूगा, आप उन्हें बुलाइये।

वह—वे अभी यहाँ नहीं आ सकते।

मैं—तो मैं जाता हूँ, फिर आऊंगा।"

वह—तुम हमारी आज्ञा विना यहाँसे नहीं जा सकते।

"अच्छा न जाऊंगा।" इतना कहकर मैं उसी जगह बैठ गया। इसके वाद वे सब आपसमें कुछ सलाह करते रहे। थोडी देर वाद ही मैंने देखा, कि वाहरसे फिर घण्टेकी आवाज आयी। उसी मनुष्यने जाकर दरवाजा खोल दिया। इस वार मैंने विचित्र ही दृश्य देखा। खूनसे लथपथ एक मनुष्य, एक कटा हुआ सिर हाथमें लिये भीतर आ घुसा, उसकी रक्तवर्ण चढी हुई भीषण आंखें, क्रोध-कम्पित अधरोष्ठ, कम्पित कलेवर, विकृत आकृति तथा विलक्षण भाव देखकर मेरे तो रोंगटे खडे हो गये। मैं मनही मन समझ गया, कि वही अमर्पसिंह है। उस नरमुण्डको जोरसे भूमिपर पटककर उसने गरजते हुए कहा—"मुझे ही उपदेश! मेरे साथ ही चालें!! उपदेश देने चले थे, बडे गुरु वने हैं! आज सब उपदेश और सब पण्डिताई हवा हो गयी।"

उसकी बात सुनकर हृदय काँप उठा। गुरुघातीके शब्द सुनते भी पाप लगता है। ओह! अमर्पसिंहका यह काम देखकर रोंगटे खडे हो गये! क्रोधका यह भीषण परिणाम और बुद्धि-नाशकी शक्ति देखकर मेरा शरीर अवसन्न हो गया। मैं सोचने लगा, कि क्या इस पापका भी कोई प्रायश्चित्त है?

जिस समय मैं यह सोच रहा था, उसी समय अमर्षसिंहकी विष-दृष्टि, गिद्ध-दृष्टिके समान मुझपर आ पड़ी। उसने मुझे देखते ही विगड़कर पूछा—"यह कौन है ?"

मैंने आगे बढ़कर कहा—"मुझे मानिनीने भेजा है ?"

उस नर मुण्डको ठोकर देता हुआ झुंझलाकर वह बोला—"मानिनीने ? वह तुम्हें कहाँ मिली ?"

मैंने पत्र निकालकर उसके हाथमें देते हुए कहा—"सब इसीसे मालूम हो जायगा।"

अमर्षसिंहने झपटकर वह पत्र मेरे हाथसे छीन लिया। फिर अजब तरहकी तीक्ष्ण दृष्टिसे, मानों मेरे अन्त करणके सभी गुप्त रहस्यको अपनी दृष्टिसे जान लेना चाहता हो, मेरी ओर देखता हुआ, बोला—"मानिनीको छुड़ाना होगा और तुम सहायता दोगे ?"

मैंने कहा—"क्या आप मुझपर विश्वास करेंगे ?"

अमर्षसिंहने तुरन्त ही कहा—"मानिनीका पत्र लाये हो, फिर क्यों न करूँगा।"

क्रोध विवेकका नाश कर देता है। क्रोधसे ही स्मृति विभ्रम होता है। यदि अमर्षसिंह भी 'यथा नाम तथा गुण' न होता, तो सम्भव था, कि वह मुझे पहचान जाता अथवा अपने संदेहको दूर करनेका अन्य प्रयत्न करता, परन्तु क्रोध और सदा निष्ठुर आचरणोंमें लिप्त रहनेके कारण उसकी जैसी विकृत सूरत हो गयी थी, वैसी ही प्रकृति और विचार भी। अत आगा पीछा

कुछ सोचनेकी शक्ति न रहनेके कारण वह तुरन्त मेरे साथ जानेके लिये तय्यार हो गया। उसने एक साथीको अपने साथ ले लिया और बडी शीघ्रतासे हम तीनों वहाँसे चल पडे। गलीसे बाहर निकलकर, थोडी दूर आगे बढते ही, क्षमासिंहने झपट कर उसे धर दबाया और उसके हाथमें हथकडी पहना दी। मैंने उस साथीको भद्रता दिखानेका उपहार स्वरूप लौह-कंकण पहना दिया।

उसके बाद उन दोनोंको कठोर पहरेमें थानेमें पहुँचाकर, संध्याके होनेके पहले ही, हमलोग कितने ही सशस्त्र सिपाहियोंको साथ ले, उस मकानपर जा पहुँचे।

कामकी सफलता मनुष्यके उत्साहको द्विगुणित कर देती है। अत अमर्षसिंहको बन्दी करनेके कारण मेरा हृदय दूने उत्साहसे भर गया था। क्षमासिंह भी बडा पुलकित दिखायी देता था। यदि इस प्रसन्नतामें कुछ हीनता डालती थी, तो जीवानन्दकी अनुपस्थिति। उन्हें छुडाना भी परमावश्यक था। उस मकानके पास पहुचते ही उस हलवाईने फिर घण्टा बजाना चाहा, परन्तु इस बार उसे घण्टा बजानेका अवसर न दे, मैं झपटकर उसपर टूट पडा और एक हाथसे उसका मुँह दबाकर उसे जबर्दस्ती जमीनपर दे मारा। इसी समय सकेतानुसार क्षमासिंह वहा आ पहुचा। अब क्षमासिंहको दरवाजेकी एक ओर छिपाकर, बीस सिपाहियोंको और भी एकत्रकर, एक ओर छिपा देने बाद, मैंने घण्टा बजा दिया। तुरन्त ही एक मनुष्य

आ पहुंचा। क्षमासिंह दरवाजेके पास ही छिपा हुआ था। उसने उसके किवाड खोलते ही उसे बाहर खींच लिया और क्लोरोफार्मसे बेहोशकर एक ओर लिटा दिया। इसके बाद क्रमश बहुतसे सिपाही भीतर घुसने लगे। उन्हें बाहरकी ड्योढीमें ही रखकर मैं भीतर आँगनमें जा पहुंचा। इस समय भी कई डाकू वहाँ बैठकर आपसमें वार्त्तालाप कर रहे थे। मुझे देखते ही उनमेंसे एकने पूछा—"अमपसिंह कहाँ हैं ?"

मैंने कहा—"उन्होंने आपलोगोंको बुलाया है !"

यह मेरा इशारा था। इतनी बात मेरे मुँहसे निकलते ही २० सशस्त्र सिपाही हाथमें बन्दूक लिये वहाँ जा पहुचे।

पापियोंके हृदयमें साहस ही कितना ? यह अवस्था देखकर सबके सब अवाक् हो गये। उनके मुहसे शब्द न निकला। मेरे साथी सिपाहियोंने उन्हें तीन ओरसे घेर लिया। इसके बाद उन सबको हथकडी पहना दी गयी। इस कार्य्यसे निश्चिन्त होकर हम लोगोंने जीवानन्दको खोजना भी आवश्यक समझा और उसी समय उन डाकुओंको क्षमासिंहके सुपुर्दकर, मैं ऊपरसे नीचेतक, उस मकानमें खोज आया, परन्तु कहीं कुछ भी पता न लगा और न यहाँ कोई अन्य मनुष्य ही दिखाई दिया। अन्तमें हमने उन समस्त डाकुओंको सामने बुलाकर, एक एकको जाँचना आरम्भ किया और उनमेंसे एक मनुष्यको छाँटकर अलग कर लिया। इसके बाद उसके अन्य साथियोंको क्षमासिंहके साथ विदा कर, मैंने एक सिपाहीसे कहा—"इस मनुष्यको यहीं कैद कर रखो

अपने सब साथियोंको जाते और अपनेको वहाँ अकेला देखते ही वह मनुष्य घबडाकर बोला—"हैं! हैं! आपने मुझे क्यों रोक रखा? मैंने आपका क्या बिगाडा है?"

मैंने कहा—"मैंने तुम्हें दण्डसे बचानेके लिये रोक रखा है। तुम अपराधी न होकर भी अपराधियोंके साथी अवश्य हो। परन्तु इस शर्तपर मैं तुम्हें छुटकारा दिला सकता हूँ, कि तुम जीवानन्दका ठीक ठीक पता बता दो।"

वह—जीवानन्दका पता! आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं जीवानन्दको जानता हूँ।

मैं—तुम अमर्पसिहके साथी हो। तुम लोगोंने ही उन्हें कहीं छिपा रक्खा है।

तीर निशानेपर जा लगा। अमर्षसिहने जिस समय जीवानन्दको फँसाया था, उस समय यह भी वहाँ उपस्थित था और इसने भी सहायता दी थी। अत. वह मेरे मुँहसे अपनी उपस्थितिका समाचार सुनकर घबडा उठा। बोला—"क्या आप सत्य कहते हैं, कि मैं दण्डसे बच जाऊँगा।"

मैंने कहा—"अपने दुष्कर्मोंपर परिताप भी पापका प्रायश्चित्त है। अत॰ यदि तुम वास्तवमें अपने कर्म्मपर परिताप करो और अपराधियोंको सचमुच पकड़वा दो तो इसमें सन्देह नहीं, कि तुम दण्डसे बच जाओगे। क्योंकि प्रायश्चित्त करना ही दण्डसे बचनेका एकमात्र उपाय है।

वह बोला—"मैं सहर्ष तय्यार हूं। परन्तु आपको भी

प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, कि फिर मुझपर कोई विपत्ति न आयगी।"

उसी समय क्षमासिंहने आगे बढ़कर कहा—"मेरा नाम क्षमासिंह है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि तुम क्षमा कर दिये जाओगे?"

मैंने भी कहा—"हाँ, तुमको क्षमा कर देनेकी मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं।"

इसके बाद वह हम दोनोंको साथ लेकर ठीक उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ उस दिन डाकू दल बैठकर आपसमें बातें कर रहा था। वहाँ जाकर उसने बिछावन उठा दिया! बिछावन उठाते ही वहां काठका एक पल्ला दिखाई दिया, जिसे बाहर निकालने बाद एक तहखानेका दरवाजा मिला। इसी राहसे हमलोग नीचे उतर गये। नीचे जाते ही एक कोठरीमें जीवानन्द बड़ी बुरी दशामें दिखाई दिये। उनका शरीर मैला और पीला पड़ रहा था। आखोंको देखकर मालूम होता था, मानो उन्होंने कुछ नशा खाया है। समूचा शरीर रूखा और विकृत हो रहा था। मैंने देखा, कि अमर्पसिंहके कैदखानेमें इतने ही दिनमें उनकी भी वैसी ही दशा हो गयी है जैसी कि अमर्पसिंहकी। अस्तु, क्षमासिंहने दौड़कर उन्हें उस जगहसे उठाया और पकड़कर बाहर ले आया। बाहर खुली हवा लगनेके कारण उनका चित्त कुछ स्थिर हुआ। अब उन्होंने हमलोगोंको पहचाना। शायद इतने ही दिनों तक अमर्पसिंहके कारागारमें रहनेके कारण उनकी स्मृति नष्ट गयी थी और ज्ञान भी लुप्त हो गया था।

हमलोगोको पहचाननेके साथ ही आज न जाने क्यों जीवानन्दकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। जीवानन्द नन्हें बालकोंकी तरह रोने लगे। जिस तरह भीषण वर्षाके बाद प्रकृति शान्त-कलेवरा हो, नेत्र-सुख प्रद, सुखद, सुषमा बरसाने लगती है, उसी तरह इस समय मुझे और क्षमासिंहको पकड़कर जीवानन्द भी प्रेमाश्रु बरसाने लगे।

जीव! तू भी क्या ही विचित्र पदार्थ है! तेरा क्या ही अद्भुत हृदय है! अभी कुछ ही क्षण पहले अमर्षसिंहके कठिन कुचक्रमें पड़कर जो अपना अस्तित्वतक भूल गया था, वही आज सयम और क्षमाका थोडा सा सहारा पाकर तुरन्त ही प्रसन्न हो आनन्दाश्रु वर्षन करने लगा। क्या यह भी उसी महामायाकी मान-मर्दिनी माया नहीं है?

इसके बाद निश्चल दृष्टि, सकुचित वदन, तथा कम्पित कलेवरसे जीवानन्द हमारे सामने खड़े हो गये। अमर्षका कारागार छूट जानेपर भी अबतक बेंतकी तरह उनका शरीर काँप रहा था। हा! संगतिका भी कैसा फल होता है!!

उनकी यह अवस्था देखकर क्षमासिंहने कहा—"जीवानन्द जी! आपकी यह कैसी अवस्था है?"

जीवानन्दने कम्पित कण्ठसे कहा—"जैसी अपराधियोंकी होती है?"

क्षमा—परन्तु आपने तो कोई अपराध नहीं किया। अमर्षसिंहकी दुष्टताके कारण ही आपको यह कष्ट उठाना पड़ा है।

जीवानन्दने इस बार कुछ दृढ स्वरमें कहा—"परमात्माके दिये हुए विवेकका दुरुपयोग अथवा अनुपयोग भी एक प्रकारका अपराध ही है।"

मुझे जीवानन्दकी इस समयकी अवस्थापर बडा दुःख हुआ। मैंने कहा—"इस जगतमें सङ्कट शिक्षा देनेके लिये ही आता है। जो उसे शिक्षक समझता है, वह विपत्ति-सागरको पार कर जाता है। अत विपत्तिसे घबडानेकी कोई जरूरत नहीं, चलो अब यहाँ विलम्ब करना ठीक नहीं।"

अत पर हमलोग तेजीसे थानेमें जा पहुचे। वहाँ हमारे आनेके पहले ही उन डाकुओंको हथकडी पहना दी गयी थी और सब एक कोठरीमें बन्द कर दिये गये थे।

इस बार हम दोनो जीवानन्दको लिये हुए अमर्षसिहके पास जा पहुचे।

अमर्षसिहने हमलोगोंको देखते ही जोरसे कडकडाकर दाँत पीसा और घृणासे चट मुँह फेर लिया! उसकी अवस्था इस समय ठीक खिसियाई बिल्ली सी हो रही थी, क्योंकि वह हमलोगोंका अब कुछ बिगाड न सकता था। यह देखकर, कि पहरेका पूरा प्रबन्ध है और इसके भागनेकी अब कोई सम्भावना नहीं है, मैं जीवानन्दको साथ लेकर, सीधा मानिनीके पास चला। अमर्षसिहकी गिरफ्तारीका समाचार मानिनीको पहले ही मालूम हो चुका था। अत उसने हमें देखते ही कहा—"आशा है कि अब आपको मुझपर पूरा विश्वास हो गया होगा।"

मैंने कृतज्ञता दिखाते हुए कहा—"हाँ तुमने सत्य ही कहा था। अमर्षसिंह वहीं पकड़ा गया।"

मानिनी—क्या मैं अब अपने छुटकारेकी आशा कर सकती हूं?

मैं—सब डाकूदलके गिरफ्तार हो जाने बाद।

मानिनी मेरा उत्तर सुनकर चुप हो रही। फिर उसने कोई उत्तर न दिया। मेरी एक बार इच्छा हुई कि, उसे छोड़ दिया जाये परन्तु दुर्जनोंपर हठात् विश्वास कर लेना उचित न समझकर, डाकूदलके गिरफ्तार होनेतक उसे इसी अवस्थामें रखना ही उचित मालूम हुआ।

इसके बाद उन सबको सदर थानेमें भेजनेका प्रबन्धकर, हम-लोग यथास्थान लौट आये। इस बार उन्हें पहुचानेका भार क्षमा-सिंहको दिया गया और दूसरे दिन सवेरे ही क्षमासिंह अमर्ष-सिंह, उसके साथी, मानिनी और उसकी सङ्गिनीको लेकर उस ओर रवाना हो गया।



ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

जीवानन्दकी आत्मकथा ।

अमर्षसिंह उस दलमें बड़ा बलवान, शक्तिशाली और उद्दण्ड व्यक्ति था। अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या, उसके दलवाले भी उसके भयसे भयभीत, कार्योंसे चकित और उसकी तेजी तथा चालाकी देखकर विस्मित रहते थे। साथ ही कहीं वह अपनी ओर भी न पलट पड़े इस भयसे सदा शंकित रहते थे। अत इस भीषण उपद्रवीको गिरफ्तारकर हमलोगोंकी प्रसन्नताका वारापार न रहा।

आज मेरा चित्त अस्वस्थ था। जबसे कामरूप और अमर्षसिंहके कारागारका कष्ट भोगना पड़ा तबसे स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया। अत आज भी कुछ अस्वस्थ सा मालूम होता था। सन्ध्या हो गयी थी, सयमसिंह किसी आवश्यक कार्यसे बाहर गये हुए थे और मैं अपनी चारपाईपर पड़ा पड़ा कभी मायावती, कभी कामरूप तथा कभी अमर्षसिंहके विषयमें विचारकर रहा था। नीचे कई सिपाही थे, परन्तु ऊपरवाले कमरेमें मैं अकेला ही खाटपर पड़ा था।

एकाएक मेरा ध्यान घड़ीपर जा पहुंचा। साढ़े नौसे अधिक समय हो चुका था। साथही यह भी खयाल हो आया, कि अभीतक सयमसिंह क्यों न आये? यह बात ध्यानमें

कलेजा काँप उठा, मन शंकित हो गया और हृदयमें एक प्रकारकी धड़कन उत्पन्न हो गयी। मन ऐसा ही पापी होता है! ईश्वरपर पूर्ण विश्वास न रहनेके कारण यही दशा रहती है। मनही मन विचारने लगा—शायद कहीं घूमने चले गये होंगे, दूर निकल गये होंगे, इसी कारणसे आनेमें विलम्ब हुआ। फिर खयाल आया—परन्तु इस मायापुरीमें वे इतनी देरतक आजतक तो कभी घूमने न गये। किसी विपत्तिमें तो नहीं फँस गये—नहीं, वे बड़े सावधान, संयमी तथा कर्मनिष्ठ हैं। वे सहजमें किसी विपत्तिमें नहीं पड सकते। इसी तरह सोचते विचारते रातके साढे ग्यारह बज गये—मन और भी चञ्चल हो उठा।

स्वार्थ बडी प्रबल वस्तु है। संयमसिंहने जिस तरह यहाँ आकर मेरी रक्षा की थी, पद-पद पर मेरी सहायता की थी, उससे उनके लिये मनमें चिन्ता होना तो स्वाभाविक ही था, साथ ही अपनी भी फिक्र आ पड़ी। अब कैसे क्या होगा? किस तरह बाकी दस्यु पकड़े जायँगे? अब पडा न रहा गया। मनमें यह धारणा बैठ गयी, कि वे अवश्य ही किसी न किसी विपत्तिमें जा फँसे हैं। मनमें यह धारणा बैठते ही आत्माने एक बार धिक्कारा—छि! अपने परोपकारी और रक्षकको विपत्तिमें पडनेकी दृढ़ धारणा होनेपर भी तुम आलसी जैसे पडे हो! आत्माकी इस पुकारने चैतन्य कर दिया, दृढ इच्छा शक्तिने आलस्यको दूर भगा दिया और अध्यवसायने शरीरकी नस-नसमें एक अभूतपूर्व कार्यकरी शक्ति भर दी। मैं उसी समय उठ खड़ा हुआ

और अपने आवश्यक सामान लेकर तेजीसे एक ओरको रवाना हो गया।

परन्तु कहाँ जाता? इतनी बडी मायापुरीमें, इतने डाकुओंके विकट मायाजालमें उन्हें कहाँ पाता? कहाँ खोजने जाता? जिस तरह वेगवती सरिताके उबलते हुए भँवरमें पडकर, मनुष्य हक्का बक्का हो जाता है, उसी तरह चिन्ताके प्रबल स्रोतमें पडकर मैं हत बुद्धिसा हो रहा था। कुछ निश्चित न कर सकता था। केवल आगे पैर बढाता चला जाता था।

यों ही कुछ दूरतक और भी अग्रसर होकर मैं नगरके मध्य-भागमें पहुँचना ही चाहता था, कि एकाएक एक बडा प्रकाश दिखाई दिया। ऐसा मालूम होता था, मानों सहस्र सहस्र चन्द्रकी किरणें, किसी एक ही स्थानमें एकत्र हो, अपनी चमकीली चमक दिखा रही हैं। ऐसा प्रकाश मैंने कभी नहीं देखा था। मन ही मन विचारने लगा—इस मायापुरीकी सभी बातें विचित्र हैं!

मैं ज्यों ज्यों अग्रसर होता गया, त्यों त्यों उस प्रकाशकी रेखायें स्पष्टसे स्पष्टतर होती गयीं। थोडी दूरतक और भी अग्रसर होने-पर मैं नगरके मध्य भागमें पहुँचना ही चाहता था, कि सामने ही एक अत्यन्त सुन्दर और सुसज्जित अट्टालिका दिखायी दी, जो विद्युतके अनगिनत मनोहर आलोकोंसे आलोकित होकर, अग-णित चन्द्रकी छटा दिखा रही थी। दरवाजेपर कितने ही शान-दार, जमादार बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे सुसज्जित खडे थे। सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण पहने अनेकानेक नर नारी

आ जा रहे थे। किसीके आवागमनमें रुकावट नहीं थी। मकानके ऊपरी भागसे रमणी-कण्ठ-निसृत मर्म-स्पर्शी कोकिल-ध्वनि उस आलोक-राशिके सौन्दर्यको मानों भेदन करती हुई, बाहर खड़े हुए अनेकानेक नर नारियोंके हृदयमें अमृत वर्षा कर रही थी। बडा ही सुन्दर गला था, बडा ही मधुर स्वर था, बडी ही हृदयस्पर्शी ध्वनि थी। मनमें अभिलाषा हुई, कि एक बार देखना चाहिये, कहीं सयमसिंह भी तो इसी मर्म्मस्पर्शी गान-मालाको न सुन रहे हों। यह सोचकर मैं दरवाजेपर जा खडा हुआ। पहरेदारोंने एक बार मेरी ओर देखा। देखते ही बडे ही विनम्र स्वरमें कहा—"जाइये, ऊपर जाइये, यहाँ किसीके लिये रुकावट नहीं है। जाइये, आनन्दसे गाना सुनिये।"

मैं धडधडाता हुआ ऊपर चढ गया। ऊपर जाते ही नयन-चकोर तृप्त हो गये। कैसी सुन्दर सजावट थी! कैसे भडकीले, चमकीले और बहुमूल्य सामानोंसे कमरा सजा हुआ था। चारों ओर मानों सौन्दर्य राशि छिटक रही थी और बीचमें एक सलोनी सुन्दरी गायिका, अपनी मनोहर ध्वनिसे, श्रोताओंको मुग्ध कर रही थी। वह अपनी चञ्चल चितवन, सुशिक्षित हाव-भाव तथा अनवरत भृकुटीके उतार-चढावसे दर्शकोंका हृदय अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। एक बार जिस ओर वह अपनी दृष्टि फेर देती मानों उधर ही वह अमृत बरसा देती थी। सभी उसके एक कटाक्षके लिये तरस रहे थे, एक मन्द मुसकानके लिये लालायित हो रहे थे और

अपनी अपनी ओर उसका ध्यान आकर्षित करनेके लिये चंचल, आकुल और व्यग्र हो रहे थे। वह भी क्रमश सबको तृप्त करती, सबको अपनी रसीली निगाहोंका शिकार बनाती और सबकी ओर मधुर मुस्कान और तिरछी चितवनोंका प्रयोग करती थी। सभी मन्त्रमुग्धसे हो रहे थे। इतने मनुष्योंके उपस्थित रहनेपर भी वहाँ मैदानसा सन्नाटा छा रहा था। केवल उसकी संगीत-लहरी ही उस निस्तब्धताको भग करती थी। चारों ओर सौन्दर्य, सजावट और वैभवका अखाडा दिखाई देता था। जितने मनुष्य उपस्थित थे, सभी बहुमूल्य अलङ्कारोंसे सुसज्जित थे। हीरे पन्ने प्रभृति जवाहरात नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर रहे थे—यह दृश्य देखकर मैं अपनी सुध बुध भूल गया। बिसर गया, कि मैं कौन हूँ और यहाँ किस लिये आया हूं। सयमसिह इस समय विस्मृतिकी ओटमें जा छिपे और इन सबके बदले धन-वैभवकी छटा, शान-शौकतकी बहार और पार्थिव पदार्थों द्वारा आत्माकी तृप्तिका दृश्य, हृदय-पटलपर अङ्कित हो गया। मन ही मन सोचने लगा—इस संसारमें मेरा जन्म वृथा ही हुआ। वृथा ही मैंने अपने दिवस रिताये, वृथाही इस वसुन्धरापर भेजा गया। एक मैं हूँ, जिसे दिन-रात परिश्रम करते हुए नायेका पसीना तलवे-तक लाना पडता है। साथ ही जीवनकी शङ्का बनी रहती है, सदा सिरपर चिन्ताके बादल छाये रहते हैं, सदा ही प्राणोंको हथेलीपर लिये घूमना पडता है और सदाही पराधीनताके पाशविक बन्धनमें बँधे रहना पड़ता है। यह भी कोई जीवन है! और

एक ये हैं, जो इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। मनमानी मौज उड़ा सकते हैं। कामनाके साथ ही पूर्त्ति भी इनके साथ लगी है। संसारके यावत् कर्म्म ये इच्छानुसार कर सकते हैं। पुण्य और धर्म दोनों ही अर्जन करना इनके बाँयें हाथका खेल है क्योंकि इनके पास धन है, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त होता है। परन्तु मुझ सरीखा दरिद्री, जो अपनी उदर-ज्वालासे ही तड़पता, पराधीन बना, चोर-डाकुओंकी गिरफ्तारीके फेरमें घूमा करता है, वह क्या धर्म्म कमायेगा और क्या सुख प्राप्त करेगा? और जब धर्म ही न कमायेगा तो मोक्ष ही कैसे प्राप्त कर सकेगा। अतः मेरे लिये—मुझ सरीखे अभागे दरिद्रोंके लिये—तो चारों ही ओर अन्धकार है, चारों ओर गड्ढे हैं और चारों ही ओर निराशाका अखण्ड साम्राज्य हैं। अस्तु वहाँकी अवस्था देखकर मनमें असन्तोषकी भीषण आग धधक उठी, अपने जीवनपर घृणा उत्पन्न हो गयी, निराशाका ऐसा काला परदा विचार-पटलपर पड गया, जिसने मेरे समस्त विचारों-पर पानी फेर दिया। धनोपार्जनकर सुखी बननेकी आकांक्षा विचार-सागरपर वेगवती तरङ्गोंके समान लहराने लगी। उसपर कामनाकी नौका डगमगाती हुई तरङ्गोंके साथ आघात-प्रतिघात द्वारा इधर-उधर फेंकी जाने लगी। ऐसा मालूम होने लगा, मानों मैं किसी दूसरे ही जगतमें फेंक दिया गया हू, जहाँ मेरे सामने सम्पत्तिका ढेर लगा है, सुखका पर्वत खड़ा है, और कामनाओंकी पूर्त्तिका दरवाजा खुला हुआ है।

मैं कितने समयतक इस विचारमें लीन रहा, कितने समयतक निर्निमेष दृष्टिसे उनकी ओर देखता रहा और कितने समयतक मैं किसी अन्तरीक्ष जगतकी सुख समृद्धि-सरितामें गोते लगाता रहा और कबतक इस तरह आकाश कुसुम तोड़ता रहा—कुछ खबर नहीं। कितने ही लोग आये, चले गये। कितने ही मेरी ओर देखकर मुस्कराते हुए अन्तर्हित हो गये—पर मैं उसी स्थान-पर बैठा रह गया। आँखें खुली थीं। सब कुछ देख रहा था, पर मानों ज्ञान किसी अन्धेरी कोठरीमें जा छिपा था।

एकाएक एक मनुष्यने आकर मेरी बाँह पकड़कर उठाया। वह बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे सुसज्जित था। बोला-"चलिये।"

मैंने अकचकाकर कहा—"कहाँ ?"

वह बोला—"भोजन करने ?"

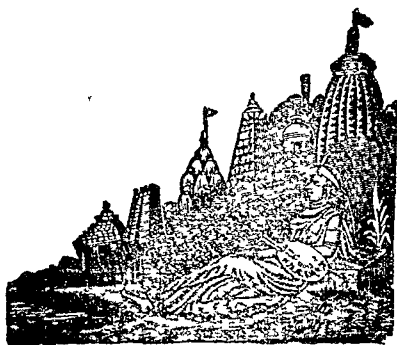
मेरी उस समय विचित्र ही अवस्था हो रही थी। बोला—"नहीं, भोजन करनेकी इच्छा नहीं है।"

वह बोला—"वाह! आप कैसी बात कहते हैं !! यह हो ही नहीं सकता। ऐसा ही करना था तो आपको यहाँ आना न था। आगन्तुक पुरुषको ऐसे शुभ अवसरपर हम लोग बिना भोजन कराये कभी नहीं जाने दे सकते।"

इतना कहकर उसने एक दूसरे पुरुषकी ओर इशारा किया। वह उठा और मेरे पास आकर बोला—"वाह साहब! आप भी कैसी बात कहते हैं।"

इतना कहकर उसने मेरी बाँह पकड़कर

इन्कार करनेका साहस न हुआ। वे दोनों मेरी अगल बगल हो लिये और एक ओरको ले चले। उस कमरेसे निकलकर हमलोग बरामदेमें जा पहुँचे। उसके बाद एक पतला गलियारा पडता था। उसी गलियारेमें होकर हम तीनों आगे बढ़े। अभी कुछ ही दूर आगे बढ़े थे, कि वहाँकी रोशनी बुझ गयी—घोर अन्धकार छा गया और इसके बाद ही उन दोनोंने दोनों ओरसे मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये। इसके बाद क्या हुआ कुछ खबर नहीं। मैं उसी अन्धकारमय गलियारेमें बेहोशीके अन्धकारमय गढ्ढेमें जा गिरा।



बारहवाँ परिच्छेद ।



संयमसिंहकी आत्मकथा ।

कैसे कहा जाये, कि इस मायापुरीकी क्यों रचना की गयी है ? जिस तरह पावनेदारके तकाजे कारण निर्धन, दीनातिदीन बन जाता है, ठीक उसी तरह मानों इन दस्युओंके उपद्रवके कारण मायापुरी दीन बन रही थी, परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये, कि मायापुरीकी अवस्था दीन थी। इस मायापुरीमें क्या नहीं था ? इतने डाकुओंका उपद्रव रहनेपर भी यह धन-वैभवकी खान, ज्ञान बुद्धिका आगार, सुख-समृद्धिका आवास, धर्म-मोक्षकी पथ प्रदर्शिका बन रही थी। परन्तु जिस तरह छुरी पर जंग चढनेके कारण उसकी धार खराब हो जाती है अथवा राखसे ढँक जानेके कारण अग्नि दिखाई नहीं देती है, ठीक उसी तरह इन डाकुओंके उपद्रवने, मायापुरीकी प्रकटित होनेवाली शक्तियोंपर, इसकी प्रस्फुटित होनेवाली अवखिली या कची शक्ति कलियोंपर तुषार मण्डित परदा चढा दिया था! यही कारण था, कि वह श्मशानसी भयानक, ऊजड गाँवसी निस्तब्ध और पाला मारे हुए कुसुम वृक्षोंसी मलिन दिखाई देती थी। अस्तु, जीवानन्दसे विदा होकर, घूमनेकी इच्छासे जब मैं उनको मकानपर ही छोडकर बाहर निकला, तब इन्हीं बातोंको

हुआ, इधर उधर घूमने लगा। मन जिस समय किसी घोर विचारमें लवलीन हो जाता है, समस्त चैतन्योत्पादिका शक्तियाँ जब एक स्थानपर एकत्र होकर लक्ष्यकी ओर प्रबल वेगसे प्रवाहित होती हैं तब अन्य शक्तियाँ, अन्य इन्द्रियाँ तथा शरीर-गठनके अन्य उपादान, यथाक्रम अपना काम यद्यपि करते रहते हैं परन्तु मनपर अथवा ज्ञान शक्तिपर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पहुँचता। ठीक यही अवस्था मेरी थी। जब घरसे निकला और कुछ दूर आगे बढ़ा, तो एकाएक इस मायापुरीकी विचित्रतापर ध्यान जा पहुँचा—उसीमें तन्मय हो गया, मायापुरीकी वैचित्र्यमयी घटनायें ही लक्ष्य रहीं। पैर बढते बढ़ते किधर चले जाते थे, इसपर कुछ भी लक्ष्य न रहा।

इस तरह मैं बराबर अग्रसर होता ही चला गया। मकानसे कितनी दूर चला आया, कुछ खबर नहीं, परन्तु एकाएक गतिमें बाधा प्राप्त हुई। मैं उसी तरह चौंक पडा, जिस तरह पथके बीचमें किसी काले नागको फन उठाये, खडा देखकर, पथिक चौंक उठता है। एक जोरकी परन्तु सरस चीख मेरे कानोंमें आ पडी।

मैंने देखा, कि मैं एक पहाडी उपत्यकामें आ पहुंचा हू। दोनों ओर सघन वृक्ष श्रेणी है, बीचमें पतला पथ है, जिसपर मैं बराबर बढता चला जाता था। अब मैं इसी स्थानपर खडा हो गया और एक बार अपनी चारों ओर देखने लगा। सामने ही एक भीमकाय पर्वत सिर उठाये खडा दिखाई दिया। हरहराहटके

शब्दने बता दिया कि पास ही कोई जलाशय या जल प्रपात है और उस वृक्ष श्रेणीको भेदनकर पुन आई हुई, कोमल कण्ठ निसृत चीत्कार ध्वनिने विश्वास दिला दिया, कि पास ही कोई विपत्तिकी सतायी अबला है, जो रह रहकर साहाय्य प्रार्थना कर रही है!

यद्यपि मन यह कहता था, कि इस रात्रिके समय, अकेले इस वनमें आकर अच्छा काम न किया, तथापि मैं इस समय मनकी इस पुकारपर ध्यान न दे सका। परोपकार और आपद्ग्रस्तोंका उद्धार ही अपने जीवनका उद्देश्य समझकर, मैं शीघ्रतासे उसी ओर अग्रसर हुआ। अधिक दूर न जाना पडा। थोडी ही दूर अग्रसर होनेपर एक बडा ही सुहावना दृश्य दिखाई दिया। एक ऊँचे पर्वतसे बडे वेगसे एक झरना गिर रहा था, जिसकी मोटी और चौडी धारा पर्वतगात्रसे सटी हुई विस्तृत झीलपर पड रही थी। शिशिरके चन्द्रमा आकाशमें चमक चमककर पर्वत-गात्रके वृक्षोंपर, चमकीली जल धारापर, झीलके सुनील जलपर और उसके किनारेके स्फटिक जैसे स्वच्छ शिला-खण्डोंपर अपनी सुस्निग्ध चाँदनी फैला रहे थे। ज्योंही मैं उस स्थानपर पहुँचा त्योंही फिर एक वैसी ही चीत्कार ध्वनि सुन पडी। इसके बाद ही मेरी दृष्टि उस सागरसम विस्तृत झीलपर जा पड़ी। देखा, कि एक कुसुम सी सुन्दरी बाला झीलमें उतरा रही है, गोते भी खा जाती है और जब ऊपर आती है, तो चिल्ला उठती है। इससे अधिक देखनेका अवसर न था। उस सुन्दरीने

मुझे देख हाथ जोडकर, कुछ कहना ही चाहा, कि फिर गोता खा गयी।

अब सहन न कर सका—समझ गया, कि इस कुसुम-कलिकाके मुर्झानेमें कुछ ही क्षणका विलम्ब है। मैं शीघ्रतासे तैरता हुआ उसी ओर चला। वह एक बार फिर ऊपर आयी, उसके विशाल घुँघराले केश एक बार फिर जल पटलपर छितरा पड़े। इसके बाद उसने फिर गोता खाया। इस बार उसने जो गोता खाया तो फिर ऊपर न आयी। शायद कुम्हलायी कली फिर नहीं खिलती। मैंने गोता मारकर उसे पकड़ लिया। वह मेरे शरीरसे चिपट गयी। बडी कठिनाईसे जल-राशिको काटता हुआ मैं किनारे आया, परन्तु यह क्या? किनारे लाकर जब मैंने उसे अपने शरीरसे अलगकर एक ओर खडा करना चाहा, उस समय मेरी घबड़ाहटका ठिकाना न रहा, निराशाका वारापार न रहा विधिके विधानको एक बार जी भरकर कोसनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। क्योंकि मैंने देखा, कि जिसके लिये इस ठण्डी रातमें मैं जलमें कूद पडा, जिसकी रक्षाके लिये अपने जीवनको तृणवत् समझा, वही इस समय मानों चिर-निद्राकी गोदमें जा रही है। अङ्ग तो शीतल था ही, सुध-बुध भी गायब हो गयी है और श्वास-प्रश्वासकी गति भी क्षीणतर होती जाती है। यह देख मैं अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

अहा! कैसी कमनीय कान्ति थी! जलसे भींजी साडी उसके शरीरसे चिपक गयी थी। जिसके भीतरसे अङ्ग अङ्गकी लुनाई,

सिर्जनहारकी चतुराई तथा अनुपम सुघराई फूटी पडती थी। ऐसी सुन्दरीको—ब्रह्माके इतने परिश्रमके खिलौनेको—इतना शीघ्र टूटते देखकर, मनमें बडा कष्ट हुआ। मैं बडी व्यग्रतासे उसे बचानेकी चेष्टा करने लगा। सावधानतासे मैंने उसे पास ही पडे एक स्वच्छ शिलाखण्डपर सुला दिया। चन्द्रमाके समान मुखपर उलझे हुए केश पीछेकी ओर उलट दिये। उस समय ठीक ऐसा मालूम हुआ, मानो आकाशका चन्द्र सम्पूर्ण निष्कलङ्क होकर नीचे उतर आया है। उस समय एकाएक दृष्टि आकाशके चन्द्रकी ओर जा पडी—मन आप ही आप दोनोंकी तुलना करने लगा और आप ही आप तर्ककर बोल उठा—"दोनों ही एक समान हैं, जरा भी अन्तर नहीं—यदि चन्द्रमा अपनी सुशीतल चाँदनी द्वारा हृदयमें शीतलता पहुँचाता है—तो रमणी मुख चन्द्र अपने प्रेम-वारि द्वारा हृदयको सिंचनकर अवर्णनीय तरावट पहुँचा देता है। यदि चन्द्रमामें अमृत भरा है तो इसमें शक्ति भरी है। यदि उसके द्वारा जल सागरमें ज्वार-भाटा उत्पन्न हो जाता है, तो रमणी मुख-चन्द्र द्वारा नर-सागरमें अनेकानेक उत्ताल तरङ्गें और अगणित ज्वार भाटे उठा करते हैं। यदि आकाशके चन्द्रमामें रस है और चकोर उसकी ओर टकटकी लगाये बैठा रहता है तो मर्त्यके इस चन्द्रकी रूप शिखा ऐसी प्रबल है, कि कितने ही युवक चकोर केवल रात्रिके समय ही नहीं, बल्कि दिन रात इस रूप-सुधाको पान करनेके लिये तडपते फिरते हैं और

जीवनसे भी कभी कभी हाथ धो बैठते हैं"

मन न जाने अपने फैसलेमें और क्या क्या कहता, परन्तु इस समय मुझे सुननेका समय नहीं था। मैंने इस समय सङ्कोच त्याग, उसके वस्त्र उतारकर अपने सूखे वस्त्र पहनाये। उसे उलटकर उसके पेटसे पानी निकाला। इसके बाद उसी जगह पड़े घास-फुस और सूखी लकडियाँ बटोरकर, आग सुलगा, उसके शरीरमें गरमी पहुँचाने लगा। धन्य परमेश्वर! मेरी इच्छा पूर्ण हुई—श्वास प्रश्वासकी मन्द गति तीव्र हुई और लगभग एक घण्टे के परिश्रमके बाद, उस सुन्दरीके सर्दीसे कुम्हलाये हुए पीले गालोंपर लालिमा झलक मारने लगी, नयन-तारे जो स्थिर हो चले थे, चञ्चल हो उठे। ओठ फड़क उठे और कमानसी भौंहोंने दो तीन बार हिलकर फिर अपना स्थान ग्रहण किया। और कुछ ही देर बाद जब वह सरोज -सी सुन्दरी घबड़ाकर उठ बैठी, तब मेरी प्रसन्नताका वारापार न रहा। उसने चञ्चल दृष्टिसे एक बार पहले अपनी चारों ओर, फिर अपने शरीरकी ओर देखा। लुप्त स्मृति पुनः जागरित हुई। उसने एक बार कृतज्ञ, पर कातर-नयनोंसे मेरी ओर देखनेके बाद सकुचाकर सिर झुका लिया।

कुछ क्षणके बाद उसने फिर सिर उठाकर मेरी ओर देखा। ओह! कितनी सरल रसभरी दृष्टि थी! और कुछ देरतक देखने बाद उसने कहा—"आपकी कृपासे आज मेरा प्राण बच गया—इसके लिये मैं सदा आपकी कृतज्ञ रहूँगी।"

मैंने कहा—"सुन्दरी! तुम कौन हो और कैसे इस अगाध झीलमें जा पडी थी ?"

सुन्दरीने मेरी ओर देखकर कहा—"पासकी पहाडी उपत्यकामें ही मेरी कुटी है और उसीमें मैं अपनी माताके साथ रहती हूँ। मैं जल भरने आयी थी, एकाएक घडा बह गया और उसे पकडनेके लिये जब आगे बढ़ी, तो जलमें जा पडी।"

मैंने कहा—"तो क्या तुम अकेली ही आई थी ?"

वह बोली—"हाँ, परन्तु इस समय सर्दी अधिक है और आप खुले हैं। पास ही मेरी कुटी है। आप कृपाकर वहाँतक चलनेका कष्ट उठावे तो बडी दया हो ? मेरी माँ बड़ी व्याकुल होगी।"

मैंने कहा—"क्या तुम्हारा और कोई आत्मीय नहीं है ?"

उसने कहा—"अब आप शीघ्र चलिये। वहीं सब बातें कहूँगी।"

इसके बाद पर्वतकी ओर हम दोनों अग्रसर हुए। इस समय आकाशकी चन्द्रिकाकी अनोखी छटा देखकर मानों जङ्गली पौधे, लता पल्लव—सभी हँस रहे थे और अपनी मर्त्यकी चन्द्रिका-सङ्गिनीको देखकर मेरे हृदयकी कमलिनी भी खिल रही थी। सन्नाटा गहरा था, पर वह भी सुखकर मालूम होता था। जङ्गली पशु भी इस तरह निस्तब्ध हो रहे थे, मानों चन्द्रदेवने आज उन्हें इतना अमृत पिला दिया था, कि उसके मदमें वे सो गये थे। ऊपर आकाशमें चन्द्रदेव, नीचे पृथ्वीपर उनकी चटकीली चाँदनी

और मेरी सङ्गिनी चारों ओर आकाशके चन्द्रको भी लज्जित करनेवाली सौन्दर्यकी खान थी। मनमें सोचा—विधनाने सौन्दर्य भी कैसा अद्भुत पदार्थ रचा है! यह भी बड़े भाग्य, बड़े पुण्य और बड़ी तपस्यासे प्राप्त होता है! न जाने और भी कितनी ही बातें सोच गया, वह रमणी भी मानों किसी गहरे सोचमें जा पड़ी थी—हम दोनोंका ही मन किसी दूसरे स्थानपर था केवल पैर बढ़ते चले जाते थे।

कुछ दूर और भी अग्रसर होनेपर उस रमणीने इस निस्तब्धताको अपने वीणा विनिन्दित कण्ठसे भङ्गकर एक ओर हाथसे इशारा करते हुए कहा—"वह सामने ही मेरी कुटी है।"

इतना सुनते ही पर्वत-गात्रपर दृष्टि जा पड़ी। मैंने देखा, कि एक झोपड़ेके दरवाजेपर एक वृद्धा खड़ी है। वृद्धाने उसे देखते ही झुँझलाकर कहा—"इतनी देरसे वहाँ क्या कर रही थी? और यह किसे अपने साथ ले आयी है। इतनी बड़ी हो गयी—अब न जाने कब होश सम्हालेगी?'

उस स्त्रीने कहा—"माँ रंज न करो। ईश्वरकी कृपा और इन दयालु पुरुषकी दयासे आज जीवित लौट आयी हूँ—नहीं तो मैं मर ही चुकी थी।"

इसपर वृद्धाने अपना कर्कश स्वर कुछ धीमाकर कहा—"क्यों, क्या हुआ था? मरनेकी क्या बात हुई थी?"

रमणी बोली—"मैं झीलमें बह गयी थी। यदि ये समयपर न आ जाते तो डूब जाती।"

इस बार वृद्धाने अपेक्षाकृत शान्त स्वरमें कहा—"परमेश्वरको धन्यवाद ! अब समझी, अच्छा भीतर चलो। आप भी आज यहीं ठहर जायें। इतनी रातको, इस ठण्डकमें अब कहाँ जायँगे ? यह मायापुरी बड़ा विकट स्थान है।"

हम दोनों भीतर गये। वृद्धाने हमें बदलनेके लिये वस्त्र दिये और आग सुलगा दी, जिससे ठण्ड दूर हुई। हम लोग एक जगह बैठकर बातें करने लगे।

बात ही बातमें वृद्धा अपनी पारिवारिक स्थिति समझा गयी। कितनी ही आनन्द-भरी, दुःखभरी, संसारिक और पारिवारिक स्थितिकी, उलट-फेरकी बातें बड़ी ही दर्दभरी, प्रेम भरी और भावभरी भाषामें वह सुना गयी। अन्तमें बोली—"मेरे दुर्भाग्यसे कन्या भी ऐसी मिली है, कि विवाह ही नहीं किया चाहती। विवाह कर लेती तो आज गृहस्थी तो बस जाती।"

उस रमणीने आजतक विवाह नहीं किया है, यह सुनकर मनमें कुछ कौतूहल हुआ। मैंने पूछा—"विवाह क्यों नहीं करना चाहती ?"

वृद्धा बोली—"मैं क्या जानूँ ? आप ही उससे पूछिये।"

न जाने क्यों रमणीसे कुछ पूछनेका साहस न हुआ। मैं एक बार तिरछी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर मुस्कुराया। उसने सिर झुकाकर बड़े ही विनम्र स्वरमें कहा—"इच्छा ऐसी ही थी, कि किसी पुरुषको अपना अङ्ग स्पर्श न करने दूँगी। परन्तु आज दैव दुर्विपाकसे वह प्रतिज्ञा भङ्ग हो गयी।"

मैंने धीरे धीरे कहा—"तो क्या अब विचार बदल गया ?"

वृद्धा बड़ी उत्सुकतासे उसके चेहरेको देखने लगी। रमणी बोली—"हाँ, अब वह प्रतिज्ञा निभनी दिखायी नहीं देती।"

इसी समय हमारे लिये दूध लानेके बहाने वृद्धा उठकर दूसरी झोपड़ीमें चली गयी।

अब एकान्त देखकर मैंने उससे पूछा—"किसे बड़भागी बनाओगी ?"

रमणी मुस्कराकर बोली—"जिसने मेरा अङ्ग स्पर्श किया है, वह यदि अविवाहित है, तो उसीको।"

न जाने क्यों, सुनकर मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने कहा—"यह तो बड़े सौभाग्यकी बात है, भला तुम जैसी रमणीको कौन न स्वीकार करेगा।" कहना वृथा है, कि वृद्धाकी बातोंसे रमणीकी जाति-पाँतिका पता पहले ही लग गया था। अतः मुझे अपनी स्वीकृति देनेमें कुछ भी अड़चन न पड़ी।

मेरी स्वीकृति सुनकर वह स्त्री मुस्करायी। मोतियोंसी दन्त पंक्ति चमक उठी। इसके बाद बड़ी ही कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखती हुई वह बोली—"आज न जाने आप किस सायतमें यहाँ आ पहुंचे थे, कि मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो गयी।"

मैंने भी उसी तरह व्यङ्गसे कहा—"तो चला जाऊँ ? मैं तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता।"

इतना सुनते ही उस स्त्रीने कहा—"वचन भी क्या कोई फेरता है ?"

एकाएक वह स्त्री एक बार अँगड़ाई लेकर उठ खड़ी हुई। उस समय न जाने क्यों मेरी नस-नसमें बिजलीसी दौड़ गयी, शिथिल शरीर उत्तप्त हो गया, शान्त मन चञ्चल हो उठा, कलेजेमें एक प्रकारकी धड़कन हो गयी, माथेपर कुछ भारीपन मालूम होने लगा और मनमें कुछ अननुभूतसी उमङ्ग मालूम होने लगी। इसी समय कुछ मनुष्योंके पैरोंकी आहट मालूम हुई। मैंने दरवाजेकी ओर झाँककर देखा। एक मनुष्य तेजीसे हट गया। इसी समय उस वृद्धाने जोरसे पुकारा—"ऐ रति! जरा बाहर तो आ।" रति भी झपटकर बाहरकी ओर चली।

रति अभी बाहर निकल भी न सकी थी, कि सचमुच ही कामरूपसिंहने अपने कुछ साथियोंके साथ मुझपर आक्रमण किया। ज्यों ही वृद्धाने रतिका नाम लेकर पुकारा, त्योंही जीवानन्दके मुखसे रतिकी बात सुननेके कारण वह घटना स्मरण हो आयी। मुझे खटका हो गया। बस इसी समय कामरूपसिंहने झपटकर चाहा, कि मुझे पकड़ ले, किन्तु मैं कूद कर बाहर निकल आया। रति भी भागकर एक दूसरे झोपड़ेमें चली गयी।

कामरूपसिंह भी आज मानों उन्मत्त सा हो रहा था। वह तुरन्त ही बाहर निकला और मुझपर टूट पड़ा। हम दोनों एक दूसरेसे चिपट गये। मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया, पर्वत गात्रपर, शिलाखण्डके ऊपर हम दोनोंही एक दूसरेको शिलाशायी करनेकी चेष्टा करने लगे। कामरूपसिंहके साथी इस

अलग खड़े होकर, न जाने क्यों, तमाशा देख रहे थे। बड़ा ही भीषण मल्लयुद्ध हुआ। कामरूपमें भी कम बल न था; हम दोनों ही जूझते हुए एक शिलाखण्डसे नीचे आ गिरे। कामरूप और संयमके इस युद्धमें संयमने ही विजय पायी। पैर फिसलनेके कारण कामरूप नीचे गिरा। चोट अधिक लगी और फिर न जाने क्या सोचकर भाग खड़ा हुआ। उसके साथी भी न जाने किधर भाग गये। अब मैं रतिकी खोजमें ऊपर गया, परन्तु वह भी नदारद! उसकी माताका भी पता न था। तो क्या यह सभी छलना, सभी प्रपञ्च और सभी मुझे फँसानेका षड़यन्त्र था? मुझे भी कुछ चोट आयी थी। इतनी ही ठोकर खाकर मैं सावधान हो गया। रात अधिक हो गयी थी। शुक्ला द्वादशीके चन्द्रदेव अस्ताचलकी ओर शीघ्रतासे बढ़ रहे थे। मैंने उन दोनोंका बहुत पता लगाना चाहा, परन्तु कहीं पता न लगा। तबीयत बहुत झुँझलायी। इस मायापुरीके इन विचक्षण षड्यन्त्रियोंपर, इन दुराचारी पाखण्डियोंपर बड़ी घृणा हुई—क्रोध भी हुआ। परन्तु कर क्या सकता था? लौट पड़ा।

पथ मालूम न था। रात्रिका समय और अपरिचित स्थान—मैं पथ भ्रष्ट हो पड़ा। कामरूपसे मल्लयुद्ध होनेके कारण शरीर कुछ शिथिल सा हो रहा था। अत मैं धीरे-धीरे सावधानतासे अपने निवासकी ओर अग्रसर हुआ।

जब मैं लौटता हुआ सघन वनमें पहुचा, उसी समय पत्तेकी खरखराहटका शब्द सुन पड़ा। मैं खड़ा होकर ध्यानसे उसी

ओर देखने लगा। कुछ दूरपर कुछ मनुष्य दिखाई दिये। मैं और भी सशंकित हो उठा—क्या यहाँ भी कोई दस्यु जाल बिछा हुआ है? परन्तु फिर कोई दिखाई न दिया।

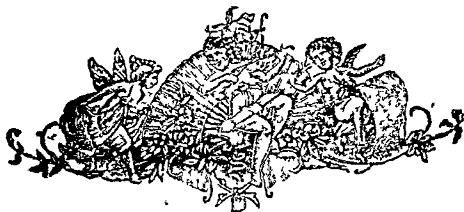
मैं अब बढ़ा। यह स्थान और भी सघन वृक्षोंसे घिरा था। दूर-दूरपर वृक्षोंसे चाँदनी छनकर भूमिपर इस ढङ्गसे पड रही थी, मानों मुझे दुर्बल समझकर छल रही हो। कुछ दूरपर दृष्टि गयी तो ऐसा मालूम हुआ, कि स्वच्छ वस्त्रधारी कोई पुरुष वृक्षके नीचे खडा है। साहसकर मैं आगे बढा। ध्यानसे देखा, तो स्पष्ट मालूम हुआ, कि मुझ आफतमें पडेको सतानेके लिये चन्द्र-देव खिलवाडकर मुझे डरा रहे हैं। इसी तरह और भी कितने ही दृश्य दिखाई दिये। एक जगह ठीक ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई स्त्री खडी है—जिसका सब अङ्ग दिखाई देता है, पर पैर नहीं दिखाई पडते और वह एक हाथ इस तरह हिला रही है, मानों मुझे बुलाती हो। इस बार भयसे ठिठककर खडा हो गया! यह कैसी पिशाच लीला है? परन्तु फिर स्मरण आ गया, कि दुर्बलको सभी सताते हैं—शायद चन्द्रदेवने सतानेकी ठानकर फिर भी कोई चाल चली हो—यही सोचकर आगे बढा। निशापति सचमुच खिलवाड कर रहे थे। वायु उनके खेलमें सहारा दे रहा था, और पत्तोंको इस तरह हिला रहा था, मानों गेंद फेंक रहा हो। पत्तोंके हिलनेसे चाँदनीकी आभामें जो परिवर्त्तन होता था, वही हाथ हिलता सा मालूम होता था और वृक्षकी मोटी जड़पर शुभ्र चाँदनी पडकर स्त्रीका ए-

दिखा रही थी। वाहरी मायापुरी! तेरी सभी बातें विलक्षण हैं!!

मैंने मन ही मन सोचा—यह सब हृदयकी दुर्बलताका कारण है। भूत-प्रेत कुछ नहीं। यदि हो भी तो मनुष्यसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं—यह सोचकर मैं तेजीसे आगे बढ़ा। कुछ ही दूर और बढ़ा होऊँगा, कि एकाएक एक ओरसे कई मनुष्योंने आक्रमण किया। परन्तु ईश्वरकी दयासे किसीकी गोली न लगी। मैं भी हाथमें पिस्तौल ले, एक वृक्षकी ओटमें छिप रहा।

तुरन्त ही अपने दो सहचरोंके साथ कामरूप वहाँ आ पहुँचा। मैं उसकी दृष्टिसे बच न सका। उसने मुझे देख लिया—और फिर क्या था? मैं ही तो उसका प्रबल शत्रु था। अत वे तीनों ही भीषण वेगसे मुझपर टूट पडे। अब मैं भी वही न था, जो रतिसे पहले पहल मिलते समय! परन्तु कामरूपसिंहमें भी इस समय अमानुषिक तेज आ गया था दो दो बार वह मुझसे अपमानित हो चुका था, बारबार उसे नीचा देखना पडा था। अत पैरसे कुचले हुए सर्पकी भाँति, वह इस समय झल्ला रहा था। उसने आते ही मेरे ऊपर पिस्तौल दागी, परन्तु मारनेवालेसे बचानेवाला बड़ा जबर्दस्त होता है। गोली साफ बचकर निकल गयी। अब मैंने भी प्रत्याक्रमण आरम्भ किया। जो स्थान कुछ क्षण पहले निस्तब्ध हो रहा था, वह बन्दूकोंके शब्दसे गूँज उठा, धुएँसे भर गया और चीत्कार-ध्वनिसे परिपूर्ण हो गया। कामरूपसिंह इस

समय क्रोध और प्रतिहिंसाके भावसे पागल हो रहा था, परन्तु मैं उन्मत्त नहीं, बल्कि अपनी रक्षामें सयत था। अत मेरा निशाना काम कर गया। उसका एक साथी गिरा। दूसरा मुझपर झपटा, वह भी पृथ्वीपर लोट पडा। अब ज्योंही कामरूप मेरी ओर लपका, त्योंही मैंने कसकर उसका दाहिना हाथ पकड, इतने जोरसे दबाया, कि उसके हाथसे पिस्तौल छूट पडी। काम अवश हो गया। मैं ईश्वरको धन्यवाद दे, उसे पकड़कर थानेमें ले आया। पहरेका प्रबन्ध कर, उसे एक कोठरीमें कैद कर दिया। इस समय सवेरा होनेमें थोडा विलम्ब था। मैं घर न जाकर विश्रामके लिये थानेमें ही लेट गया। लेटते ही नींदने घर दबाया। मैं सो गया।



वह बोला—"मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ। मेरे प्रश्नोंका उत्तर इस तरह क्यों दे रहे हो?"

मैं बोला—"इस मायापुरीमें शत्रु-मित्रका पहचानना सहज-साध्य नहीं है। कैसे समझूँ, कि आप मेरे मित्र हैं?"

उसने कहा—"मेरी सूरत देखकर ही आप समझ सकते हैं, कि मैं चोर-डाकू या उचका नहीं हूं।"

मैंने कहा—"सुन्दरी सौदामिनीमें जला देनेकी शक्ति है, सोनेके घड़ेमें विष रह सकता है, नयन मुग्धकर इन्द्रायणके फलमें विष भरा रहता है, फिर कैसे समझूँ, कि आपके इस रूप और ठाट-बाटके भीतर कोई दुरभिसन्धि नहीं छिपी है।"

उसने कहा—"व्यवहारसे।"

मैं बोला—"खास आपको तो नहीं कह सकता, परन्तु आप सरीखे ही सुश्री, सुसज्जित या सुभूषित महापुरुषोंकी कृपासे ही, आज इस नरककुण्डमें दिखायी दे रहा हूं। अब बताइये, व्यवहारको भी कैसे देखूँ?"

इस बार वह मनुष्य अप्रतिभ होकर, कुछ क्षणतक चुपचाप मेरे चेहरेकी ओर देखता रहा। फिर बोला—"अच्छा, आप ही बताइये, कि क्या आपका कोई अपराध नहीं था?"

मैं मनही मन अपने अपराधको सोचता, रहा, परन्तु कुछ समझमें न आया। बोला—"नहीं, मेरा कोई अपराध नहीं था?"

उसने कहा—"दूसरेको दोष देनेके पहले अपने कर्मोंपर विचार करना चाहिये। विवेक शून्य होकर, यह मालूम रहनेपर

भी, कि इस स्थानपर मेरे अनेकानेक शत्रु उपस्थित हैं, अपरिचित स्थानमें, अपरिचित मकानमें और अपरिचित ही मनुष्यके यहाँ जाकर किसीकी धन-सम्पत्ति और कोई रूपवती ललना को देखनेमें इतना लिप्त हो जाना, कि फिर अपनी अवस्था और तन-बदनकी सुधि न रहे, क्या अपराध नहीं है ?"

मैंने कहा—"हो सकता है, परन्तु कलियुगमें मानसिक अपराधका दण्ड नहीं होता।"

मेरी बात सुन वह ठठाकर हँस पडा। बोला—"मूर्ख मनुष्य! यह भी कभी सम्भव है ? बिना मानस-पटलपर उत्पन्न हुए क्या कोई कार्य भौतिक जगतमें प्रकट हो सक्ता है ? फिर दण्ड क्यों न होगा ?"

बात विचार करनेकी थी ? मैंने कहा—"इतने झमेलेसे क्या मतलब है ? अपना उद्देश्य बताइये।"

वह बोला—"उद्देश्य बताऊँ ? मेरे दलके कप्तान अमर्ष सिंहको कहाँ कैद कर रखा है ?"

मैंने कहा—"तुम कौन हो ?"

उसने कहा—अभिलाषसिंह !"

ओह ! तब क्या मैं अभिलाषसिंहके फेरमें जा पडा था ! इनकी कैसी भयानक चालें हैं !! धन सम्पत्तिका लोभ मनमें उत्पन्न होना और साथ ही अभिलाषसिंहका आक्रमण—दोनों घटनायें ऐसी एकत्र हुई, कि देखकर तबीयत दङ्ग रह गयी। लीलामयकी लीलापर आश्चर्य होने लगा।

मैं बोला—"तो मुझे फँसानेकी यह सब चाल थी, वास्तवमें उस दिवस कोई उत्सव न था ?"

वह बोला—"था, परन्तु तुम्हारे फँसानेका कुछ षडयन्त्र भी था। अच्छा, अब यदि यहाँसे जीवित बचकर जाना चाहते हो तो बताओ, अमर्षसिंह कहाँ है ?"

मैंने कहा—"यह मैं कदापि बता नहीं सकता।"

अभिलाषसिंहने कहा—"मैं समझता था, कि तुम अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य होगे। परन्तु अब तुम्हें बिल्कुल विपरीत पाता हूँ। बताओ, इस जासूसी जीवनमे तुम्हें क्या सुख है ? आज यदि हम चाहें तो तुम्हें अनायास ही मार सकते हैं। कोई भी तुम्हारी रक्षा करनेवाला नहीं है। पद-पदपर जीवन सशयमें रहता है, जरा चूके कि मारे गये, फिर क्यों इस झमेलेमें पडे हो ? मेरे दलमें आ मिलो। उस दिवस तुमने देखा ही था, कि मेरे साथियोंके पास कितनी सम्पत्ति है। किस तरह हम आनन्द कर सकते हैं, किस प्रकारसे हमलोग अपनी मनोभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं। तुम्हें भी किसी बातकी कमी न रहेगी।"

मैंने कहा—"तुम्हारा कहना सत्य है, उस रातमें मैं भी यही सोचता था।"

अभिलाषसिंहने मेरा मन अपनी ओर झुकता देखकर कहा—"पर आज ?"

मैं—आज तुमलोगोंका अत्याचार स्मरणकर मत बदल गया। एक बात और भी है—इस क्षणभंगुर जीवनके लिये वृथा

पाप क्यों चटोरूँ, अपने कर्त्तव्यको क्यों जलाञ्जलि दूँ ?

अभिलापसिंहने कहा—"क्या प्रचुर सम्पत्ति उपार्ज्जनकर संसारिक सुखोंका पूर्ण उपभोग करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है ? बताओ, ईश्वरने ये पदार्थ ससारमें क्यों उत्पन्न किये हैं ? ईश्वरने जब भ्रमर बनाया तो रस भी उत्पन्न कर दिया, पुष्प बनाये तो सूघनेवाले भी उत्पन्न कर दिये और जब निर्मल वारि-धारा बनायी तो उसे पीने और उसमें स्नान करनेवाले भी बना दिये हैं। अत धन-सम्पत्ति, भोग-विलास, कामिनी-काञ्चन जो कुछ उन्होंने बनाया—सबके भोक्ता उत्पन्न कर दिये। ऐसी अवस्थामें ईश्वरी सृष्टिको भोग करनेवाला कदापि पापी और कर्तव्य-च्युत नहीं हो सकता। क्या वह परब्रह्म इतना मूर्ख है, कि निरर्थक सामग्री उत्पन्न करता है ?"

मैंने कहा—"नहीं वह मूर्ख कदापि नहीं हो सकता। सृष्टि-कर्त्ताकी सृष्टिमें कोई भी पदार्थ वृथा नहीं है, परन्तु उसका उपभोग भी सभी नहीं कर सकते। अपने अपने कर्म्मके अनुसार मनुष्य उनके भोगका अधिकारी होता है।"

उसने कुछ झुँझलाकर कहा—"मैं तुमसे ब्रह्मज्ञान सीखने नहीं आया हूँ। तुम्हें इतना समझाता इसीलिये हूँ, कि जिसमें वृथा ही अपना जीवन नष्ट न कर बैठो। परन्तु तुम उल्टे मुझे ही उपदेश देने लगे। किसने कहा था, कि उस मकानमें आओ—कोई निमन्त्रण देने गया था ?"

वह कुछ और कहना ही चाहता था, कि इसी समय एक

और भी मनुष्य वहाँ आ पहुँचा। वह बहुत ही दुबला-पतला था। ऐसा मालूम होता था, कि उसे भरपेट खानेको नहीं मिलता। उसके हाथ-पैर मानों काँप रहे थे। उसने आते ही हाथ फैलाकर उस मनुष्यकी ओर देखते हुए बड़े ही तीखे, परन्तु दीनता भरे वाक्योंमें कहा-(कहते समय उसके हाथ काँप रहे थे) "आप यहाँ क्या कर रहे हैं? आपके बिना वहाँ बड़ा हर्ज हो रहा है। *इससे क्या काम निकलेगा? इसे कुछ भी खाने-पीनेको न दीजिये।* वृथा ही क्यों खर्च बढ़ाया जाये—आप ही भूखा मर जायगा। चलिये यहाँसे, कई मनुष्य बैठे आपकी राह देख रहे हैं।"

खासा दरिद्रका स्वरूप था। जिस तरह अकाल पीड़ित मनुष्योंके पेट निकले रहते हैं, ठीक उसी प्रकारसे इसका भी पेट निकला हुआ था। बात करते-करते हाथ मुँहकी ओर चले जाते थे और रह रहकर जीभ बाहर निकल आती थी। मुझसे बातें करनेवाला अभिलाषसिंह, उसकी बात सुन, उसके साथ चला गया। जाते समय वह अवश्य ही ताला बन्द करनेसे न चूका। उसके चले जाने बाद मैं फिर उसी घोर चिन्तामें जा पड़ा।

आज समस्त दिवस कुछ भोजन भी न मिला। मैं मन ही मन सोचने लगा—क्या सचमुच ही उस दरिद्रके परामर्शानुसार अब मुझे भोजन नहीं मिलेगा? अनेकानेक बातें सोचते और अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करते हुए संध्या हो गयी। धीरे धीरे रात्रिके नौ बजे। मैं उसी टूटी-फूटी खाटपर, उदास चित्त,

और भग्न हृदयसे बैठा रहा। और भी रात बीती। जिस तरह विपत्तिमें अपना पराया हो जाता है, उसी तरह नित्य-सहचरी निद्रा भी आज पराई बन कुलटा हो गयी। दूसरे, पेटमें तो चूहे दौड रहे थे, नींद आती कहाँसे ? एकाएक जिस समय घड़ियालीने बारहका घण्टा बजाया, ठीक उसी समय किसीने बडी ही सावधानीसे मेरे कमरेका दरवाजा खोला और धीरे धीरे भीतर आकर कहा—"क्या सोये हैं ?"

आवाज किसी रमणीकी थी, परन्तु बहुत ही विनम्र स्वरमें कहनेपर भी कुछ कुछ कर्कश सी मालूम हुई। दो प्रकारकी ध्वनि एक साथ ही उसके कण्ठसे निकलती थी। मैं काँप उठा। इस घोर अन्धकारमय कारागारमें, अर्द्धरात्रिके समय यह कौन आ पहुँची ? मैं मन ही मन सोचने लगा—"कोई उत्तर दूँ या नहीं ?"

इस सोच विचारमें कुछ क्षण व्यतीत हो गये। मुझे उत्तर देनेमें विलम्ब करते देखकर वह बोली—"कैसा मनुष्य है ? दिनभर खानेको न मिला, तिसपर भी किस तरह सुखकी नींद सो रहा है !"

मैं फिर भी चुप रहा। कुछ क्षण बाद उसने मेरी खाटपर हाथ रखा। अब मैं चौंककर उठ बैठा। बोला—"तुम कौन हो ?"

भूखे रहनेपर भी आवाज जोरकी ही निकली। वह बोली—"धीरे बोलो।"

मैं कुछ धीमे ही स्वरमें कहा—"तुम कौन हो

अर्द्धरात्रिके समय, चोरकी भाँति, इस दस्यु कारागारमे क्यो आयी हो?"

वह बोली—"सुनोगे, मैं कौन हूँ? अच्छा, पीछे सुनना। तुम दिनभरके भूखे हो, पहले कुछ भोजन कर लो।"

इतना कहकर उसने सावधानीसे दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद जेबसे एक ऐसी लाल्टेन निकाली, जिसका ढकना हटाते ही प्रकाश फैल गया, परन्तु प्रकाश क्षीण था। उसी प्रकाशमें मैंने देखा, कि एक प्रौढ़-वयस्का, उन्नत-काया रमणी मेरे सामने खड़ी है। रमणी सुन्दरी थी या नहीं सो उस भूखे पेट दुःखित मन तथा क्लेशित शरीरके समय कैसे समझ सकता। परन्तु इतना हमने अवश्य देख लिया, कि उसका रंग कुछ साँवला, आँखें तीक्ष्ण तथा मर्म्म स्पर्शी, नासिका कुछ लम्बी और ओंठ पतले पर मुखगह्वर विशेष चौड़ा था। कान भी कुछ बड़े बड़े थे, केश छोटे पर खूब चिकने थे, गर्दन सदा कुछ टेढ़ी ही रहती थी और दोनों उरोज बड़े ही उन्नत तथा बड़े बड़े थे। इससे अधिक उस समय कुछ देख न सका। देखनेकी आवश्यकता भी न थी। लाल्टेन जलाने बाद, बड़ी तीव्र दृष्टिसे मेरी ओर देखती हुई, वह स्त्री मेरी टूटी खाटके पास ही जमीन-पर बैठ, पोटली खोलती हुई बोली—"इसमें बड़ा ही स्वादिष्ठ भोजन है—पहले इससे अपना पेट भर लो, पीछे बातें करना।"

भूख तो लगी ही थी, इतना सुनते ही दृष्टि उस पोटलीके सामानपर जा पड़ी। मैंने देखा, कि एक पतली रोटी और थोड़ी

सी तरकारी उसपर रखी है। देखते ही तबीयत और भी खाक हो गयी। मैंने कहा—"मुझे खाना नहीं है, तू यह बता, कि यहाँ किसलिये आयी है और कौन है?"

उसने जल्दीसे उस रोटीको उसी तरह पोटलीमें बाँधते हुए कहा—"देखो, मैं तुम्हारी शुभेच्छुका हू। मैंने सुना है, कि तुमने कल रातसे कुछ नहीं खाया है। इसलिये बड़े यत्नसे तुम्हारे लिये कैसी सुन्दर रोटी बना लायी हू, परन्तु शायद अभी तुम मुझसे घृणा करते हो और मेरा परिचय नहीं जानते, इसीलिये मुझपर सन्देहकर मेरे हाथका अन्न नहीं खाया चाहते। अच्छा न सही, वेश्याके रूठनेसे पाप ही कम होता है और अब तुमने पहले मेरा परिचय जानना चाहा है, सो सुनो—जी भर जाये तब पेट भरना—जिस तरह शरीरकी सब इन्द्रियोंको पेट चलाया करता है—उसी तरह मैं इस ससारको चलाती हू। मैं वही हूं, जिसका सहारा लेनेवालेको, बाहरवाले कुछ क्षणके लिये भले ही दोष दें, पर वह सदा आनन्दसे रहता है, सदा उसकी चैनकी बन्शी बजा करती है और सदा वह ससारके यावत् सुख भोगा करता है। मेरा आश्रय पानेवालेको दु ख-दारिद्र्य नहीं सताता। विदेशमें वह ऊँचेसे ऊँचा पद प्राप्त करता है और असीम धन राशि उपार्जनकर, ससारके यावत् सुख और धर्म्म भी प्राप्त करता है। समझ गये, मैं कैसी शक्तिशालिनी हूं? जान गये, कि यदि मेरा पक्ष ग्रहण करो, तो तुम्हारी कैसी अवस्था होगी।

पड़ी। मैंने देखा, कि वह बडी ही तीक्ष्ण दृष्टिसे मेरे चेहरेकी ओर देख रही है। मुझे अपनी ओर देखते देखकर उसने सिर झुका लिया और बोली—"अच्छा, अब मेरे साथ आओ।" इतना कहकर वह एक दूसरा दरवाजा खोलकर दूसरी ही ओर निकल गयी। मैं भी उसके पीछे पीछे चला।

एक बरामदेकी राहसे थोडी दूरतक अग्रसर होनेपर मैंने देखा, कि एक कमरेमें अभिलाषसिंह बैठा है। उसके पास वही उस दिवसकी सुन्दरी गायिका बैठी हुई है। अभिलाषसिंहके कितने ही संगी-सहचर भी बैठे हुए हैं—सभी आनन्दमें मस्त हैं, सभी गाने बजानेमें लीन हैं। कुछ देरतक उस कमरेकी अवस्था और अभिलाषसिंहका आनन्द दिखाकर, स्वार्था मुझे साथ लेकर आगे बढ़ी। इस बार अभिलाषसिंहके महलके एक दूसरे ही भागमें जा पहुँची। इस भागमें आकर उसने कहा—"एक बात है—मैं समझती हूँ, कि तुम सच्चे मनुष्य हो—अतः प्रतिज्ञा करो, कि यदि मेरी बात न भी मानना चाहो तब भी तुम तबतक भागनेकी चेष्टा न करोगे, जबतक मेरे साथ हो। यदि यह प्रतिज्ञा करो तो इस मकान और इसके बाहरकी अनेकानेक ऐसी चीजें तुम्हें दिखाऊँ, कि देखकर चकित हो जाओ।"

मैंने कहा—"अच्छा। तुम इस तरह निर्भय होकर यहाँ घूम रही हो, यदि कोई तुम्हें देख ले तब?"

वह बोली—"स्वार्था इसका भय नहीं करती। एक ही मेरा शत्रु था—उसे मैं कारागारमें पहुँचा चुकी हूं। कामरूप

सिंह जो न कर सका, मैं वह कर चुकी हूँ। अब किसीका नहीं है—और अभिलाषसिंह ? वह क्या बोल सकता है ? इ आनन्द, इतनी मौज, इतना विलास भोग यह सब किस बदौलत है—(छाती ठोककर) यह एक स्वार्थाकी अस कृपाका फल है।"

जिस समय वह अपनी बातें कह रही थी, उस समय उस आँखोंसे एक प्रकारकी तीव्र ज्योति निकल रही थी और माल होता था, कि उसकी आँखोंकी पुतलियाँ, जोर जोरसे घू रही हैं।

उसकी यह अवस्था देखकर मैं मन ही मन सोचने लगा—"यह कौन है ? मानवी है या दानवी ? देवी है या राक्षसी ? इन दुर्दान्त डाकुओंके सभी स्थानोंमें इसकी गति है, कहीं रुकावट नहीं—फिर यह है कौन ?

स्वार्थाने मुझे कुछ सोचते देखकर कहा—"क्या सोच रहे हो—मेरे अधिकारकी बात ? परन्तु मेरा पूरा अधिकार अभी तुमने देखा कहाँ है ? मैं चाहूँ तो इस समूचे दस्यु दलको (अपनी कानी उँगली दिखाकर) इस उँगली पर नचा सकती हूँ। यदि मेरा अधिकार, मेरे कार्य और मेरी शक्ति देखना हो तो प्रतिज्ञा करो।"

मैंने कहा—"मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जबतक तुम्हारे साथ हूँ, तबतक नहीं भागूंगा और लौटकर फिर अपने कारागारमें ँगा।"

स्वार्था प्रसन्न होती हुई बोली—"मुझे विश्वास है, कि तुम अपनी बातसे न हटोगे। अच्छा आओ।"

अब स्वार्था एक ओरका छोटा सा दरवाजा खोलकर बाहर निकल गयी। बाहर एक गली थी, उसी गलीसे हम लोग आगे बढ़े। कुछ दूर जाकर एक टूटे फूटे मकानको दिखाती हुई स्वार्था बोली—"यह यहांके प्रसिद्ध धनी धनपतिरामका मकान है। देखते हो, किस अवस्थामें है? यह बड़े दानी थे, खुले हाथसे दान करते थे। लोग उनके दानकी उपमा सागरसे और उनकी कुबेरसे देते थे, परन्तु आज देखते हो उनका कहीं नाम-निशान भी नहीं है, उनकी सम्पत्ति पानीके बुल-बुलेकी भांति नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है, और वह देखो, (एक टूटे खँडहर जैसे मकानका एक अंश दिखाकर) सामने ही उनके पुत्र किस दरिद्र अवस्थामें पड़े हैं। मैंने उनसे कितना ही कहा, कि मेरा सहारा लो, परन्तु उन्होंने न माना—अन्तमें यह दुर्दशा हुई।"

मैंने कहा—"उनकी सब सम्पत्ति क्या हो गयी?"

स्वार्था—मेरा कहना न माननेके कारण नष्ट भ्रष्ट हो गयी।

स्वार्थाने इसी प्रकारके अनेकानेक दृश्य और भी दिखाये और अन्तमें मुझे अपने साथ लिये फिर अभिलाषसिंहके उसी महलमें घुस आयी। यहाँ आकर उसने एक निराले स्थानमें प्रवेश किया। कुछ आगे बढ़नेपर उसने एक दरवाजा खोला। दरवाजेके भीतर एक बड़ा कमरा था, जो तीन ओरसे दीवार

परन्तु एक ओरसे लोहेके छडोंसे घिरा था। इसमें उज्वल गौर वर्णका एक मनुष्य कैद था। उसे देखनेसे ही मालूम होता था, कि यह कोई उच्च वंशका मनुष्य है। उसका दिव्य ललाट चमक रहा था, बडी-बडी आँखोंसे एक प्रकारका तेज निकल रहा था। उन्नत नासिका बुद्धिमत्ताका परिचय दे रही थी, भरे हुए गोल-गोल गाल, उसके संयमका परिचय दे रहे थे और पतले-पतले ओठ तथा सकुचित मुख गह्वर उसकी कान्तिकी शोभा बढ़ा रहे थे। कैदका कष्ट भोगनेपर भी उसके शरीरसे एक प्रकारकी कान्ति फूटी पड़ती थी। उसकी ओर इशाराकर स्वार्थाने कहा—"यही मेरा प्रबल प्रतिद्वन्दी है। इसीकी बातोंमें आनेसे धनपतिरामका सर्वस्व स्वाहा हो गया। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, कि इसके फेरमें पडनेवालोंकी बडी ही दुर्दशा होती है। मैं तुम्हें यही दिखानेको लायी हूँ, कि यदि मेरी सहायतासे तुम स्वतन्त्र हो जाओ, तो कभी इस दुराचारीके फेरमें न पडना। यह तुम्हें स्वर्गका लोभ दिखाकर, मुक्ति-पथ उन्मुक्त रहनेकी बात कहकर, दूसरोंको सहायता देना तुम्हारा कर्त्तव्य और धर्म्म बताकर तथा यह उपदेश देकर, कि अपना जीवन तो क्षण भंगुर है, इसके लिये चिन्ता क्या, दूसरोंका कष्ट दूर करना ही लक्ष्य है, तुम्हारी धन-सम्पत्ति, यश गौरव, रूप-बल, सब नष्ट करा देगा। यदि संसारमें यह न होता, यदि संसार मेरे ही उपदेशसे कार्य करता, यदि लोग इसके कहनेमें न आते तो ससारमें दरिद्रताका नाम न रहता, दीनता शब्द न

सुन पड़ता और किसीको दूसरेके आगे हाथ पसारनेका न तो साहस ही होता और वह नौवत ही आती।"

स्वार्थी इतनी बातें सुना गयी, परन्तु वह कुछ भी न बोला। पहले जैसा ही गम्भीर परन्तु प्रसन्नवदन बनाये बैठा रहा। उसकी यह मुद्रा देखकर मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ। मैं मन ही मन सोचने लगा, यह कैसा मनुष्य है, जिसे अपनी निन्दा सुनकर भी कुछ कष्ट नहीं होता। मैं विस्मित दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगा। अपनी ओर देखते देखकर उसने एक बार केवल मुस्कुराकर अपना मुँह फेर लिया। अब मैंने स्वार्थीसे पूछा—"अच्छा स्वार्थी! इनका नाम क्या है?"

स्वार्थीने नाक-भौं सिकोड़कर उसकी ओर घृणित दृष्टिसे देखते हुए कहा—"परोपकारसिंह!"

नाम बड़ा सुन्दर मालूम हुआ। मैं मन ही मन सोचने लगा, ऐसे मनुष्य भी हैं, जो कारागारमें कष्ट भोगनेपर भी प्रसन्न रहते हैं।

स्वार्थीने यहाँ लाकर अच्छा काम न किया। कभी कभी चाल ठीक न पड़नेसे, अथवा अतिकी मात्रामें कोई कार्य हो जानेसे हितकी जगह अहित हो जाता है। ठीक यही अवस्था यहाँ आकर हो गयी। परोपकारसिंहके रद्द रूप तथा शान्त-मुद्रा और उसके सम्बन्धमें प्रयोग किये हुए स्वार्थीके विशेषणोंने मुझपर कुछ दूसरा ही प्रभाव जमाया और कहाँ तो वह मुझे अपने फेरमें फँसाना चाहती थी, कहाँ उसकी यह चाल, हितकी

जगह अहित कर गयी। अब इसके पहले जितनी बातें परो
कारसिंहकी बुराई करनेके लिये वह मुझे समझा गयी थी—उ
पर तथा उसके फेर, वाकचातुरी और प्रलोभनोंकी ओर मेरा म
कुछ झुक भी चला था, ठीक उसी समय—उसी दिन मनहितपे
संधि क्षणमें, इस परोपकारसिंहकी केवल मान भङ्गी देखक
ही, मेरा मनोभाव ठीक उसी तरह बदल गया जिस तरह तप
देनेसे सोनेका रङ्ग बदल जाता है।

वास्तवमें किस समय, किस भावसे, किस रूपमें ईश्वर
किसके द्वारा क्या कराया चाहता है, उसका समझना मानव-
बुद्धिके लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। कहाँ तो
अभिलाषसिंह डाकूका फँदखाना, स्वार्था जैसी, प्रलोभनमें डालने-
वाली और सब्ज बाग दिखाकर प्रलुब्ध करनेवाली सङ्गिनी,
उसका लच्छेदार बातें सुनाना तथा अकाट्य प्रमाण दिखाना—
कहाँ पार्थिव संसारकी सुख-सम्पदाकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित
होना और कहाँ परोपकारसिंहपर दृष्टि पड़ते ही स्वार्थाका
इतनी देरका परिश्रम वृथा हो जानेके साथही साथ मेरा भी
भाव परिवर्तन होकर सभी बातोंका उल्टा दिखायी देना—यह
उस जगदाधारकी लीला नहीं थी तो और क्या थी!

सच कहता हूँ, वह दृष्टि बड़ी ही मर्मभेदी थी। मानों उसने
मेरी आँखोंसे कोई घना परदा हटा दिया, [illegible]
मेरे हृदयका कालिमामय जाल दूर कर दिया और स्वार्थाकी
बातोंसे प्रलोभनका जो घोर अन्धकार मेरे हृदय पटपर

रहा था, उसे केवल परोपकारसिंहके मुख-दर्शनने ही दूर कर दिया। मैंने बडी श्रद्धासे उसकी ओर देखा।

इसी समय स्वार्थाने कहा—"अब यहाँ ठहरनेकी आवश्यकता नहीं है। अधिक समयतक इसकी मर्म्मभेदी दृष्टि तुम जैसे कोमल-हृदयके मनुष्यपर पडनेसे ही, बुरा फल होगा। चलो, यहाँसे शीघ्र चलो।"

मैंने कहा—"जरा ठहरो, एक बार इस मनुष्यसे कुछ बातें कर लेने दो।"

अब तो स्वार्था बिगड़ उठी। बोली—"खबरदार! ऐसी बात मुँहपर न लाना! मैं तो तुम्हें इसीलिये यहाँ लायी थी, कि इसके दुराचारोंका बना और दिखाकर तुम्हें सावधान कर दूँ।"

मैं मन ही मन उसकी बात सुनकर हँस पडा। हँसता हुआ ही बोला—"क्यों स्वार्था! सच बताना, तूने इसे क्यों कैद कर रखा है?"

स्वार्था मेरी बात सुन, कुछ अकचकाकर बोली—"क्यों कैद कर रखा है? लोग तोतेको क्यों पींजडेमें कैद कर रखते हैं? उसकी मीठी बोली सुनकर अपने कानोंकी तृप्तिरूपी स्वार्थ-साधनके लिये! शत्रुको लोग क्यों कैद करते हैं?—अपने स्वार्थसाधनमें बाधा न पडे, इसीलिये। तुम आज क्यों बन्दी हो? अभिलाषसिंहके कार्यमें बाधा देकर उसके स्वार्थ-साधन-पथके कण्टक न बनो—इसीलिये। आज तुम उसके पथके बाधक न रहो, तो छोड दिये जाओगे। उसी तरह आज परोपकारसिंह

भी वाधा न देनेकी प्रतिज्ञाकर, मेरे दलमें आ मिले, वह भी छोड दिया जायगा।"

स्वार्थाने परोपकारसिंहके सम्बन्धकी यह अन्तिम बात जरा जोरसे कही, जिससे वह सुन ले। उसने सुना भी, परन्तु सुन कर जोरसे हँस पडा। मैं मन ही मन सोचने लगा—"आग और जलकी मैत्री कैसी? सुख और दुखका सौहार्द कैसा? परोपकार और स्वार्थकी दोस्ती किस तरह हो सकती है? मनही मन इतना सोचकर, मैंने स्वार्थासे कहा—"अच्छा स्वार्था! इसने तुम्हारे पथमें क्या वाधा डाली?"

स्वार्थाने कहा—"इसका मेरा कार्य क्षेत्र बिल्कुल ही विपरीत—ठीक आग पानी जैसा है।"

मैंने तीव्र दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कहा—"अच्छा, तुम दोनोंमें अच्छा कौन है?"

सुनते ही स्वार्था बोली—"मैं, जिसके द्वारा संसारमें धन-सम्पत्तिका फव्वारा छूटता है, भोग विलासके सभी साधन प्रस्तुत रहते हैं तथा मान सम्मानका फाटक खुला रहता है।"

मैंने कहा—"और यह भी क्यों नहीं कहती, कि जिसके कारण रक्तकी नदियाँ बहा करती हैं, निर्दोष, अत्याचारीसे सताये जाते हैं, स्त्री हत्या, खून, चोरी, डकैती आदि भयानक पाप कर्म हुआ करते हैं और जगत्में शान्ति और सुखके बदले अशान्ति अत्याचार, अन्याय तथा आत्म विस्मृति रूपी घनघोर अन्धकार फैला रहता है।"

मेरी बात सुनकर स्वार्था तिल-मिला उठी। बोली—"ऐं! ऐं!! यह क्या कहते हो? यह क्या कहते हो? वाह, जीवानन्द जी वाह! "भैंसके आगे बीन बाजे, भैंस पड़ी पगुराय!" इतना कह गयी, इतना समझा गयी, इतना सब दिखा लायी—उसका क्या यही परिणाम हुआ—वह सब क्या अरण्य-रोदन हो गया?"

मैंने कहा—"तुम जो चाहो समझ लो। मैं तो ऐसा ही समझता हूं।"

स्वार्था झुंझलाकर बोली—"मनुष्य लाख चेष्टा करे पर ललाटकी लिखनको क्या कोई मेट सकता है? तुम्हारे भाग्यमें सदा दु:ख भोगना, सदा पराधीनता करना, सदा अपने जीवनको संकटमें डाले रहना बदा है, तुम कैसे मेरी बातें मानोगे?"

मैंने कहा—"सच कहती हो, स्वार्था! विधिके विधानको कोई मेट नहीं सकता।"

स्वार्था बोली—"तथास्तु, चलो तुम्हें कैदखानेमें पहुंचा दूं। रातभर दोनों पलड़ा तौलना—फिर जो जँचे उसे ही अङ्गीकार करना।"

मैंने कहा—"तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य्य है।"

अब हम दोनों शीघ्रतासे उसी ओर बढे। एक बार इच्छा हुई कि इसे दे मारूँ और परोपकारसिंहको छुडाकर बाहर निकल चलूँ, पर प्रतिज्ञा कर चुका था। इसलिये कुछ कर न सकता था।

हम लोग अभी कुछ ही दूर आगे बढ़े थे कि एक स्थानपर कुछ

अन्धकार पडता था। एकाएक किसीने पीछेसे जोरसे स्वार्थाके केश खीचकर उसे भूतलशायिनी कर दिया। वह चिल्ला न सके, इसलिये उसने तुरन्त ही उसका मुँह बन्द कर दिया। इसके बाद, उसने उसके मुँहमें वस्त्र ठूंसकर मुझसे कहा—"मेरे साथ आओ।"

हम दोनों स्वार्थाको भी उसी अवस्थामें अपने साथ लिये हुए अब उसी कोठरीकी ओर चले, जिसमें परोपकारसिंह कैद था। वहाँ जाकर उस मनुष्यने स्वार्थाके वस्त्रोंमेंसे चाभी निकालकर उस कमरेका दरवाजा खोला, जिसमें परोपकारसिंह कैद था और इसके बाद, उसी कमरेमें स्वार्थाको डाल, हम दोनोको साथ लिये तेजीसे बाहर निकल आया। जिस समय हम बाहर निकले उस समय निशादेवी सूर्य्यदेवके भयसे भाग जानेकी तय्यारियाँ कर रही थीं।

बाहर निकलकर हम दोनोंको यह जाननेकी इच्छा हुई, कि हमें कैदसे छुडानेवाला कौन है, क्योंकि वह मनुष्य अबतक नकाबसे अपना चेहरा छिपाये हुए था। अत हम दोनोंने बड़ी नम्रतासे पूछा—"हमारे उपकारी बन्धु! अब तो अपना परिचय दीजिये!"

उसने बड़े ही विनीत शब्दोंमें कहा—"आप दोनोंमें एक आयुस प्रवर जीवानन्दजी और दूसरे संसारको शान्ति मार्ग दिखानेवाले परोपकारसिंहजी हैं। आप दोनोंसे मैं अपना परिचय कबतक छिपा सकता हूँ। परन्तु असमयका फल

नहीं होता। कुछ देर ठहर जाइये, समय आनेपर सब बातें आप ही मालूम हो जायेंगी।"

आवाज कुछ पहचानी सी मालूम हुई। परन्तु दुःखपर दुःख पड़नेके कारण स्मृति शक्तिहीन हो गयी थी, इसीलिये पहचान न सका। मैंने कहा—"तथास्तु।"

वह बोला—"केवल तथास्तु कहनेसे ही काम न चलेगा यह बताइये, कि क्या आप लोग मुझपर विश्वास करेंगे?"

इस बार तो यह आवाज सुनकर मैं चौंक उठा। इच्छा हुई नकाब उलट दूं, पर मनमें कुछ संकोच हुआ। इसीलिये नकाब न उलटकर मैंने कहा-"हाँ सन्तोषसिंह! तुमपर क्यों न विश्वास करूंगा?"

वास्तवमें वह नकाबधारी सन्तोषसिंह ही था। उसने इस बार अपने हाथोंसे नकाब उलटकर कहा—"मैं अभी कुछ देरतक अपनेको कारणवश छिपाना चाहता था, परन्तु जब आपने पहचान ही लिया, तब क्या किया जाये, परिचय देना ही पड़ा।"

मैं—परन्तु तुम यहाँ इस समय कैसे आ पहुंचे?

सन्तोष-जब बहुत रात बीत गयी और न तो आप ही लौट कर आये न सयमसिंह ही, तब मैं अत्यन्त चिन्तित हो उठा। अतः अन्य मनुष्योंपर गृह-रक्षाका भार देकर मैं वहाँसे चल पड़ा। तबसे सभी स्थानोंमें आपको ढूँढता हुआ घूम रहा हूँ। अभी लौटकर घर भी न गया। मालूम नहीं, कि सयमसिंहजीकी क्या अवस्था है। मायापुरीकी ऐसी कोई गली नहीं, जिसका मैंने

फेरा न लगाया हो, परन्तु कहीं भी आपका पता न लगा। अत में अत्यन्त चिन्तित अवस्थामें उस जगह खड़ा होकर कुछ सोच रहा था, जिस जगह आप एक स्त्रीके साथ गये थे और वह आपको एक टूटे फूटे मकानमें कुछ दिखा रही थी। एकाएक आपपर मेरी दृष्टि जा पड़ी। बस, उसी समयसे मैं आपके साथ हूँ और ईश्वरकी कृपासे आपकी रक्षा करनेमें समर्थ हुआ हूँ।

मैंने सन्तोपसिंहको धन्यवाद देते हुए कहा—"वास्वमें आज तुम्हारी ही कृपासे मैं कारागारसे छूटा, परन्तु क्या यहाँसे खाली हाथ ही लौट चलोगे ?"

सन्तोपसिंहने कहा—"इच्छा तो ऐसी नहीं है पर सयमसिंहके लिये मन चिन्तित है। न जाने वे अभी लौटकर आये या नहीं ? किसी विपत्तिमें तो न जा फँसे।"

मैंने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है। पहले उनका ही पता लगाना चाहिये। (परोकारसिंहकी ओर देखकर) कहिये, आपकी क्या इच्छा है ?"

परोपकारसिंहने कहा—"अभीतक आप लोगोंका कोई परिचय मुझे नहीं मिला। तथापि अपनी इच्छाके सम्बन्धमें इतना कह देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, कि जबसे होश सम्हाला है, तबसे आपद्ग्रस्तोंकी सहायता करनेकी ही मेरी इच्छा रही है और अब भी वही है। इसीलिये मैं इन डाकुओंका शत्रु हो रहा हूँ।"

मैं—आप कहाँ जायँगे ?

परो०—अपने निवास स्थानकी ओर ही जानेकी इच्छा है यदि मेरे द्वारा आप लोगोंका कोई सदुद्देश्य सिद्ध हो सके, त आपके साथ चलनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

मैंने कहा—"आपसे विशेष परिचय न होनेपर भी आ सज्जन ही मालूम होते हैं। हम लोग इन डाकुओंके उपद्रवसे इस मायापुरीको मुक्त करनेकी इच्छासे ही यहाँ आये हैं। मे साथी पास ही एक मकानमें हैं—उनमें ही एक संयमसिंह हैं— आप मेरे साथ यदि चलें, तो मैं समझता हूँ, कि मेरे मि संयमसिंह बड़े ही प्रसन्न होंगे।"

परो—ऐसी आशा न होनेपर भी मैं चलनेके लिये तय्या हूं, चलिये।

इसके बाद हम लोग तेजीसे लपकते हुए, अपने निवास-स्थानकी ओर चले और ठीक उसी समय वहाँ पहुँच गये, जिस समय उषादेवी अपना लाल झण्डा दिखाकर सूर्यदेवके आगमनकी सूचना दे रही थी।



चौदहवाँ परिच्छेद।



संयमसिंहकी आत्मकथा।

मैं अधिक देरतक न सोया था, कि एकाएक फिर कई मनुष्योंकी प्रबल चीत्कार ध्वनि मेरे कानोंमें आ पडी। समझ न सका, कि मामला क्या है। घबडाकर उठ खडा हुआ और दौडता हुआ, उसी कोठरीकी ओर गया, जिसमें कामरूपसिंह कैद था। परन्तु यह क्या ? कोठरीका दरवाजा खुला पडा था, पहरेदार सिपाहीकी कटी हुई गर्दन, क्षीण आलोकमें और भी भयानक दिखायी पडती थी, तथा उसका धड़ दूसरी ओर अलग खूनसे लथपथ पड़ा था। थानेके दारोगा और कितने ही सिपाही एकत्र हो चिल्ला चिल्लाकर एक दूसरेसे कुछ पूछ रहे थे। कामरूपसिंहका कहीं पता न था।

यह अवस्था देखकर, उसी स्थानपर टँगी हुई घडीकी ओर मेरी निगाह जा पडी। अभी पाँच बजनेमें कुछ मिनिट बाकी ही थे। मैंने अनुमान किया, कि लगभग दो ढाई घण्टे सोया, इसी बीचमें यह अघटित घटना घट गयी। परन्तु कैसे घटी इसका कुछ थाह पता न लगता था।

थानेके दारोगासे पूछनेपर मालूम हुआ, कि सोये रहनेके कारण उन्हें इस घटनाकी कोई खबर नहीं है। मनही मन सोचने लगा—एक मनुष्यसे ही पता लग सकता है—सदर फा०

पहरेदार ही बता सकता है। पूछनेपर मालूम हुआ, कि कर्म्म-सिंहका पहरा था। मेरे आज्ञानुसार उसे कई हाँकें दी गयीं, परन्तु उसका पता नहीं लगा। अपनी असावधानतापर मैं मन ही मन खिजला उठा। यदि सदर-फाटकपर अधिक पहरेका प्रबन्ध कर दिया होता तो हाथमें आया हुआ यह जबर्दस्त शिकार एकाएक निकल न जाता। "पुनि पछिताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गयी खेत!" मैं एक सिपाहीको साथ ले, पहले उस सदर फाटकके पहरेदारकी खोजमें ही चला। ईश्वरकी दयासे अधिक परिश्रम न करना पड़ा। हाथ पैर बँधे और मुँहमें कपड़ा ठूँसा हुआ वह पहरेदार, थानेके पीछेकी ओर पड़ा मिला। उसकी संगीन लगी बन्दूक भी उसी स्थानपर एक ओर पड़ी थी।

उसमें हाथ-पैर हिलानेकी भी शक्ति न थी। साथके सिपाहीने उसे देखते ही दौड़कर उसके मुँहसे कपड़ा निकाला और हाथ पैर खोल दिये। इतनी देरतक उस अवस्थामें रहनेके कारण उसका शरीर अवसन्न हो रहा था। मुँह धो देनेके थोड़ी देर बाद उसमें बोलनेकी शक्ति आयी। उसने जो विवरण बताया उसे सुनकर इन दस्युओंकी चतुरता, कपटता और भयकरतापूर्ण चालें, अच्छी तरह समझमें आ गयीं। उसने कहा—"रातके लगभग २॥ बजे होंगे—उस समय राज-पथ जन-शून्य हो रहा था। मैं सदर-फाटकपर ही घूम घूमकर पहरा दे रहा था कि इसी समय एक स्त्री जोरसे भागती हुई आयी और इस भावसे थानेके सामने मेरे पास ही गिर पड़ी, मानों

ठोकर खाकर गिर गयी हो। उसके पीछे पीछे ही एक बलवान मनुष्य दौड़ता हुआ आया, पर मेरे पास उसे पड़ी देख और मुझे उसकी रक्षाके लिये अग्रसर होता देखकर वह भाग गया। मैंने दौड़कर उस सुन्दरीको उठाया। सच कहता हू, संयमसिंहजी! ऐसी सलोनी सुन्दरी मैंने आजतक न देखी थी। और ."

न जाने वह उस सुन्दरीके सौन्दर्यका और भी कितना वर्णन करता, परन्तु मैंने उसे रोक दिया। उसकी बातें, उसकी वर्णन-छटा और उस सुन्दरीके विशेषणोंको सुनकर ही मुझे मालूम हो गया, कि वह रतिके सिवा दूसरी नहीं थी। अस्तु, उसका वर्णन समाप्तकर उसने कहा—"मैंने हाथका सहारा देकर उसे उठाया। वह स्त्री इस समय अत्यन्त व्याकुल सी दिखायी दी। मैं उसके इस तरह भागनेका कारण पूछने लगा। वह बोली—'वह दुराचारी, जो भाग गया है, मेरा सतीत्व-हरण करनेकी अनेक दिनोंसे चेष्टा कर रहा था। आज मैं एक जगह न्योतेमें गयी थी, अभी थोड़ी देर हुई, कि वहाँसे लौटकर अपनी एक संगिनीके साथ घरकी ओर जा ही रही थी, कि एकाएक रास्तेमें वह दुराचारी दिखायी दे गया। उसे देखते ही मेरे प्राण सूख गये। कहाँ वह सबल पुरुष—कहाँ मैं अबला नारी। वह मुझे देखते ही मेरी ओर झपटा। मेरे पास अब भागनेके सिवा और क्या उपाय था? मैं भागी और वह भी मेरे पीछे दौड़ा। अन्तमें भागती हुई यहाँ आकर मैं गिर पड़ी।' उसने ऐसे हाव भाव और कटाक्षसे ये बातें कहीं कि उसपर अविश्वास करनेकी शक्ति मुझमें न रही। अन्तमें

वह बोली—'मेरा कण्ठ सूख रहा है, किसी तरह थोड़ा पानी पिला देते, तो बड़ी दया होती।' उसका अनुरोध टाल न सका। सदर फाटककी रक्षाका भार उसे ही सौंप, बगलकी कोठरीसे पानी लाने गया। मैंने पानी लाकर उसे दिया। भरपूर जल पी लेने बाद वह बोली—'यदि दयाकर मुझे किसीके साथ घर पहुंचवा देते तो बहुत अच्छा होता।' मैंने कहा—'यहाँ इस समय कोई उपस्थित नहीं, है, किसे तुम्हारे साथ भेजूँ?' उसने बड़ी नम्रतासे कहा—'वह सामने ही तो मेरा मकान है—वहाँसे यह सदर-फाटक भी दिखायी देता है। यह थाना ठहरा, यहाँ कौनसी सम्पत्ति पड़ी है, जो कोई ले जायगा? मैं आजन्म आपकी कृतज्ञ रहूंगी। समय पड़नेपर ही कोई किसीसे सहायता माँगता है। क्या एक अबलाकी सहायता करना आपका कर्त्तव्य नहीं है?' मैंने कहा—'परन्तु अपने मालिककी आज्ञाका पालन करना भी मेरा कर्त्तव्य है। मुझे यहाँसे हटनेकी आज्ञा नहीं है।'

हम दोनों इसी तरह बातें कर रहे थे, कि एकाएक पीछेसे किसीने मेरा गला जोरसे धर दबाया। साथ ही इतना स्मरण है, कि वह स्त्री उसी समय भाग खड़ी हुई। मैं चेष्टा करनेपर भी, गला दबा रहनेके कारण, चिल्ला न सका। इसके बाद एक मनुष्य वहाँ और भी आ पहुँचा। उन दोनोंने मुझे गिरा, जबर्दस्ती मेरे मुँहमें वस्त्र ठूँस, हाथ पैर बाँध, पीछेकी ओर डाल दिया। इसके बाद क्या हुआ, कुछ खबर नहीं।"

उसकी बातोंसे इतना समझमें अवश्य ही आ गया, कि वह

रमणी रति तथा उसके साथी कामरूपसिंहके सहचर थे और वे ही उस पहरेदारकी हत्याकर दस्यु सरदार कामरूपसिंहको छुड़ा ले गये। यह सब तो जो होना था, सो हुआ ही, परन्तु इस समय रतिकी चालोंपर मुझे वडा आश्चर्य और दुःख हुआ। क्या विधाताने स्त्रियोंको इन छल-कपट तथा अत्याचारोंके लिये ही सिरजा है? जो सृष्टिकी वृद्धिमें सहायता देनेवाली, मातृ-स्वरूपिणी, जगत पूजनीया बननेका सौभाग्य और दावा रखती हैं, उन्हें ही इस मायापुरीमें इस तरह पाप कर्म्मोंका आश्रय लेते देखकर मनमें वडा दुःख, शोक और परिताप हुआ। ऐसा क्यों होता है? गृहस्थीमें रहकर जो रमणियाँ समस्त परिवार तथा बन्धु-परिजनोंपर शान्ति जल सिंचन किया करती हैं, वे ही इस मायापुरीमें ऐसी क्यों हो रही हैं? क्या यह संगतिका फल नहीं है?

हो भी सकता है। जिस तरह एक चन्दनका वृक्ष अनेकानेक काष्ठ वृक्षोंको सुगन्धित कर देता है, जिस तरह एक सच्चरित्र साधु अनेक कुपथगामियोंको अपनी प्रबल प्रतिभासे सुपथपर ला सकता है और जिस तरह हलाहल विषका एक टुकड़ा अनेक जीवोंका प्राण हरण करनेमें समर्थ होता है, उसी तरह गृहस्थोंके आचरण-व्यवहार, शान्त तथा कर्त्तव्यपूर्ण वायुमण्डल और सुधी परिजनोंकी संगतिमें पड़कर सुन्दरियोंका जिस तरह अन्नपूर्णा बन जाना सम्भव है, उसी तरह इस मायापुरीके पापाचारी-दस्यु ओंके दुराचारकी चपेटमें पड़कर, उनका लम्पट, दुश्चरित्रा और

छलनामयी बन जाना भी कौनसी आश्चर्यकी बात है? सुन्दरता बाह्य दर्शनीय पदार्थ है; परन्तु यह सदा सम्भव नहीं, कि उस सौन्दर्यके भीतर भी वैसा ही विचार-सौन्दर्य, गुण-सौन्दर्य और कार्य-सौन्दर्य दिखायी दे।"

"मन मलीन तन सुन्दर कैसे, विष-रस भरा कनक घट जैसे" वाली चौपाई तो इस रतिके सम्बन्धमें अक्षरश. सत्य दिखाई देती थी। साथ ही वह बड़ी चतुरा भी थी, अपने चातुर्य और सौन्दर्यको उलझनमें डालकर उसने कितने घरोंका सर्वनाश किया होगा, यह सोचकर ही हृदय काँप उठा। मन ही मन स्थिर किया, पहले इसीको वशमें लाना होगा।

इसके बाद मैंने थानेके दारोगाको यथासाध्य सामयिक उपदेश देकर घरकी ओर प्रस्थान किया।

घर आनेपर मालूम हुआ, कि जीवानन्द फिर गायब हो गये हैं। बँधी बात है—विपत्ति कभी अकेली नहीं आती! इधर इतने परिश्रमके बाद कामरूपसिंह गिरफ्तार हुआ। वह आप तो भाग ही गया, साथमें एक सिपाहीकी जान भी लेता गया। घर आया, तो जीवानन्दका पता नहीं। बड़ी चिन्तामें जान पड़ गयी। पहरेदारोंसे पूछा, तो उन्होंने कहा, कि जीवानन्द आपकी खोजमें ही गये हैं, और उनके अधिक समयतक न आनेके कारण, सन्तोषसिंह भी उनकी खोजमें गये हैं। सन्तोषसिंह मायापुरीके रहस्योंसे बिल्कुल ही अपरिचित थे। अत. उनके लिये और भी चिन्ता आ पड़ी।

कैसी विचित्र बात है ! जितना ही मनुष्य दु:खोंसे छुटकारा पानेको प्रबल चेष्टा करता है, उतना ही दु खके वास्तविक रूपकी अज्ञानताके कारण उसमें जकड़ता जाता है। हमलोग दु:खोंसे छुटकारा पाना चाहते थे, इसीलिये मायापुरीको दस्यु-शून्य करनेको उद्यत हुए थे, परन्तु वास्तवमें अपने ही ऊपर विपत्तिका पहाड़ ढहाते जाते थे। कुछ भी हो, जीवानन्दके गायब होनेकी बात सुनकर मैं फिर शान्त न रह सका। चटपट नित्य कृत्यसे निश्चिन्त हो, कुछ भोजनकर तेजीसे बाहर निकल पड़ा।

बहुत देरतक इधर-उधर पता लगाता रहा। समूचा दिवस खोज ढूँढमें ही बीता, सन्ध्या होनेका समय आ गया, परन्तु कुछ भी पता न लगा। डाकुओंके जितने निवास मालूम थे, उन सबमें खोज आया, परन्तु कहीं कुछ भी नहीं मिला। रात्रिके अन्धकारमें अब किधर टक्कर मारता फिरूँ, कुछ भी समझ न सका। गुप्त महल, मानिनीका निवास स्थान तथा कामरूपका अत्यचार-गृह सभी घोर अन्धकारमय और जनशून्य मालूम होते थे। इन स्थानोंमें कहीं भी पता न लगनेके कारण कुछ हताश होकर, मैं एक तालाबके किनारे विश्राम करनेकी इच्छासे बैठकर उपाय सोचने लगा। इस समय रात्रिके एक बज चुके थे।

अभी मुझे बैठे कुछ ही क्षणकी देर हुई थी, कि दो मनुष्य बड़ी ही दीनतासे भिक्षा मांगते हुए उस स्थानपर आ पहुचे। दोनों ही अत्यन्त दुर्बल थे और रह रहकर ऐसी भाव-भङ्गी दिखा रहे थे, कि मानों कई दिवसोंसे उनके पेटमें अन्नका दाना न गया हो।

इनमेंसे एकने आते ही बड़ी दीनतासे कहा—"मैं आज कई दिनोंसे भूखा हूँ। कृपाकर कुछ भोजनका प्रबन्ध कर दीजिये।"

दूसरा मुँहसे कुछ बोला तो नहीं, परन्तु उसने एक बार मुझे हाथ जोड़, फिर लम्बी जीभ निकालकर, अपने हाथसे मुँहकी ओर इशारा किया। तात्पर्य यह, कि उसके मुँहमें भी कुछ अन्न पड़नेका प्रबन्ध होना चाहिये।

मैंने एक बार टटोलनेवाली दृष्टिसे उन्हें सिरसे पैरतक, इस विचारसे देखा, कि कहीं ये भी दस्युदलके गुप्तचर तो नहीं हैं। क्योंकि मैं भी एक बार भीख माँगनेके बहाने ही मानिनीके मकानके पास दस्यु दलपर वार कर चुका था। दूसरे, अर्द्धरात्रि व्यतीत हो चली थी। भीख माँगनेका यह कौनसा समय था? परन्तु कुछ पता न लगा। इतनेमें ही एकने आगे बढ़कर मेरे हाथमें एक सुन्दर गुलाबका फूल देते हुए कहा—"यह यहाँके महाकाल महादेवका आशीर्वाद स्वरूप है, इसे ग्रहण कीजिये। आपका मनोरथ सिद्ध होगा।"

मैंने उसके हाथसे फूल ले लिया। बड़ा ही सुन्दर गुलाबका फूल था। सुगन्ध गुलाबसी थी, परन्तु बहुत कड़ी थी—मुझे सन्देह होने लगा, कि इसमें क्लोरोफार्म छिड़का हुआ है। मैं मन ही मन सोचने लगा, इस मायापुरीमें ईश्वरका नाम लेकर ठगनेवालोंकी भी कमी नहीं है। अतः मैंने फूल सावधानीसे एक ओर रखकर, जेबसे चार पैसे निकालकर उसे देते हुए कहा—"यह लो, आज

कुछ खा लो। परन्तु क्लोरोफार्म छिडककर किसीको फूल देनेकी फिर चेष्टा न करना।"

उसने पैसे ले लिये; परन्तु अपना ऐसा भाव दिखाया, मानों वह मेरी बात ही न समझ सका। बोला—"आप यह क्या कह रहे हैं?"

मैंने कहा—"ईश्वरका नाम लेकर किसीको धोखा देना अच्छा नहीं।"

उसने फिर अपना चकित भाव दिखाते हुए कहा—"ईश्वर आपका मनोरथ पूर्ण करें, परन्तु आपने क्या कहा, सो मेरी समझमें न आया।"

इस बार मुझे अपने विश्वासपर भी अविश्वास होने लगा। इच्छा हुई, कि फूल उठाकर सूँघूं, परन्तु यदि उसमें क्लोरोफार्म है, तो अवश्य बेहोश हो जाऊँगा। यह सोचकर, मैंने फूलकी ओर एक बार देखकर ही उसे छोड दिया। इसी समय उन दोनोंमें आपसमें कुछ इशारा हो गया। बस, इसने मेरे सन्देहको विश्वास में परिणत कर दिया। उन दोनोंकी भी दृढ धारणा हो गयी, कि मुझे सन्देह हो गया है। इसके क्षणभर बाद ही दूसरेने आगे बढकर मुझसे पैसा माँगा। इस बार मैंने इन्कार कर दिया।

मुझे इन्कार करते देखकर वह बोला—"उसने महाकालका चढा पुष्प आपको दिया, इसीलिये आपने उसे चार पैसे दिये। परन्तु मेरे पास तो कुछ है नहीं—यह देखिये (झोलीमें हाथ डालकर) एक पञ्चमुखी रुद्राक्ष इस बार बदरिकाश्रमसे लाया

हूँ, यही है, सो ले लीजिये। इसको पास रखनेपर आप सब विपत्तिसे परे रहेंगे। कभी किसी विपत्तिमें न पड़ेंगे।"

इतना कहकर वह अपनी झोली टटोलने लगा। और उसी तरह उस तालाबके किनारे बैठा रहा। दूसरेका हाथ भी इस समय झोलीमें ही था। मुझे उनकी इस कार्रवाई और बातचीतसे और भी सन्देह हुआ। मैं समझ गया, कि ये अब मुझपर आक्रमण करेंगे और मेरा ध्यान बँटाकर पिस्तौल निकालनेके लिये ही ये चालें हो रही हैं। इतना ध्यानमें आते ही, मैंने झपटकर एकको पकड़ा लिया। क्षणभर बाद ही मैंने उसे जमीनपर दे मारा। इतनेमें ही दूसरेने पिस्तौल निकालकर मुझपर आक्रमण किया। परन्तु उसके आक्रमणके पहले ही मेरी पिस्तौलने उसे जमीनपर सुला दिया। इससे निश्चिन्त होकर मैंने अपने नीचे पड़े हुए मनुष्यकी ओर दृष्टि फेरी ही थी कि इसी समय-"बचाओ, बचाओ, रक्षा करो!" चिल्लाती हुई, एक रमणी उसी स्थानपर आ पहुँची।"

अब मैं फुर्तीसे क्लोरोफार्मसे उस मनुष्यको बेहोशकर, उसकी छातीसे उतर पडा। इस बीच वह रमणी भी मेरे पास आ पहुँची।

मैंने छूटते ही कहा-कोई चिन्ता नहीं, अब न डरो।"

रमणी एकाएक खड़ी हो गयी। बोली-"मेरी रक्षा कीजिये, दुर्दान्त डाकू मेरे पीछे पड़े हैं।"

मैंने कहा—"शान्त हो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। परन्तु कोई डाकू तो दिखायी नहीं देता!"

रमणी अकचकाकर अपनी चारों ओर देखने लगी। वास्तवमें उस समय वहाँ कोई भी दिखाई न देता था। हम दोनोंके पास वे ही दोनों दस्यु पड़े हुए थे।

रमणी घवड़ाई हुई आवाजमें बोली—"किसी तरह मुझे बचाइये। मैं इस मायापुरीके उपद्रवसे अब नहीं रह सकती। इस जीवनसे तो मृत्यु ही अच्छी है।"

मैंने कहा—"घवडाओ नहीं, अधीर होनेसे विपत्ति और भी बढ़ जाती है। सावधान हो जाओ और बताओ, कि तुमपर किसने अत्याचार किया है? मैं यथासाध्य तुम्हारी रक्षाकी चेष्टा करूँगा।"

रमणी बोली—"आपको धन्यवाद है। नहीं जानती, कि आप कौन हैं? तथापि आपकी बातोंसे मालूम होता है, कि आप कोई श्रेष्ठ कुलसे उत्पन्न पुरुष हैं, नहीं तो आजतक इस मायापुरीमें ऐसा आश्वासन मुझे किसीसे नहीं मिला। मैं अपनी दशा क्या बताऊँ? मेरा नाम शान्ति है। एक बार कामरूपसिंहके सहचर मुझे जबर्दस्ती पकड़कर न जाने किस स्थानमें ले गये थे। वहाँ वे मेरा जीवन लेनेके लिये ही तय्यार थे, परन्तु एक परोपकारी सज्जनने, शायद उनका नाम जीवानन्द था, मेरी रक्षा की और मेरा प्राण बचाया। मेरे भ्राता परोपकारसिंह किधर गायब हो गये अथवा डाकुओंने उन्हें मार डाला, या कैद कर रखा है, इसका पता ही नहीं लगता। पिता धर्मसिंह वृद्ध हो गये हैं, उनकी अवस्था दिनोंदिन क्षीणसे क्षीणतर होती चली जाती है

तिसपर डाकुओंके उपद्रवोंकी चिन्ताने उन्हें और भी जर्जर कर डाला है। आज मैं अपने पिताके पास बैठकर इसी सम्बन्धमें बातें कर रही थी, कि एकाएक डाकुओंने आक्रमण किया। मैं किसी तरह प्राण बचाकर भाग आयी, परन्तु पिताकी क्या अवस्था है—सो भगवान ही जानें। हाय! यदि डाकुओंने उनका. .तो मैं फिर किसके अवलम्बसे रहूँगी!"

शान्ति रो पड़ी। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग गयी। लम्बी और रुक-रुककर आनेवाली जोरकी साँसों और हिचकियोंने मानों वर्षाके प्रबल वायुके झकोरोंका रूप धारण किया और आह करते समय निकली हुई दन्त-पंक्ति मानों विद्युत्की छटा दिखाने लगी।

उसकी यह अवस्था देखकर मुझे बड़ा दु.ख हुआ। मैंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"देखो, रोनेसे कोई लाभ नहीं है। मैं अभी तुम्हारे साथ चलता, परन्तु इन दोनों डाकुओंको इसी अवस्थामें छोड जाना भी उचित नहीं मालूम होता। इन्हें कैदखानेमें पहुँचाने बाद मैं तुम्हारे घर चल सकता हूँ।"

शान्ति और भी बिलख-बिलखकर रोती हुई बोली—"नहीं, मैं अब आपको अपने घर चलनेके लिये नहीं कहती। वे दुराचारी अवश्य ही पिताको पकड़ ले गये होंगे और बची-खुची सम्पत्ति उनके हाथोंसे नष्ट हो गयी होगी। अब वहाँ जानेसे कोई लाभ नहीं।"

मैंने कहा—"मान लो, कि तुम्हारा ही कथन सत्य है, परन्तु

इससे घबड़ानेसे ही क्या मिलेगा? तुम्हारे पिताको यदि वे पकड ले गये होंगे, तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि उन्हें छुडा दूँगा। मेरी धारणा है, कि वे उन्हें मारेंगे नहीं। तुम्हारा पता बतानेके लिये उन्हें कुछ कष्ट अवश्य दे सकते हैं। परन्तु दु.ख सुख तो भाई-बहन हैं। जब समयका फेर आता है, तब दु ख सहना ही पडता हैं। यदि दु ख न सहा जाये, तो सुखका आनन्द भी तो नहीं प्राप्त हो सकता। अत तुम्हारा जैसा नाम है, वैसा ही गुण भी धारण करो। यह अवश्य है, कि दस्युओंके कुचक्रमें शान्तिका रहना कठिन नहीं, असम्भव ही है। इसीलिये देखो, परमात्माकी भी कैसी लीला है, उस बार तुम्हें जीवानन्द-ने बचाया, आज मैं तुम्हारी प्राणपणसे रक्षा करनेके लिये तय्यार हू।"

शान्तिने अपने आँचलसे आँसू पोंछते हुए कहा—"परन्तु अब मेरा कहाँ ठिकाना है? मैं अबला किसके आश्रयमें होकर रहूँगी!"

मैंने कहा—"तुम अपनेको अबला न समझो। नारी शब्द बडे महत्वका है। इस नारी-द्वारा ही तो अनेकानेक वीर-शिरो-मणि नर उत्पन्न होते हैं। परन्तु नारीको अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये। बताओ, भारतमें नारीसे कौनसा सुकार्य नहीं हुआ है? और यदि तुम आश्रयके लिये घबडाती हो, तो मेरा घर तय्यार है—मैं सब तरहसे तुम्हारी सहायता करनेके लिये तय्यार हू।"

शान्तिने सिर उठाकर, करुणा-भरी परन्तु कृतज्ञ-दृष्टिसे मेरी ओर देखा। कुछ देरतक देखने बाद, आँखें पोंछकर बोली—"आपका परिचय ?"

अब फेरमें जान पड़ी—परिचय बताऊँ या नहीं ? यदि बता ही दूँगा तो क्या होगा ? सम्भव है, कोई विपत्ति आये। पर दु ख-सुख तो अपने कर्मानुसार होते हैं—यदि दुःख भोगनेका कर्म किया है, तो भोगना ही पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें अपना ठीक-ठीक परिचय एक अपरिचिता सुन्दरीको बता देना भी तो दुष्कर्म हो सकता है ?—ऐसी कितनी ही बातें सोच गया, परन्तु मन न माना। मैंने कहा—"मैं जीवानन्दका मित्र संयमसिंह हूं।"

इस बार रमणी मुस्करायी। विषादकी श्यामघटाकी जगह हँसीकी उज्ज्वल रेखा दिखायी दी। बोली—"आप तथा जीवानन्दजीके सम्बन्धमें मैं बहुत कुछ सुन चुकी हूं। अच्छी बात है, आपका आश्रय ग्रहण करनेके लिये मैं तय्यार हूं, चलिये।"

इसके बाद हम दोनों उठ खड़े हुए। घायल डाकूको हम लोगोंने उसी जगह छोड़ दिया, परन्तु उस बेहोशके हाथमें हथकडी पहनाकर, उसे होशमें ला, साथ लिये हुए सीधे थानेमें गये। उसे थानेमें रखकर, थानेके दारोगाको अच्छी तरह समझा देने बाद, जिस समय हम लोग लौटकर निवास स्थानकी ओर आये, उस समय भी न तो उषादेवीने अपना आगमनसूचक रक्तपताका फहरायी थी, न उसके चोबदार पक्षीगण ही कलरवकी आवाज सुनानेके लिये प्रस्तुत हुए थे, न चक्रवाक ही

अपनी प्रियासे मिलनेके लिये रवाना हुआ था और न मेरे बन्धु ही अबतक लौटकर आये थे।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

जीवानन्दकी आत्मकथा।

परिश्रमके बाद थकावट आती ही है। गर्मी पड़नेपर यदि पसीना निकल ही आया, तो कौनसी आश्चर्य्यकी बात है? हम लोग भी इस समय थक गये थे, अतः दरवाजेपर आकर खड़ा रहना कठिन हो गया। मैंने जोरसे धक्का देकर पुकारा। तुरन्त ही संयमसिंहने आकर देखा और दौड़ते हुए नीचे आकर दरवाजा खोल दिया। उनके पीछे ही एक सुन्दरी रमणी भी थी।

इसके बाद ज्यों ही उस रमणीकी दृष्टि परोपकारसिंहपर पड़ी, त्योंही वह दौड़कर उनसे लिपट गयी। दोनोंकी ही आँखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे। यह दशा देखकर मैं कुछ समझ न सका, कि यह क्या लीला है। कुछ देर बाद, जब वे अलग हुए, उस समय परोपकारसिंहने कहा—"जीवानन्दजी! आपको हम दोनोंका व्यवहार देखकर आश्चर्य्य होगा, परन्तु आश्चर्य्य करनेकी कोई बात नहीं है। यह मेरी बहन "शान्ति" है। बहुत दिन बाद हमलोग आज मिले हैं। डाकुओंने अपने पथका कण्टक हटानेके उद्देश्यसे मुझे कारागारमें डाल रखा था और इसमें सन्देह नहीं, कि इसपर भी कम अत्याचार न हुए होंगे। यह अत्यन्त दुर्बल भी हो रही है।"

भाई-बहनका यह मिलन बड़ा ही मधुर मालूम हुआ। आह!

दोनोंके चेहरोंपर कितनी प्रसन्नता छा रही थी! आनन्दाश्रु इस समय कैसे मालूम होते थे और दोनोंकी दृष्टिसे इस समय कैसी स्वर्गीय आनन्द प्रभा झलक रही थी!

इसी समय संयमसिंहने आगे बढ़कर कहा—"आपका कथन अक्षरशः सत्य है। डाकुओंने इसे भी अपने वशमें करना चाहा था। परन्तु शान्ति क्या कभी पापियोंके साथ रह सकती है? एक बार जीवानन्दने इसका उद्धार किया। कल डाकुओंने फिर आपके मकानमें उपद्रव मचाया था, परन्तु वह भाग आयी। उस समय यह अत्यन्त घबड़ाई हुई थी। इसकी जबानी जो हाल मालूम हुआ, उससे मालूम होता है, कि आपके पिता बड़ी सङ्कटमय अवस्थामें हैं। परन्तु उस समय मैं किसी प्रकार भी उनकी सहायताके लिये न जा सका।"

परोपकारसिंहने कहा—"पिता वृद्ध तथा अशक्त हो गये हैं, इतनेपर भी ये डाकू उन्हें सतानेसे बाज नहीं आते। ठीक ही है, दया और क्षमा दैवी गुण हैं, ये दस्युओंमें कहाँ उत्पन्न हो सकते हैं? परन्तु फिर भी मुझे पूरा विश्वास है, कि उनकी सम्पत्ति ये डाकू भले ही नष्ट कर दें, परन्तु उनपर हाथ नहीं उठा सकते।"

शान्ति बोली—"भय्या! ईश्वर करे तुम्हारी बात ही सत्य हो।"

परोपकारसिंहने कहा—"शान्ति! तुम्हारी बातोंसे मालूम होता है, कि तुम अत्यन्त अधीरा हो रही हो। तुम्हारी प्रकृतिमें यह परिवर्त्तन कैसा? जो विपत्ति सहन करनेकी शक्ति नहीं

रखता, वह क्या विपत्ति-सागरसे कभी उद्धार पा सकता है ? जो तैरना नहीं जानता, वह जलसे किस तरह बाहर निकल सकता है ? यह संसार एक महासागर है, विपत्तियाँ इसकी तरंगें हैं, नाना प्रकारके कष्ट, भिन्न-भिन्न प्रकारके उपद्रव इसके जलचर हैं, ऐसे महासागरको पार करनेका एकमात्र उपाय धर्म्मावलम्बन और परमात्मापर भरोसा करना है। तुम इस तरह अधीर न बनो। जिस तरह रात्रि स्थायी नहीं रह सकती, उसी तरह विपत्ति भी कभी स्थायी नहीं रह सकती।"

शान्तिकी आँखोंसे टपाटप आसुओंकी बूँदें टपक पड़ीं। प्रेमपूर्ण भर्त्सना ऐसी ही होती है। वह बोली—"नहीं भय्या! घबड़ाती नहीं, पर बताओ, तुम्हारा इतने दिनोंसे पता न था, और पिता, एक तो योंही पके पत्ते हो रहे हैं, तिसपर डाकुओंका उपद्रव!"

परोपकारसिंहने प्रेमसे शान्तिका हाथ पकड़कर कहा—"पगली! धर्मात्माका कोई कुछ बिगाड़ सकता है ? पिताकी

हो कुछ जलपानकर, धर्म्मसिंहके मकानकी ओर रवाना हुए। जिस समय हम लोग वहाँ पहुंचे उस समय वृद्ध धर्म्मसिंह एक कमरेमें, तकियेके सहारे बैठे हुए थे। उनके चेहरेसे न किसी प्रकारका हर्ष ही टपकता था, न विषाद ही। बाहर कोई विशेष पहरेका प्रबन्ध भी न था। केवल एक दरबान बैठा था, जिसने शान्ति और परोपकारसिंहको देखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इसके बाद ही हम लोग उस कमरेमें जा पहुंचे, जिसमें धर्म्मसिंह बैठे हुए थे। परोपकारसिंह तथा शान्तिने उनका चरणस्पर्श किया। धर्म्मसिंहने आशीर्वाद देते हुए कहा—"परोपकार! तुम लौट आये? अच्छा, ईश्वरकी बडी दया हुई। किसी प्रकारका कष्ट तो न हुआ?"

परोपकारसिंहने नम्रतापूर्वक कहा—"नहीं, पिताजी! आपने जो शिक्षा दी है, उससे कष्ट भी मुझे सुख ही मालूम होता है।"

धर्म्मसिंहने उसी तरह शान्त भावसे कहा—"हाँ बेटा! दुःख और सुख तो दिन और रातके समान हैं। जिस तरह रात्रिके बाद प्रभात होता है, उसी तरह दुःखके बाद सुख और सुखके बाद दुःख भी होता है। अच्छा, शान्ति तुम्हें कहाँ मिली? और बेटी! तू उस दिवस भाग क्यों गयी? अच्छा, जो हुआ, अच्छा ही हुआ।"

परोपकारसिंहने कहा—"दस्युओंके उपद्रवसे यह घबडाकर भाग गयी थी। इसके बाद (संयमसिंहकी ओर दिखाकर) इनसे राहमें भेंट हुई और ये ही शान्तिको अपने मकानपर ले

गये। मुझे भी (जीवानन्दकी ओर इशाराकर) इनके साथीने ही डाकुओंके कारागारसे छुडाया।"

इसके बाद परोपकारसिंहने सब बातें वृद्ध धर्मसिंहको कह सुनायीं। वृद्धने बड़े धीरज और सन्तोषसे सब सुनकर कहा—"कल रातमें कामरूपसिंहके साथी फिर शान्तिकी खोजमें आये थे, परन्तु इसे न पाकर लौट गये। मुझ दरिद्रके पास है क्या, जो ले जाते? मुझे किसी प्रकारका कष्ट भी उन लोगोंने न दिया।"

परोपकारसिंहने वृद्धसे हमलोगोंका परिचय करा दिया। परिचय जान लेने बाद वृद्धने कहा—"इन दस्युओंने बडा उपद्रव मचा रखा है, इन्हें पकडना आवश्यक भी है। (आकाशकी ओर हाथ उठाकर) सब उसी मायामयकी लीला है। वही जो चाहे कर सकता है।"

इतना कहकर वृद्ध चुप हो गया। अब सयमसिंहने कहा—"आप इसी नगरमें रहते-रहते वृद्ध हो गये। आपका बडा अनुभव है—क्या आप बता सकते हैं, कि इन डाकुओंको किस तरह गिरफ्तार किया जा सकता है?"

वृद्धने कहा—"इस मायापुरीमें रहनेपर भी मैं सदा इसकी मायासे दूर ही रहा हूँ। मुझपर इन षड्रिपुओंने यदि कभी उपद्रव भी मचाया और अत्याचार भी करना चाहा, तो इनका कोई प्रभाव न हुआ। हाँ, अब ये शान्तिपर अत्याचार करनेकी चेष्टामें हैं, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है, कि शान्ति डाकुओंके हाथ कभी

न लगेगी। इसलिये, मैंने कभी इनकी ओर ध्यान ही न दिया। अत. मैं आपको कुछ वता नही सकता।"

धर्म्मसिंहका शान्त स्वभाव, धर्म्मपर द्रढ आस्था और ससार-में रहनेपर भी उससे निस्पृहता, मुझे बहुत पसन्द आयी। मैंने कहा—"आप वास्तवमें अपने नामके अनुसार ही हैं। आज आपका परिचय पाकर हमलोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अब आज्ञा दीजिये।"

वृद्धने परोपकारसिंहको पुकारकर कहा—"इन सज्जनोंके द्वारा ही तुम कारा-मुक्त हुए हो। अत. तुम्हारा कर्त्तव्य है, कि इनकी सहायता करो और शान्ति! तू भी इनकी सहायता कर।"

दोनोंने ही वृद्धकी आज्ञा शिरोधार्य्य की। इसके बाद हमलोग वहाँसे चले आये। परोपकारसिंहने शीघ्र ही मिलनेका वादा किया।

घर आकर भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त होकर, हमलोग अभी बैठे ही थे, कि इसी समय परोपकारसिंह भी वहाँ आ पहुंचे और हमलोगोंने निश्चय किया, कि आज रात्रिके समय अभिलाष-सिंहके मकानमें चलकर, उसे गिरफ्तार करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

दु.खकी घड़ी जल्दी नहीं बीतती, परन्तु सुखका समय अति शीघ्र व्यतीत हो जाता है। बातें ही करते करते संध्या हो गयी और धीरे धीरे रातके नौ बजनेका समय आ पहुँचा।

अब मैंने कमरसे छुरा निकालकर उसे दिखाते हुए कहा "यदि मेरी बातोंका ठीक ठीक जवाब न दोगे,तो यह छु तुम्हारी छातीमें घुसेड दूँगा।"

उसने हाथ जोडकर अपनी सम्मति प्रकट की। अब छुरा तान उसकी छातीपर चढ़ बैठा। अन्धकारमयी रजनी चपलाके समान चमकता हुआ, मेरे हाथका छुरा देखकर व और भी व्याकुल हो उठा। अब मैंने सब तरहसे उसपर अधि कार जमाकर पूछा—"पहले यह बताओ, कि तुम कौन हो।"

वह—मैं अभिलाषसिंहका एक साथी हूँ।

मैंने पूछा—"तुम्हारा नाम?"

वह—तस्करसिंह।

नाम सुनकर मुझे हँसी आयी। नामके अनुसार ही उसके काम भी थे। मैंने कहा—"यह स्त्री कौन है?"

वह—एक गणिका।

मैं—तुमने इसे कहाँ पाया?

वह—यह अन्यत्रकी रहनेवाली है। अभिलाषसिंहकी मन-स्तुष्टिकर इसने प्रभूत अर्थ-अर्जन किया था। अभिलाषसिंहने इसे प्रसन्नकर अभिलाषाकी तृप्तिके बाद इतना धन तो दे दिया, परन्तु जब यह जाने लगी, तब मुझे इसके पीछे लगा दिया और आज्ञा दे दी कि इसकी सब सम्पत्ति छीनकर या तो इसे कैद कर लो, अथवा मार डालो। इसी आज्ञानुसार मैंने अपने कई साथियोंके साथ राहमें इसे जा घेरा। मेरे मनुष्योंके हाथ, इसके

साथी मारे गये और मैं इसे यहाँतक पकड लाया। यहाँ लाकर इसके शरीरके जेवर उतारकर बाहर निकाला ही था, कि उसने पकड लिया।

मैं—तो यह सम्पत्ति क्या तुम अभिलाषसिंहको देने जा रहे थे?

वह—देने जा रहा था, परन्तु (कुछ सकुचाकर) सब उन्हें न दे देता, कुछ अपने लिये भी रख लेता। अब मैंने सब बातें आपको स्पष्ट बता दी हैं। आशा है, कि आप मुझे छोड देंगे।

मैं—अभी नहीं, पहले यह बताओ, कि अभिलाषसिंह कहाँ है?

वह—मालूम नहीं।

मैं—तुम्हें अवश्य मालूम है, बतलाना पडेगा।

वह—(कुछ सोचकर) मैं नहीं बता सकता, मुझे मालूम नहीं है।

अब मैंने फिर छुरा तानकर कहा—"अच्छा यह बताओ, कि माधवी कौन है?"

वह—उनकी बहिन।

मैं—वह इस समय कहाँ है?

वह—मैं नहीं जानता।

मैंने कहा—"तब तुम्हारी छूटनेकी इच्छा नहीं है। जब तुम मेरी बातोंका ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया चाहते, तब तुम्हें

गिरफ्तारकर अवश्य ही अपने अफसरके पास भेज दूँगा और तुम्हें फाँसीकी सजा दी जायगी।"

मेरी भाव-भङ्गी देखकर वह समझ गया, कि मेरी बातें असत्य नहीं हैं। उसने अब बड़े कातर स्वरमें कहा—"आप यदि प्रतिज्ञा करें, कि मुझे छोड़ देंगे, तो मैं बता दूँ।"

मैंने कहा—"हाँ, तुम्हें प्राणदण्ड न होगा।"

वह बोला-"आपने जिस स्थानपर मुझे पकडा है, ठीक उसी स्थानसे, उसी ड्योढ़ीके भीतरसे, एक सीढ़ी ऊपरकी ओर गयी है, अन्धकारके कारण आप सीढ़ीको नहीं देख सकते। वह बाहरसे आलमारी मालूम होती है, परन्तु वास्तवमें वह सीढ़ी है, उसी राहसे ऊपर जाइये—ऊपर तीसरे खण्डमें जानेपर आपको अभिलाषसिंह स्वार्थी तथा अपने अन्य साथियोंसे बातें करते दिखाई देंगे—बस, इससे अधिक मैं कुछ नहीं बता सकता। तीसरे खण्डमें जानेकी राह भी इसी तरह आलमारियोंके भीतरसे है—खूब सावधान!!"

उस मनुष्यको मैंने बाहर खड़े परोपकारसिंह तथा अन्य साथियोंके सुपुर्द किया तथा संयमसिंह और सन्तोषसिंहको साथ लेकर उसी ओर चला, जिधरका रास्ता तस्करसिंहने बताया था। वास्तवमें उसका कथन सत्य था, हमलोग लाख चेष्टा करनेपर भी ऊपर जानेका पथ नहीं पा सकते थे। उसीकी बतायी राहसे हमलोग ऊपर जा पहुँचे। जब हमलोग एकतल्ले-पर पहुँचे, उसी समय हमलोगोंको कुछ मनुष्योंकी बातोंकी

ध्वनि सुन पड़ी और इसके बाद ही, दो मनुष्य एक आलमारीका दरवाजा खोल, बाहर निकल पड़े। हमपर उनकी उसी समय दृष्टि जा पड़ी, परन्तु साथ ही हम तीनोंकी तनी पिस्तौलें देख-कर वे अवाक् और किंकर्त्तव्य-विमूढ हो गये—उनमें बोलनेकी शक्ति न रही और कुछ ही क्षण बाद मेरा इशारा पाकर सन्तोष-सिंहने उनके हाथोंमें हथकड़ी पहना दी।

उन्हें हथकड़ी पहना, क्लोरोफार्म द्वारा बेहोशकर, एक स्थानमें रख, संयमसिंहको उनकी रक्षाका भार दे, मैं सन्तोषसिंहको साथ लेकर ऊपर चढ़ने लगा। बहुत धीरे-धीरे, जिससे पद शब्द न निकल सके—इसी तरह साँस रोककर हमलोग ऊपर जा चढ़े। ऊपर जाते ही वह कमरा दिखाई दिया, जिसका जिक्र तस्करसिंहने की थी। इस समय भी गद्दी तकियेके सहारे एक ओर वस्त्रा-लङ्कारसे अपनेको खूब सुसज्जितकर स्वार्था बैठी हुई थी। उससे कुछ दूरीपर, अभिलाषसिंह बैठा हुआ था और उसके सामने दो मनुष्य और भी बैठे थे। वे आपसमें बातें कर रहे थे।

न जाने किस प्रश्नके उत्तरमें स्वार्था बोली—"हाँ, हाँ, यह तो मैं जानती हूँ, परन्तु तुम्हें मेरी आज्ञा माननी ही पड़ेगी—"सच पूछो, तो मेरी बदौलत ही तुम लोग यह आनन्द भोग रहे हो।"

अभिलाषसिंहने कहा—"तो तुम्हारी आज्ञा माननेसे कौन करता है, परन्तु यह भी तो बताओ, कि जिसने दिवस इतना अत्याचार किया था—"

स्वार्था कुछ गरमाकर बोली—"यदि यह मैं

कच्चा ही चबा जाती। मेरे क्रोधमें पड़कर कौन जीवित रह सकता है ? परन्तु तुम लोग क्या भाँड़ झोंकते हो, जो इतना भी पता नहीं लगा सकते ?"

एक दूसरा बोला—"मैंने तो आज समस्त दिवस चेष्टा की परन्तु कुछ भी पता न लगा। बताओ, अब क्या किया जाये ?"

स्वार्था बोली—"तो अब मैं ही पता लगाने जाऊँ ? उसने मेरे सबसे बड़े शत्रु परोपकारसिंहको मेरे पजेसे छुड़ाया, जीवानन्दको मैंने एक प्रकारसे अपने दलमें मिला लिया था—उसे इतना प्रलोभन दिया था, कि यदि एक रात भी वह हमारे कारागारका कष्ट उठाता, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वह हमारे दलमें आ मिलता, परन्तु उस अभागेने सब गुड़ गोबर कर दिया। मैं जानना चाहती हू, कि वह कौन है। यदि तुम उसका पता न लगा सको, तो मैं स्वयं जाकर उसका पता लगा, अपने हाथसे उसका मस्तक काटकर कलेजा ठण्डा करूँगी।"

सन्तोषसिंहने ही उस दिवस स्वार्थाका मान-भञ्जनकर, उसके शिकारको, उसके पञ्जेसे छुड़ा लिया था। वह स्वार्थाकी अभिमानभरी बातें सुनकर उसे गिरफ्तार करनेके लिये उत्कण्ठित हो रहा था। अत ज्योंही स्वार्थाकी बात समाप्त हुई, त्योंही दोनों हाथोंमें दुनली पिस्तौलें ले, वह एकाएक झपटकर उस कमरेके दरवाजेपर जा खड़ा हुआ और कड़ककर बोला—मैं हूँ, सन्तोष-.. ! तुम्हें नीचा दिखानेवाला, परोपकारसिंहको छुड़ानेवाला तुम्हें कैद करनेवाला। अब बताओ, तुम मुझे क्या करना

चाहती हो ? खबरदार ! यदि जरा भी कोई अपनी जगहसे हिला, तो स्मरण रखना एक भी जीता बचकर न जाने पायगा।"

इतना कहकर उसने मुझे पुकारा। मैं भी पिस्तौल लिये, वहाँ जा पहुँचा। हम दोनोंको इस तरह भरी हुई पिस्तोलें लिये यमदूतके समान, सम्मुख उपस्थित देखकर, पापी दल काँप उठा। प्राणभयसे उनका समस्त साहस, समस्त चातुरी और समस्त दुराचार तुरत गायब हो गया। सन्तोपसिंह उसी तरह पिस्तौल ताने खडा रहा और मैंने आगे बढकर पहले अभिलापसिंह, फिर स्वार्थी और इसके बाद उन दोनों दस्युओंके हाथोंमें हथकडी पहना दी। वे चूँ तक न कर सके। इसके बाद, मैं सीढ़ीपर जा, दोनों बेहोश मनुष्योंके साथ सयमसिंहको साथ लेकर ऊपर चला आया। उसी कोठरीमें जिसमें स्वार्थी मद भरी बातें कर रही थी, वे भी डाल दिये गये। हमलोगोंने बाहरसे ताला बन्द कर दिया। इसके बाद परोपकारसिंह तथा अन्य मनुष्योंको बुलाकर हमलोग, उन सबको पकडकर थानेमें ले आये। इस तरह स्वार्थी और अभिलाषसिंह भी गिरफ्तार हुए।



सोलहवाँ परिच्छेद ।

संयमसिंहकी आत्मकथा ।

इस संसार-सागरमें पद-पदपर विपद्-रूपी हिंसक जन्तुओंके रहनेपर भी, मनुष्य किस तरह इस अथाह सागरको पार कर सकता है ? मेरी समझमें, सावधानता और कर्त्तव्य-तत्परता द्वारा। परन्तु इन दोनोंसे जो चूका, शायद वे जन्तु उसे फिर जीवित नहीं छोड़ते और नरकका कोड़ा ही बना डालते हैं। यही दशा जीवानन्दकी भी थी। कामरूपसिंहके प्रलोभन और रतिके रूप-जालमें, जब वे उलझे तब तुरन्त ही कामरूपसिंहके कारागारका कष्ट भोगकर उन्हें अपना कर्म्म-धर्म्म गँवाना पड़ा। दूसरी बार मायावतीके चातुर्य्य-रहस्यमें इच्छामतीके साथ जाकर, अमर्ष-सिंहके विकट बन्दी हुए। दोनों ही बार, चाहे किसी कारणसे भी हो, वे असावधान थे। असावधानतावश ही, वे अपना कर्त्तव्य भूल गये थे, परन्तु अभिलाषसिंहके फेरमें पड़कर, जब वे कारागृहवासी हुए, तब वहाँ भी असावधानतावश ही बन्दी हुए, तथापि स्वार्थाने उन्हें एक ऐसे पुरुषसे ले जाकर मिला दिया, जिसकी भाव-भङ्गी और बातोंने उनपर तुरन्त ही दूसरा प्रभाव पहुँचाया और स्वार्थाकी बात जम न सकी तथा तुरन्त ही सन्तोषसिंहने पहुँचकर उन्हें कारामुक्त किया। तात्पर्य यह कि असावधानतावश तो वे गिरफ्तार हुए, परन्तु

सावधान होनेके साथ ही, सन्तोषसिंह द्वारा सिर्फ मुक्त ही न हुए, बल्कि अभिलाषसिंहको गिरफ्तार करनेमें सहायक बन कर्त्तव्य-परायण भी हो गये। इसीलिये कहते हैं, कि विपत्ति-सागरको पार करनेके लिये सावधान तथा कर्त्तव्य परायण होना परमावश्यक है। अस्तु,

अभिलाषसिंह अपनेको इस तरह गिरफ्तार होता देखकर बड़ा ही चकराया। एकाएक अनभिलषित कार्य्य हो जानेसे मनुष्य चकरा ही उठता है। स्वार्थो भी बड़ी खिजलायी। उसे सबसे अधिक आश्चर्य्य तो इस बातका था, कि जीवानन्द क्योंकर उसके फेरमें न फँसे। आजतक उसकी कभी हार न हुई थी। जिसके द्वारा हार होनेकी सम्भावना थी, उसे उसने पहलेसे ही नाना उलझनोंमें डालकर, स्वयं नहीं, विपक्षियों द्वारा कैद करा रखा था। अत वह अपनेको अजेय समझने लगी थी। अस्तु, इन बातोंपर ध्यान देकर हमलोगोंने बड़ी सावधानतासे उन्हें थानेमें पहुँचाकर सख्त पहरेका प्रबन्ध कर दिया। यहाँ आकर अभिलाषसिंह बहुत कुछ गिड़ गिड़ाने लगा, परन्तु उस समय उसकी बातोंपर ध्यान देना निरावश्यक समझकर और भी बहुतसे सिपाहियोंको साथ लेकर हम लोग अभिलाषसिंहके मकानपर आ पहुँचे।

समूचे मकानकी तलाशी ली गयी। बहुत सी धन सम्पत्ति उस दिवस हाथ लगी तथा और भी कई मनुष्य, जो अभिलाष-सिंहके साथी ही थे, गिरफ्तार हुए।

उसके कारागारमें भी बहुतसे मनुष्य मिले, जिनमें सभी इस समय दीन, दरिद्र, नाना प्रकारसे पीडित और कष्टित दिखाई दिये। उनकी बातें सुन और उनकी अवस्था देखकर यही मालूम होता था, मानों ये सभी अभिलाषसिंह तथा स्वार्थके फेरमें पडकर जन साधारणपर नाना प्रकारका अत्याचार करते थे। परन्तु सबकी बातोंसे एक ही तात्पर्य्य निकलता था अर्थात् धन-सम्मानके लोभसे ही वे अभिलाषसिंहके दलमें मिलकर, नाना प्रकारके कुकर्म करते थे। परन्तु वह धन भो उनके पास नहीं रहने पाता था। अभिलाषसिंह उनसे छीन-कर उन्हें कारागारमें डाल देता था। उनकी बातोंकी पुष्टि उस गणिकापर किये हुए अत्याचारसे ही हो जाती थी।

उनकी उस समयकी अवस्था देखकर हमलोगोंको बड़ा कष्ट हुआ और हमलोगोंने उन्हें उनके स्थानपर भेजवा दिया।

इधर जाडा बीतकर वसन्त ऋतुने मायापुरीपर अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया था। कोकिलोंके कण्ठ-स्वरके साथ ही साथ रमणी कण्ठ-गुञ्जरित गान ध्वनि भी फाग-रससे भरी हुई चारों ओर सुन पड़ने लगी थी। इधर दो दस्युओंकी गिरफ्तारीके कारण मायापुरीका उपद्रव भी कुछ शान्त हुआ था और हम लोगोंके चित्तमें भी कुछ शान्ति आ पहुँची थी।

एक दिन संध्याके समय हम लोग छतपर बैठे हुए आपसमें कुछ बातें कर रहे थे। सामने ही कुछ दूरीपर एक पहाडी थी। सूर्यदेवकी अस्तमित किरणें, उसपर अपनी मनोहर छटा दिखा

रही थीं। कितने ही गडेरिये, चरवाहे, अपनी गाय, बैल, बकरियाँ लिये पहाडोंसे नीचे उतर रहे थे, वन-उपवनोंने वसन्तकी बहारमें अपना अपूर्व श्रृङ्गार कर लिया था। अपने अपने निवासकी ओर जाती हुई बगुलोंकी श्रेणी बडी ही भली मालूम होती थी। जीवानन्द ध्यानसे उसी दृश्यको देखते देखते न जाने मन ही मन क्या सोच रहे थे। एकाएक जीवानन्दने कहा,—"इस मायापुरीमें आये बहुत दिन हो गये, परन्तु अभी कितने दिन और लगे गे, कुछ ठिकाना नहीं है।"

मैं—इस मायापुरीकी लीला ही ऐसी है, अभी तो दो ही डाकुओंको पकड सके हो, अभो तो चार बाकी पडे हैं।

जीवानन्द,—"हाँ, परन्तु इन दोनोंके पकडे जानेसे ही उपद्रव कुछ कम हो गया है।

मैं—हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है, परन्तु इन उपद्रवियोंका क्या ठिकाना ? न जाने, किस समय क्या कर बैठें ? शत्रुका कभी विश्वास नहीं किया जा सकता।

इसी समय नीचेसे एक पहरेदार आवाज देकर ऊपर आ पहुंचा। उसके हाथमें एक पत्र था। पत्रपर मेरा ही नाम लिखा हुआ था। उसे खोलकर पढा। उसमें लिखा था, कि तुम्हारी बहन बहुत बीमार हो रही है, जीवनकी कोई आशा नहीं है, शीघ्र आओ।

लाचार जीवानन्दका साथ छोडकर, उसी दिवस जाना पड़ा। जीवानन्दको सब बातें समझा और उन्हें खूब सावधान

रहनेका अनुरोधकर, मैं अपने घरकी ओर रवाना हुआ।

वसन्त ऋतुकी चाँदनी रात थी। किसी प्रकारका भय न था। मैं एक बैल गाड़ीपर तेजीसे घरकी ओर चल पड़ा। लगभग आधा पथ बड़ी आसानीसे पार कर गया, कोई कष्ट न हुआ। इसके बादकी राह कुछ विकट थी, थोड़ी दूरतक घना जङ्गल पड़ता था। इसी घने जङ्गलके बीचसे संकीर्ण पथ था।

मेरी गाड़ी आधा जङ्गली मार्ग पार कर चुकी थी। मैं गाड़ीमें अर्द्ध-निद्रित अवस्थामें लेटा हुआ था। इसी समय एकाएक कुछ मनुष्योंके चिल्लानेकी ध्वनि सुन पड़ी। साथ ही गाड़ीवान भी "होशियार" कहकर जोरसे चिल्ला उठा। मैं भी घबड़ाकर उठ बैठा। पिस्तौल जेबमें थी ही, मैं पिस्तौल निकाल, चारों ओर देखने लगा, कि क्या मामला है?

परन्तु कहीं कुछ दिखाई न दिया। गाड़ीवानसे पूछा, परन्तु वह भी कुछ बता न सका, कि यह चिल्लाहटकी आवाज किधरसे तथा कहाँसे आयी थी? गाड़ी अपनी धीर गतिसे आगे बढ़ती ही चली गयी।

एकाएक एक झाड़ीके भीतरसे निकलकर कई मनुष्य गाड़ीपर टूट पड़े। उन्होंने आगे बढ़कर बैलोंका जुआ पकड़ लिया और उनमेंसे एकने आकर पूछा—"तुम्हारी गाड़ीमें क्या है?"

मैंने कहा—"मेरे जीवनके सिवा और कुछ नहीं।"

वह बोला—"तुम कौन हो?"

मैंने कहा—"नाम बतानेकी कोई आवश्यकता नहीं; यदि तुम धन चाहते हो तो, मेरे पास धन नहीं है।"

वह बोला,—"मैं क्या चाहता हूं, सो पीछे बताऊँगा। पहले तुम अपना नाम बताओ।"

मैंने कहा,—"यह असम्भव है। तुम्हारा परिचय जाने बिना मैं अपना परिचय नहीं दे सकता।"

उसने कहा,—"क्या तुम्हें अपना जीवन प्यारा नहीं है?"

मैंने कहा,—"मैं तो इसे पुराने कपडे जैसा समझता हूं, जो मैला होते ही बदल दिया जाता है।"

वह बोला—"मैं ब्रह्मज्ञान सुनने नहीं आया हूँ। तुम्हें अपना परिचय देना ही पडेगा।"

मैंने कहा—"मैं अपना परिचय नहीं दे सकता।'

इतना सुनते ही उसने अपनी बन्दूक मेरी ओर सीधी की। मैंने भी पिस्तौल साधी। इसी समय—"हाँ हाँ," करती, एक मूर्त्ति उस स्थानपर आ पहुंची।

मूर्त्ति सिरसे पैरतक वस्त्राच्छादित थी। उसे देखकर कोई पहचान न सकता था, कि यह कौन है। परन्तु जङ्गली वृक्षोंकी ओटमें छिपी रहनेपर भी, शब्द सुनकर ही, जिस तरह मालूम हो जाता है, कि कोकिला कुहुक रही है, उसी तरह इन काले-वस्त्रोंके भीतरसे निकली हुई ध्वनिसे ही, मालूम हो गया, कि बोलनेवाला पुरुष नहीं, बल्कि रमणी है।

उसने उस पुरुषकी ओर लक्ष्यकर कहा—"वृथा ही

झगड़ा करते हो? इसके पास क्या रखा है, जो लोगे?"

उसने उस स्त्रीकी बात सुनकर बन्दूक झुका ली और कहा—"यह कौन है? अपना परिचय क्यों नहीं देता?"

उस स्त्रीने कहा,—"यदि परिचय ही जानना चाहते हो, तो मैं बता दूंगी और यदि किसी लोभसे इसपर आक्रमण करना चाहते हो तो, मैं कहती हूं, कि इससे कुछ न मिलेगा।"

न जाने क्यों, उस स्त्रीकी बात सुनकर वह उपद्रवी रुक गया। घटना कुछ समझमें न आयी। वह डाकू या जो कोई हो, अपने मनमें कुछ सोचने लगा।

इसी समय उस स्त्री मूर्त्तिने कहा—"मेरे साथ आओ, इस समय एक दूसरा बहुत ही आवश्यक कार्य है। इसे जाने दो।"

डाकू बिना कुछ कहे, उस स्त्रीके पीछे-पीछे चला गया। मैं इस घटनापर विचार करता ही बैठा रह गया, कुछ समझमें न आया, कि मामला क्या है?

एक बार इच्छा हुई, कि इनका पीछाकर इनका भेद लूँ, परन्तु अपनी बहनकी रुग्नावस्था और जीवन निर्वाणोन्मुखका समाचार सुनकर चित्त अस्थिर हो रहा था। इसलिये मैंने गाड़ीवानको गाड़ी आगे बढ़ानेके लिये कहा। गाड़ी तेजीसे

रोगका कोई चिह्न नहीं। यह दशा देखकर, मैं अवाक् रह गया।

घर पहुंचकर, मैंने उस पत्रको दिखाकर लोगोंसे पूछा। परन्तु कोई भी कुछ उत्तर न दे सका। सभी उस पत्रके भेजनेसे इन्कार करने लगे।

पत्र मेरे भाई जयसिंहके हाथका लिखा मालूम होता था। नीचे उसीका नाम भी लिखा हुआ था। परन्तु वह कहता था, कि मुझे इस पत्रका कोई समाचार नहीं मालूम है और न मैंने यह पत्र भेजा ही है।

बड़ी चिन्तामें जान जा पड़ी। सोचने लगा, यह क्या लीला है? इच्छा हुई, कि जरा जीवानन्दके घरकी तो खबर लूं। यह सोच, मैं जीवानन्दके मकानकी ओर जाना ही चाहता था, कि इसी समय जीवानन्दके घरका एक नौकर दौड़ता हुआ आ पहुँचा। बोला,—"कल रात्रिसे बहूजीका पता नहीं है।"

"बहूजीका पता नहीं है? कहाँ चली गयीं?"

नौकर बोला—"रात्रिके दस बजेतक तो वह घर-गृहस्थीके कार्य कर रही थीं। दस बजे जाकर सोयीं। उनके कमरेमें ही उनकी दासी भी सोयी थी। परन्तु सवेरे जब दासी उठी तो वे पलङ्गपर न दिखायी दीं। तबसे बराबर हमलोग इधर उधर खोज रहे हैं, परन्तु कहीं कुछ पता नहीं लगता।"

मैंने कहा—"फिर इतनी देरतक समाचार क्यों न दिया?"

नौकर बोला—"यह भी कोई कहनेकी बात है?

बहुत खोज ढूँढ़ की, परन्तु जब कहीं पता न लगा, तब आपके यहाँ पूछने आया, कि यहाँ तो न चली आयी हैं। यह बात मुँहसे निकालनेमें भी तो बदनामी है।"

नौकरने सच ही कहा था। संसारमें सभी एक प्रकृतिके नहीं होते। बुराइयोंकी ओर ही लोगोंका विशेष ध्यान जाता है।

मैं तुरन्त ही उस नौकरके साथ जीवानन्दके मकानपर जा पहुंचा। देखा, कि दासी एक ओर बैठी हुई रो रही है, घरकी चीजें इधर-उधर बिखरी पडी हैं, दासीके पास ही, जीवानन्दका एक पाँच वर्षका बालक खड़ा खड़ा आँसू बहा रहा है।

लडका मुझे देखते ही, मेरे पास दौड़ता हुआ चला आया। वह मुझे पहचानता था। वह कुछ तोतलाता हुआ बोला—"चाचा! माँ कहाँ चली गयीं? बाबूजी कहाँ गये?"—इतना कहता कहता बालक फूट फूटकर रोने लगा। उसकी यह दशा देखकर बडी दया आयी। परन्तु उपाय क्या था? मैंने उसे समझाते हुए कहा—"बेटा! तुम्हारी माता शीघ्र ही आवेंगी। रो मत! बाबूजी भी आवेंगे!"

बच्चा बोला,—"फिर अन्ना क्यों रो रही है?" उस दासीको लड़का अन्ना कहता था। "क्या अब माँ न आयेंगी?"

बच्चेकी सरलता और नेह भरी बात सुनकर मेरा कलेजा मसोसने लगा। मैंने कहा—"बेटा! जाता हूँ। जल्द ही तेरी माँको खोज लाऊँगा।"

बच्चा मेरी ओर करुणा-भरी दृष्टिसे देखता हुआ बोला—"हाँ

चाचा! जल्दी आना। मुझे भूख लगी है। अब कौन खानेको देगा?"

ओह! नेहमें भी स्वार्थ है! यदि स्वार्थ न हो, तो प्रेम भी नहीं रहता। बच्चेका अपनी मातापर अविचल प्रेम है, परन्तु उसमें भी स्वार्थका भाव झलक रहा है। सच ही तो, क्या कोई गये या मरेके लिये रोता है? रोता है, अपने स्वार्थों की हानि देखकर!

मैंने कहा,—नहीं बेटा! रोवो मत! तुम्हारी माँ शीघ्र ही आ जावेंगी।"

इतना कह, उस दासीको साथ लेकर मैं उस कोठरीमें गया, जिसमें वह दासी तथा जीवानन्दकी स्त्री सोयी थीं। बिछावन अब भी ज्योंका त्यों पड़ा था। सब चीजें यथास्थान रखी थीं, केवल जीवानन्दको स्त्रीका पता नहीं था। मैं बिछावनपर और नीचे जमीनमें इधर उधर देखने लगा। शायद कहीं कोई पत्र या ऐसी कोई वस्तु मिल जाये; जिससे जीवानन्दकी स्त्रीके गायब होनेका पता लगे। परन्तु कहीं कुछ नहीं मिला।

लाचार, मैं उस कोठरीसे बाहर निकलकर, सोचने लगा, कि अब क्या करना चाहिये।

इसी समय एकाएक उस दासीका बारह चौदह वर्षका एक बालक दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुंचा और हाँफता हाँफता बोला—"माँ! माँ! वही आये हैं, जो कल मुझे पकड़ ले गये थे, क्या वे मुझे मार डालेंगे? बचाओ, माँ! बचाओ!"

कुछ समझमें न आया, कि यह लड़का क्या बक रहा है। मैंने उस दासीकी ओर देखकर पूछा,—"यह क्या बक रहा है? कौन इसे मारने आया था?"

दासी बोली—"इस पगलेकी बातका क्या ठिकाना? बाबू! न जाने क्या बकता है।"

लड़का बोला –"वाह मा! मैं क्या पगला हूं? देखो, यदि तुम न बचातीं तो रातको वे मुझे अवश्य मार डालते।"

दासीने इतना सुनते ही कहा—"रातमें कुछ सपना तो न देखा था? जा हट यहाँसे।"

दासीने ऐसी डपट दी, कि लड़का वहाँसे भाग गया। परन्तु मेरे मनमें सन्देहका कीड़ा छोड़ गया।

अब मैंने दासीकी ओर देखकर कहा—"क्या मामला है, उस लड़केको इस तरह भगा क्यों दिया?"

दासी कुछ उत्तर देना ही चाहती थी, कि इतनेमें ही जीवानन्दके एक मौसेरे भाई वहाँ आ पहुंचे और दासीसे पूछते हुए बोले—"क्या हुआ भाभी कहाँ चली गयी?"

दासीने इस बार कुछ झुंझलाते हुए कहा—"मुझे क्या मालूम, कहाँ चली गयी?"

वह बोला—"आज कल इस संसारमें किसका विश्वास किया जाये। घरमें चोर-डकैत कुछ आये ही नहीं। और यदि आते भी तो सब धन-सम्पत्ति छोड़कर क्या उसे ही उठा ले जाते? इस जमानेमें धर्म कर्म और पातिव्रत तो अब रह न गया।"

विना सोचे समझे ऐसी बात उसको मुँहसे निकालते और अपने मित्रकी स्त्रीपर कलङ्क लगता देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने कहा—"ज़रा सोच समझकर कोई बात अपने मुखसे निकालिये।"

उसने कहा—"क्या सोच समझकर निकालूँ? हमलोगोंको तो इसने कहीं मुँह दिखाने लायक न रखा।"

मैंने उससे कुछ कहना अरण्य रोदन समझकर, उस दासीकी ओर देखकर कहा—"तू इस बालककी बात भले ही पागल कहकर उड़ा देना चाहे, परन्तु मैं इसे पागल नहीं समझ सकता। अवश्य ही कुछ दालमें काला है। अवश्य ही यह किसी षडयन्त्रका फल है।

दासी बोली—"बाबूजी! भला इसमें काहेका दालमें काला? दुहाई काली माईकी! मैं क्या जानू, कि बहूजी कहाँ चली गयीं?

मैंने कहा,—"तू यह भले ही न जानती हो, कि बहूजी इस समय कहाँ हैं, परन्तु इतना तू अवश्य जानती है, कि कल रातमें कोई न कोई नवीन घटना घटी थी।"

दासी बोली,—काहेकी घटना और काहेकी बात! न जाने अभागा लड़का क्या क्या बक गया और बाबूजी भी मुझपर ही बिगड़ने लगे।"

मैंने तुरन्त ही उस लड़केको पुकारा। पुकारकर उसे धमकाते हुए कहा,—"बता, कल रातमें कौन आया था?"

कुछ समझमें न आया, कि यह लडका क्या बक रहा है। मैं ने उस दासीकी ओर देखकर पूछा,—"यह क्या बक रहा है? कौन इसे मारने आया था?"

दासी बोली—"इस पगलेकी बातका क्या ठिकाना? बाबू! न जाने क्या बकता है।"

लडका बोला -"वाह मा! मैं क्या पगला हू? देखो, यदि तुम न बचातीं तो रातको वे मुझे अवश्य मार डालते।"

दासीने इतना सुनते ही कहा—"रातमें कुछ सपना तो न देखा था? जा हट यहाँसे।"

दासीने ऐसी डपट दी, कि लडका वहाँसे भाग गया। परन्तु मेरे मनमें सन्देहका कीडा छोड गया।

अब मैं ने दासीकी ओर देखकर कहा—"क्या मामला है, उस लड़केको इस तरह भगा क्यों दिया?"

दासी कुछ उत्तर देना ही चाहती थी, कि इतनेमें ही जीवानन्दके एक मौसेरे भाई वहाँ आ पहुँचे और दासीसे पूछते हुए बोले—"क्या हुआ, भाभी कहाँ चली गयी?"

दासीने इस बार कुछ झुँझलाते हुए कहा—"मुझे क्या मालूम, कहाँ चली गयी?"

वह बोला—"आज कल इस संसारमें किसका विश्वास किया जाये। वरमें चोर-डकैत कुछ आये ही नहीं! और यदि आते भो तो सब धन-सम्पत्ति छोडकर क्या उसे ही उठा ले जाते? इस जमानेमें धर्म्म कर्म्म और पातिव्रत तो अब रह न गया।"

सत्रहवाँ परिच्छेद।



जीवानन्दकी आत्मकथा।

नाट्य मञ्चके दृश्योंके समान क्षण क्षणपर दृश्य परिवर्त्तन होना ही इस संसारका धर्म है। ससार-चक्रके अनवरत आवर्त्तन चक्रमें पडकर, यदि मानव-जीवन नाटकके दृश्योंमें भी उसी तरह परिवर्त्तन हो गया, तो कौनसी आश्चर्य्यकी बात है?

इतने ही दिनोंमे, मायापुरीमें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया। हेमन्तके कठोर शीतके बदले, वसन्तकी बहुरङ्गी बहारने माया-पुरीपर अपनी बहारदार चादर डाल दी। भीषण उलूकोंके कठोर स्वरके बदले कोयलोंकी कूजन सुन पडने लगी। वन, उपवन, बाग, वाटिका, सुन्दर सरोवर, ताल तमाल, वृक्ष पर्वत सबने अनोखी शोभा धारण की। सभी मानों आनन्द, उमङ्ग और उत्साहसे खिल उठे, फूल उठे और मस्त हो गये। हाट-बाटमें नगर-निवासियोंकी प्रसन्नता-सूचक ध्वनि, फाग भरी मधुर तानें भी सुन पडने लगीं। प्रकृतिके इस खेलवाडके साथ ही साथ मायापुरीमें दूसरा परिवर्त्तन यह भी हो गया था, कि कामरूप-सिंह भाग गया था—वह फिर दिखाई न दिया, तथा अमर्पसिंह और अभिलाषसिंह कारागारकी हवा खा रहे थे।

मुझमें भी थोडा परिवर्त्तन हो गया था। इन गिरफ्तारीके कारण मेरा मन भी पुलकित हो रहा था

दासी—"नहीं, कुछ नहीं।"

मैं—"अच्छा, रूप-रङ्ग बता?"

उन दोनोंका जो रूप रङ्ग उस दासीने वर्णन किया, उससे उनमेंसे एक तो ठीक वही मालूम हुआ, जिसने मेरी गाड़ीपर आक्रमण किया था। वह कौन है—कुछ समझमें न आया। अस्तु, उस बच्चेको अपने साथ लेकर, क्योंकि प्राणभयसे जीवानन्दके भाई उसे अपने यहाँ ले जानेको प्रस्तुत न थे, मैं अपने घर चला आया। उस दासीको भी मैंने वृथा कष्ट देना उचित न समझा। उसे अच्छी तरह सावधानकर मैं फिर मायापुरीकी ओर चल पड़ा; क्योंकि मुझे सन्देह हो गया था, कि इस घटनाका कुछ न कुछ सम्बन्ध मायापुरीसे अवश्य है। परन्तु मायापुरीमें आते ही मेरे आश्चर्य्य, विस्मय, घबड़ाहट, चिन्ता, और सन्तापका ठिकाना न रहा। मैं वहाँकी अवस्था देखकर ही अवाक् हो गया।



जिसकी दाढ़ी नाभीतक और जटा जमीनमें लोट रही है,- बैठा है। उससे मैंने बडी कातरतासे सहायता माँगी।

वह तुरन्त ही तय्यार हो गया। उसने अपने कमण्डलसे जल निकालकर मेरे हाथमें दिया और मै अपनी स्त्रीके मुखपर डालने लगा, परन्तु यह क्या? दूसरी बार ज्योंही उसने जल मेरे हाथमें दिया, त्योंही थोडासा इस सावधानीसे मेरी नाकपर डाल दिया, मानों अचानक गिर गया हो। उसमें बडी कडी गन्ध थी, वह गन्ध नाकमें जाते ही मुझे कुछ सुध बुध न रही। मैं तुरत बेहोश होकर उसी स्थानपर लेट गया।

इसके बाद जिस समय मेरी बेहोशी दूर हुई, उस समय मैंने एक विचित्र ही दृश्य देखा। मैंने देखा, कि मैं एक बडे सुसज्जित कमरेमें सो रहा हू, गद्दी, तकिये, बिछावन, किसी बातकी कमी नहीं है। परन्तु पराधीनता है—दरवाजा बाहरसे बन्द है-बाहर निकलनेका पथ नहीं है।

मनमें बडी चिन्ता हुई। मन ही मन सोचने लगा—यह क्या हो गया? मेरी स्त्री यहाँ कैसे आ पहुँची? तब क्या डाकुओंने मेरे घरपर भी आक्रमण किया? अब उस बच्चेकी क्या दशा होगी? मैं तो आप ही विपत्ति सागरमें आ पडा हूँ, यदि बाहर रहता तो डाकुओंके चक्रसे उसे छुडानेकी चेष्टा करता, परन्तु यह भी असम्भव है। परन्तु यह दृश्य परिवर्त्तन कैसे हुआ? मकानकी छतपरसे तो मायावती दिखलाई दी, परन्तु यहाँ आकर मेरी स्त्री कैसे दिखाई देने लगी?

सावधान रहनेका इशाराकर झपटता हुआ, उसी ओर चला, जिधर वह दृश्य दिखाई दिया था और जिधर मेरी उपकारिणी मायावतीपर कुछ दुराचारी दस्युओंका आक्रमण हो रहा था।

परन्तु यह क्या ? मैं जितना ही लपकता हुआ चला, उतना ही वह दृश्य भी मानों पीछे ही हटता चला गया। इसी तरह बहुत देरतक मैं पीछा करता चला गया। अब वह दृश्य पीछे ही हटता देख, मैंने घबड़ाकर पिस्तौल दागी। इसी समय मैंने देखा, कि वे दस्यु भाग रहे हैं, उन्होंने हाथकी मशाल जमीनमें फेंक दी है जो जमीनमें गिरकर भी जल रही है। उसी आलोकमें यह भी दिखाई दिया, कि कोई स्त्री जमीनमें पडी हुई है।

मैं दौड़ता हुआ, उसी स्थानपर जा पहुचा। परन्तु यह क्या ? नेत्रोंको धोखा तो नहीं हो रहा था ? मैंने देखा—खूब आँखें मल-मलकर देखा, कि मायावती नहीं, बल्कि मेरी स्त्री—मेरी अर्द्धाङ्गिनी, मूर्च्छित अवस्थामें जमीनपर पड़ी है, उसके माथेसे रक्तकी धारा बह रही है।

मैं हृदय थामकर बैठ गया। नाकपर हाथ रखा—श्वास चल रहा था। मैं मन ही मन सोचने लगा यहाँ किससे सहायता लूँ। मन अत्यन्त कातर हो उठा। इधर-उधर देखा, कुछ दूरपर एक कुटीसी दिखाई दी—विशेष विचार करनेका समय न था। अपनी स्त्रीको अकेला ही उठाकर किसी तरह उस कुटीके द्वार तक ले गया। भीतर झाँककर देखा, कि एक वृद्ध संन्यासी,

जिसकी दाढ़ी नाभीतक और जटा जमीनमें लोट रही है,- बैठा है। उससे मैंने बडी कातरतासे सहायता माँगी।

वह तुरन्त ही तय्यार हो गया। उसने अपने कमण्डलसे जल निकालकर मेरे हाथमें दिया और मैं अपनी स्त्रीके मुखपर डालने लगा, परन्तु यह क्या? दूसरी बार ज्योंही उसने जल मेरे हाथमें दिया, त्योंही थोडासा इस सावधानीसे मेरी नाकपर डाल दिया, मानों अचानक गिर गया हो। उसमें बडी कडी गन्ध थी, वह गन्ध नाकमें आते ही मुझे कुछ सुध बुध न रही। मैं तुरत बेहोश होकर उसी स्थानपर लेट गया।

इसके बाद जिस समय मेरी बेहोशी दूर हुई, उस समय मैंने एक विचित्र ही दृश्य देखा। मैंने देखा, कि मैं एक बडे सुसज्जित कमरेमें सो रहा हू, गद्दो, तकिये, बिछावन, किसी बातकी कमी नहीं है। परन्तु पराधीनता है—दरवाजा बाहरसे बन्द है-बाहर निकलनेका पथ नहीं है।

मनमें बडी चिन्ता हुई। मन ही मन सोचने लगा—यह क्या हो गया? मेरी स्त्री यहाँ कैसे आ पहुँची? तब क्या डाकुओंने मेरे घरपर भी आक्रमण किया? अब उस बच्चेकी क्या दशा होगी? मैं तो आप ही विपत्ति-सागरमें आ पडा हूँ, यदि बाहर रहता तो डाकुओंके चक्रसे उसे छुडानेकी चेष्टा करता, परन्तु यह भी असम्भव है। परन्तु यह दृश्य परिवर्त्तन कैसे हुआ? मकानकी छतपरसे तो मायावती दिखलाई दी, परन्तु यहाँ आकर मेरी स्त्री कैसे दिखाई देने लगी?

गहरी चिन्तामें जान पडी। इसी समय वाहर वड़ा कोलाहल सुन पडा। मैंने किवाडके दरारोंसे झाँककर देखा—वडा ही विचित्र दृश्य था। मेरे मकानमें, मेरे साथ रहनेवाले, मेरे सभी साथी पकड़ गये थे। उन सवको घेरे हुई, दस्यु-मण्डली आनन्दसे नाचती कूदती, चीत्कार करती चली आती थी। ओफ़! यह क्या हो गया! कुछ समझमें न आया।

वडी विचित्र घटना है। बुद्धि कुछ काम नहीं करती। यह कैसा काण्ड हो गया—कुछ समझमें न आया। इतने मनुष्य किस तरह एकाएक इन डाकुओंके फेरमें जा फँसे?

मैं दरवाजेके पास खडा हो, इसी तरह सोच ही रहा था, कि एकाएक साँकल खुलनेका शब्द सुन पडा। मैं लपककर अपने बिछावनपर आ बैठा।

इसी समय दरवाजा खुला और अभिलाषसिंहके साथ ही साथ एक और भी मनुष्य मेरे कारागारमें आ पहुंचा।

अभिलाषसिंहका रूप रङ्ग मैं पहले ही वता चुका हूँ। यह दूसरा कौन था, इसकी मुझे खवर न थी। परन्तु यह मनुष्य देखनेमें कुरूप न था। यह भी कामरूपसिंह जैसा ही मालूम होता था।

इसके नेत्रोंमें वडा रस था। बातें वडी रस भरी करता था। बातोंसे यह वड़ा ही सुचतुर और देखनेमें भी कुलीन सा मालूम होता था।

इन दोनोंके भीतर आते ही अभिलाषसिंहने डपटकर कहा—"क्यों जीवानन्द! उस वार स्वार्थीको धोखा देकर भाग गये थे।

अब बताओ! तुम्हें क्या दण्ड दिया जाये? तुम बड़े विश्वास-घातक हो!"

मैं कुछ उत्तर देना ही चाहता था, कि उस मनुष्यने कहा—"अभिलाषसिंह! कटु वचन क्यों बोलते हो? आपद्ग्रस्तोंपर कटु-वचन-प्रहार कदापि न करना चाहिये।"

अभिलाषसिंहने कहा—"क्या कहते हो? इसको तो खाल खींचकर, उससे भी चार पैसे पैदा करना चाहिये।"

इस विपत्तिमें भी अभिलाषसिंहकी बात सुनकर हँसी आ गयी। मैंने कहा—"तुम्हारी पापकी समूची कमाई तो सरकारी खजानेमें चली गयी। अब इसी तरह पेट न भरोगे तो और क्या करोगे!"

मेरी बात सुनकर वह बहुत बिगड़ा, बोला—"मैं तुम्हें किसी तरह जीवित न छोड़ूँगा। यदि अपना भला चाहते हो, तो किसी तरह मेरी समस्त सम्पत्ति मुझे दिला दो। अन्यथा, तुम्हारी नस नससे अपनी कौड़ी-कौड़ी चुका लूँगा।"

अपना सब धन गया हुआ देखकर, अभिलाषसिंह पागल हो गया था। मैंने उसकी अन्तिम बातका कोई उत्तर न दिया।

इसी समय उस मनुष्यने उसके कानमें बहुत धीरे धीरे कुछ कहा, जिसे मैं सुन न सका। सुनते ही अभिलाषसिंह उस कमरेसे चला गया। जाते समय बाहरसे दरवाजा भी बन्द करता गया।

अब ये दूसरे महाशय मेरे बहुत ही निकट आकर बोले—"मैं आपके भलेके लिये ही आपसे कुछ बातें किया चाहता हूँ।"

मैंने कहा—"कहिये, परन्तु पहले अपना परिचय तो बता दीजिये?"

उसने कहा—"मेरा परिचय? मेरा नाम मोहनचन्द है।"

मैंने आश्चर्य्यसे कहा—"मोहनचन्द!"

मोहनचन्द वास्तवमें मोहन ही था। उसका स्वरूप मनोमोहक था, उसकी बातें मनको मोहनेवाली थीं और उसके हाव-भाव-कटाक्षसे भी मोहकता ही टपकती थी।

उसने कहा—"हाँ, मोहनचन्द। क्या आप मुझे पहचानते हैं?"

मैंने कहा—"नहीं, पर नाम सुना है।"

मोहनचन्दने कुछ आश्चर्य्यमें आकर कहा—"किससे?"

मैंने कहा—"सो बतानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

मोहनचन्दने कहा—"अच्छी बात है, न सही। आपने मेरा परिचय पूछा था, सो नाम तो मैंने आपको बता दिया। अब मेरा कुछ काम भी सुन लीजिये। संसारमें—मायापुरीमें, अपने साथियोंमें मेरा बड़ा सम्मान है, जीवमात्र ही नहीं, बल्कि निर्जीव भी मेरा सम्मान करते हैं। मेरी वह शक्ति है, कि जीवमात्रसे जो चाहूं, करा लूँ। मेरे मोहनमन्त्रमें पड़कर बड़ेसे बड़े ज्ञानी, ध्यानी और तपस्वी अपना सारा ज्ञान, ध्यान और तपस्या भूल जाते हैं। मानव-समाज मेरे हाथमें कठपुतलीकी भाँति नाचा करता है।

यदि मैं न होऊँ, तो इस ससारके यावत् कर्म वन्द हो जायँ, ईश्वरकी सृष्टि ही नष्ट भ्रष्ट हो जाये, उसकी गति अग्रसर न हो और समूचा ससार श्मशानमें परिणत हो जाये। यह मेरा और मेरे साथियोंका ही प्रताप है, जो संसार इस सुन्दरतासे चल रहा है। तुम जानते होगे, कि एक वडे विकट दलका सरदार कामरूप-सिंह है। परन्तु वह भी विना मेरी आज्ञाके, विना मेरे परामर्शके अथवा विना मेरी सहायताके कुछ काम कर सकता है? मैं सवको एक समान समझता हू, निर्जीवोंपर जैसा प्रभाव है, जीवधारियोंपर भी वैसा ही प्रभाव है। इसीलिये अपना काम सुचारुरूपसे सम्पन्न करने या दूसरों द्वारा करानेके लिये, सवको मेरी सहायता लेनी पडती है। गुलावमें वड़ा सुन्दर रङ्ग, रूप, गुण तीनों ही हैं, परन्तु यदि मेरी सहायता, चाहे वह किसी रूपमें भी हो, उसे प्राप्त न हो, तो कोई उसका आदर न करे। "चाहे जैसी अपूर्व सुन्दरी कामिनी हो, परन्तु जवतक मेरी सहायता न लेगी, तवतक उसकी मनोभिलाषा पूरी न होगी—तवतक उसका प्रेमी न मिलेगा। मेरी महिमा अवर्णनीय है, मैं अपने अधिकार आपको कहाँतक वताऊँ? यह अमर्षसिंह, अभिलाषसिंह आदि जो हैं, इन सवकी मजाल नहीं, जो मेरी आज्ञाके विपरीत चल सकें।"

मोहनचन्द न जाने और क्या क्या कहता, परन्तु उसकी आत्मश्लाघापूर्ण वातें सुनते सुनते मेरा जी ऊब गया। इसीलिये मैंने वाधा देकर कहा—"आपकी वातोंसे मैं अच्छी तरह

गया, कि आपमें वडी शक्ति है। परन्तु कृपाकर यह तो वताइये, कि आप मेरे उपकारके लिये, मुझसे क्या कहना चाहते हैं ?"

मोहनचन्द्रने मुस्कुराते हुए कहा—"हाँ, असल काम तो वही है। परन्तु अपना पूरा परिचय दिये विना कोई काम भी तो नहीं वन सकता ? अस्तु, अव कामकी वात सुनिये—मैं पहले ही कह चुका हूँ, कि अपना प्रभाव दिखानेमें मैं किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता। एक वार कामरूपसिंहके यहाँ रतिको देखते हुए, जव आप गिरफ्तार हुए थे, उस समय भी मैं आप लोगोंके पास था, शायद आपने नहीं देखा। आज भी आपके पास हूँ। देखिये, आफतसे वचनेके लिये तो मनुष्यको धनकी रक्षा करनी चाहिये। परन्तु धनसे भी अधिकतर अपनी स्त्रीकी मनुष्यको रक्षा करनी चाहिये—क्योंकि वह अर्द्धाङ्गिनी है—उससे संसारिक सुखके अतिरिक्त धर्म्म-कार्यमें भी सहायता मिलती और पार-लौकिक सुखकी प्राप्ति होती है। इस समय आपकी वही अर्द्धाङ्गिनी दस्युओंके हाथमें पड गयी है। न जाने दस्यु उसपर किस तरह अत्याचार कर रहे हैं—आप इधर खुद कारागारमें पडे हैं—वताइये, उसे छुडानेका क्या उपाय है ?"

अपनी स्त्रीकी मुझे भी वड़ी चिन्ता थी। उसके लिये मैं व्याकुल हो रहा था। परन्तु इस समय जव मैं ही स्वतन्त्र न था, तव उसकी क्या सहायता करता? विपत्तिमें ही, अपनी सामर्थ्य-हीनतामें ही, मनुष्य ईश्वरके सहारे हो जाता है। मैं इस समय ईश्वरके सहारे—भाग्यके भरोसे, चुप वैठ गया था। परन्तु मोहन

चन्दकी बातोंने मेरा दिल इस समय फिर हिला दिया—सहारेकी पतवार बालूकी दीवारकी भाँति टूट गयी। उसकी विपत्ति-कथा, अपने प्रिय पुत्रकी अनाथावस्था और गृहमें रखी धन-सम्पत्तिके नष्ट होनेकी आशङ्कासे मेरा हृदय काँप उठा—मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। मैं कोई उत्तर न दे सका।

इस अवस्थामें मुझे देखकर मोहनचन्दने कहा,--"घबड़ाइये नहीं, सब बातें तो सुन चुके हैं—अपनी अर्द्धाङ्गिनीको आहत तथा डाकुओंके फेरमें अपनी आँखों देख चुके हैं। मेरी बातपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। अब केवल उसके और साथ ही आपके छुटकारेका उपाय सोचना है। इसीलिये, मैं अभिलाषसिंहके साथ यहाँ आया हूं। अब बताइये, आपकी क्या इच्छा है?

मैंने दुःखित स्वरमें कहा—"उपाय! असहाय कौन उपाय बता सकता है?"

मोहनचन्द—तब क्या मेरी बातपर विश्वास करेंगे?

मैं—लाचार होकर विश्वास करना ही पड़ेगा। भाई! इस समय तो तुम्हीं सहायक बनो, नहीं तो मेरा निस्तार नहीं है।

मोहनचन्द—यदि सहायता न करना चाहता, तो यहाँ आता ही क्यों?

न जाने मोहनचन्दने मेरी आँखोंपर कौनसा मोहजाल डाल दिया था और न जाने उसने किस जादू विद्याके बलसे मेरा हृदय आकर्षित कर लिया था, जिससे उसपर अविश्वास करनेकी

इच्छा नहीं होती थी। मैंने कहा—"भाई, मैं तुम्हारा जीवन भर कृतज्ञ रहूंगा। इस समय मेरी सहायता करो।"

मोहनचन्द—परन्तु एक बात जानते हैं? आपकी सहायता करनेमें मुझे अपने जीवनको विपत्तिमें डालना पड़ेगा—सम्भव है, प्राणसे भी हाथ धोना पड़े। मुझे क्या मिलेगा?

मैंने बड़ी दीनतासे कहा—"इस समय मेरे पास देने लायक क्या रखा है?"

मोहनचन्द—तो क्या कोई निरर्थक ही, किसीके लिये प्राण देने जाता है?

मैंने कहा—"लोभ या स्वार्थवश प्राण देना या सहायता करना न करनेके समान है। कर्म्म वही उत्तम होता है, जिससे फलकी प्रत्याशा न की जाये।"

मोहनचन्द मेरी बात सुनकर मुस्कुरा उठा। बोला—"निष्काम कर्म्मकी साधना मुझ जैसे नारकियोंसे नहीं हो सकती। समझमें नहीं आता, कि उससे लाभ ही क्या है? काम तो वही उत्तम है, जिससे हाथों-हाथ फल दिखाई दे, तुरन्त लाभालाभ मालूम हो। आपने तो इस समय वैसी ही बात कही, जैसी इस समयके त्यागियोंमें दिखाई देती है। अर्थात् स्वर्गमें सुख भोगनेकी इच्छासे, वे संसारिक सुखोंका त्याग करते हैं। स्वर्गमें अप्सरा सम्भोगकी सुख-कामनाकर इस ससारमें इन्द्रियजित रहना चाहते हैं। वहाँ युवक बने रहनेकी लालसासे यहाँ जवानीकी मौजको त्याग देते हैं।"

मैंने कहा—"तब तुम क्या समझते हो, कि ये वेद-वाक्य और धर्मशास्त्रकी आज्ञायें सब कपोल कल्पनामात्र हैं ?"

मोहनचन्द हँसता हुआ बोला—"और नहीं तो क्या ! क्या आप समझते हैं कि यज्ञ करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ? यह बात ठीक वैसी ही है, जैसी यह कहना, कि आकाशमें—शून्यमें—राजमहल बन सकता है, अथवा आकाशमें पुष्प खिलते हैं। यदि आकाशमें फूल खिल सकते हैं, तो आगमें आहुतियाँ डालनेसे स्वर्ग भी प्राप्त हो सकता है। नहीं तो दोनों ही बातें, चण्डूखानेकी गप्पें हैं ! यह बात मैं अपने मनकी ही नहीं कह रहा हूँ, देव-गुरु, देव-आचार्य्य बृहस्पतिजी भी तो यही कहते हैं, कि अग्नि-होत्र, देव पाठ, तान्त्रिक क्रियाओंका साधन, ये सभी वृथा आडम्बर, पेट पालनके साधन और आलसियोंकी उदर पूर्त्तिके ढकोसले हैं।"

मैंने कहा—"तुम तो विचित्र पुरुष हो। तुमने तो वेद-शास्त्र सबपर हरताल फेर दिया। तुम चार्वाकके शिष्य तो नहीं हो ? बताओ, यह शिक्षा तुम्हें किसने दी ?"

मोहनचन्दने हँसकर कहा—"शिष्य ! किसीका शिष्य बनना तो मेरी समझसे पाप करना है। जिसका प्रभाव बड़े-बड़े महर्षि, बड़े बड़े नीतिज्ञ, बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी और मानीपर पूरा अधिकार जमाये बैठा है, तुम्हीं बताओ; क्या कोई उसका गुरु बननेका साहस कर सकता है ? परन्तु तुम्हारे शास्त्र पुराणोंपर कैसे विश्वास कर लूं ? तुम्हारे शास्त्र पर-स्त्री-गमनको बड़ा

भारी पाप कहते हैं। बताओ, कहा है न? परन्तु इस बातमें क्या तत्त्व है? जरा अपने देवताओंकी ओर तो देखो, इन्द्रकी लीला सुनी तो है? वही अहल्यावाली बात। जरा चन्द्रमाकी बात ध्यानमें लाओ। कैसी कलङ्क कालिमा पुत गयी है। बताओ, क्या ये शास्त्र-पुराण विश्वास करनेकी चीजें हैं?"

मैंने कहा—"तब तुम्हारी क्या यह इच्छा है, कि वेद फिरसे जल गर्भमें समा जायें, शास्त्रपर आग्नेयास्त्र चला दिया जाये और पुराणोंका परायण छोडकर लैला-मजनूको ही शास्त्र बनाया जाये?"

मोहनचन्दने कहा—"इतना झमेला मैं नहीं जानता। मैं सीधी बात जानता हू। वह यह, कि जो बात अपनी बुद्धिमें न समाये, उसे न मानना और जो तर्ककी आगमें सती-साध्वीकी भाँति निर्दग्ध निकल आये उसे ही मानना। तीसरे, नि स्वार्थ कामसे कोई लाभ नहीं। ऐसे काम सभा समितियोंकी भाँति ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अत ऐसे कामोंमें हाथ न डालना। अतः यह निश्चित है, कि मैं निःस्वार्थ कर्म्म नहीं कर सकता। परन्तु आप घबड़ाते क्यों हैं? मै आपसे वह चीज माँगूंगा, जिससे आपकी किसी प्रकारकी हानि न होगी और आपका जीवन आजकी अपेक्षा कहीं अधिक सुखकर हो जायगा।"

मैं उसकी बातें जितना ही सुनता था, उस ओर उतना ही खिंचता चला जाता था। यह बात तो मेरे ध्यानसे उतर ही गयी थी, कि मैं एक दस्युसे बातें कर रहा हूँ। मेरे हृदयपर उस

समय एक प्रकारका पर्दा पड गया था। अत मैंने कहा,—"तुम्हारा नाम मैंने पहले कही सुना है—कहाँ सुना है, यह याद नहीं आता। परन्तु तुम्हारी बातोंसे मालूम होता है, कि तुम डाकुओंके साथी हो, तुम्हारी बातपर कैसे विश्वास हो?"

वह बोला—"अपने स्वार्थसे। यदि अपना जीवन बचाना हो, यदि अपनी स्त्रीकी रक्षा करनी हो, यदि अपनी धन सम्पत्ति तथा बाल बच्चोंको जिलाना हो, तो मेरी बात मानो, नहीं तो मेरी बलासे, मैं जाता हूँ, शीघ्र उत्तर दो।"

मैं—तुम क्या चाहते हो?

इसी समय एक जोरकी चीख सुन पडी। ऐसा मालूम हुआ, कि मेरे बगलवाले कमरेमें ही मेरी स्त्री चिल्ला रही है।

मोहनचन्दने उस चीखको सुनते ही कहा—"देखो, अब विशेष बातें करनेका समय नहीं है। मालूम होता है, कि ये तुम्हारी स्त्रीको यहाँ पकड लाये हैं। अब शीघ्र बताओ, मेरी इच्छानुसार कार्य किया चाहते हो या नहीं।"

मैंने कहा—"अपनी इच्छा तो बताओ।"

उसने तुरन्त ही कहा—"आप मेरे दलमें आनेकी प्रतिज्ञा कीजिये। नहीं, तो

मैंने कहा—"मुझे स्वीकार "

इसी समय किसीने जोरसे कहा—"सावधान!"

आवाज परिचित सी मालूम हुई।

मैं सुनकर चौंक पडा। किसी किसी समय अज्ञानवश दिन

भी अहित मालूम होता है। बोला--"यह कौन है? यहाँ यह कौन आ पहुँचा?"

मोहन—बताओ, क्या कहते हो?

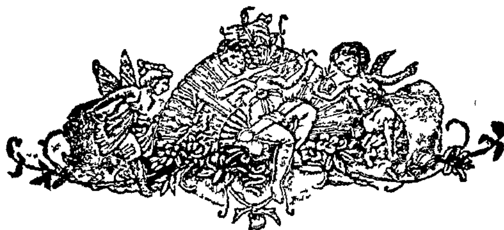
मैं—मुझे स्वीकार नहीं है।

मोहन—क्यों?

मैं—कोई सावधान कर रहा है। अवश्य ही तुमलोगोंकी इसमें कोई चातुरी है। मैं अपनी स्त्रीके मोहमें पड़कर अपनी आत्माका हनन नहीं किया चाहता।

इतना सुनते ही मोहनचन्द उठ खड़ा हुआ और बोला—"न जाने किसने सावधान कर दिया, इसीसे बिगड़ गये। मैं देखता हूँ, कि कहनेवाला कौन है।"

इतना कहकर वह तुरन्त ही वहाँसे चला गया। बाहरसे फिर ज्योंका त्यों दरवाजा बन्द हो गया।



अट्ठारहवाँ परिच्छेद ।

संयमसिंहकी आत्मकथा ।

मायापुरी लौटकर मेरी ठीक वही अवस्था हो गयी, जो अनेक दिनोंका परिश्रम अकारथ जाते हुए देखनेवाले मनुष्यकी हो जाती है। क्योंकि मैंने देखा कि मायापुरी उजाड हो रही है, उसपर एक ऐसी निस्तब्धता छा रही है, लोग कुछ ऐसे शङ्कित दिखाई देते हैं और चारों ओर इस तरहकी भयङ्करता दीख पडती है, जिससे मालूम होता है, कि यहाँ इन्हीं कई दिनोंमें कोई भीषण परिवर्त्तन हो गया है।

हम दोनोंका इतने दिनोंका परिश्रम, चेष्टा तथा विपत्तिमें पडकर डाकुओंको पकडना, सभी बातें इन्हीं कई दिनोंमें जलके बुलबुलेके समान नष्ट हो गयीं, जीवानन्दका कहीं पता न था, हमारे साथी सहचर भी न जाने किधर गायब हो गये थे, मकानके सब सामान अस्त व्यस्त अवस्थामें इधर-उधर बिखरे पडे थे और जितने बहुमूल्य सामान थे, सभी गायब हो गये थे। किसी मनुष्यका पता न था। यह अवस्था देखकर मैं समझ न सका, कि यह क्या हो गया।

मैं चिन्तित होकर फिर अपनी खाटपर जा बैठा। बैठते ही दृष्टि तकियेके पास रखे हुए, एक पत्रपर जा पडी। पत्रपर मेरा ही नाम लिखा हुआ था। मैंने पत्र खोलकर पढ़ा। यह लिखा था—

"संयमसिंह! अपनी बुद्धिमत्ताका परिचय अब तुम्हें मालूम हो गया होगा। सावधान! हम लोगोंपर अत्याचार करनेवालोंकी यही अवस्था होती है।

स्वार्था।"

तो क्या स्वार्था भाग निकली? अभिलाषसिंह भी कारागारसे मुक्त हो गया? मैं दौडता हुआ थानेमें जा पहुंचा, परन्तु थानेकी अवस्था और भी विचित्र हो रही थी। वह इस समय थाना था या भूतखाना सो समझमें न आता था।

एकाएक यह क्या हो गया! कौनसी विपत्ति आ पहुंची!! यह कैसा काण्ड हो गया!!!

मैंने देखा, कि थाना एकदम सूना हो रहा है—दफ्तर, सिपाहियोंके रहनेके स्थान—सभी शून्य पड़े हैं और जिस कोठरीमें मैंने अभिलाषसिंहको कैद किया था, उसमें इस समय थानेका वृद्ध और प्रवीण दारोगा कैद था, तथा जिसमें अभिलाषसिंहके साथी कैद थे, उसमें उनके बदले थानेके सिपाही बडी बेदर्दीसे भरे थे और जिसमें स्वार्था कैद थी, उसमें एक स्त्रीकी लाश पडी थी, जिसके सिरका पता न था।

यह दशा देखकर मनमें एकाएक यह ख्याल उत्पन्न हो गया, कि कहीं प्रज्वलित प्रतिहिंसाग्नि शिखा जीवानन्दकी स्त्रीको तो न चाट गयी। जाँच करने लगा—परन्तु कुछ स्थिर न कर सका। सभी घटनायें विलक्षण, भयङ्कर, तथा आश्चर्य-प्रद मालूम होने लगीं।

वहाँसे हटकर मैं उस कोठरीमें गया, जिसमें दारोगा साहब कैद थे। दारोगा साहबकी इस समय विचित्र अवस्था हो रही थी। हाथ पैर बँधे वह फर्शपर लुढके पडे थे। मुँहसे बोली न निकलती थी।

बाहर निकल, हाथ मुँह धो, जब वे कुछ स्वस्थ हुए, तब मैंने पूछा—"आपकी यह दशा कैसे हुई?"

वृद्ध दारोगाने कहा—"बाप रे बाप! दारोगाई करते ही मेरे बाल पक गये, लेकिन ऐसे चक्करमें आजतक कभी न पड़ा था। उधर आप गये, इधर मायापुरीमें तो मानों आफत मच गयी। दम दमपर लूट मारकी खबरें आने लगीं। मैं कहाँ कहाँ जा सकता था? जिन सिपाहियोंको भेज देता था, वे फिर लौटकर न आते थे। नहीं जानता, कि मायापुरी उन्हें निगल गयी या क्या हो गये?"

सिपाहियोंका नाम सुनते ही मुझे उन सिपाहियोंको कारा-मुक्त करनेका खयाल हो आया। दारोगाको साथ लेकर मैं उस कोठरीकी ओर गया, जिसमें सिपाही कैद थे। एक ही कोठरीमें कई मनुष्योंके कैद रहनेके कारण उनकी बुरी अवस्था हो रही थी, मानों अँचार डाला गया था। कुशल इतनी ही थी, कि अँचार अभी गला न था

अस्तु, उन्हें बाहर निकाल, तथा जल इत्यादिका प्रबन्धकर हमलोग फिर एक स्थानपर आ बैठे।

दारोगा साहबने कहा-"अभी तो बहुतसे मनुष्य गायब हैं।"

मैंने कहा—"अवश्य ही होंगे। पहले आप अपनी दुरवस्था का कारण बताइये। मैं जाननेके लिये बड़ा व्यग्र हो रहा हूँ।"

दारोगा साहबने कहा—"अच्छा सुनिये, रात लगभग पहर भर बीती होगी, हमलोग सभी सावधान तथा अपने अपने स्थानपर ही बैठे थे, कि इसी समयसे लगातार उपद्रवका समाचार मिलना आरम्भ हो गया। कोई कहता, कि अमुकके यहाँ डाकू डाका डाल, बहुतसी सम्पत्ति ले गये, कहीं आपसमें दो मनुष्योंके लड़ने और मार काट करनेका ही समाचार मिलता, कहींसे चोरीकी ही खबर आती। इसी तरह ग्यारह बजेके भीतर ही भीतर बीसो खबरें आयीं और मैं भी बराबर नगर-निवासियोंकी सहायताके लिये सिपाहियोंको भेजता गया। परन्तु उन्हें लाख बार समझा देनेपर भी कोई भी सिपाही लौट-कर पूरी-पूरी खबर देनेके लिये न आया।

"रातके ग्यारह बज गये थे। मैं चिन्तित चित्तसे इसी कोठरीमें बैठकर उन भेजे हुए सिपाहियोंके सम्बन्धमें विचार रहा था, कि उसी समय एकाएक दो मनुष्य मेरे सामने आ पहुंचे। एक हिन्दू जैसा मालूम होता था, परन्तु दूसरा मुसलमान था।

"मैंने उन्हें भले-मानस समझकर बड़े आदरसे अपने पास बैठाकर समाचार पूछा। परन्तु "

मैंने कहा—"अच्छा वे दोनों, मनुष्य जो आपके पास आये थे, उनका रूप-रङ्ग कैसा था?"

दारोगा साहबने कहा—"उनमें जो हिन्दू था, उसका रङ्ग कुछ साँवला था, गर्दन सदा ऊँची उठी रहती थी, आँखें कुछ बडी थीं तथा उनमें हल्की लालिमा दिखाई देती थी। कपडे-लत्ते बडे ही बहुमूल्य पहने था और उसकी चाल ढालसे ही यह मालूम होता था, कि वह भी अपनेको कुछ समझता है।"

"उसके साथका दूसरा मनुष्य जो मुसलमान था, उसका चेहरा तो देखनेमें बदसूरत न था, पर रङ्ग कुछ साँवला था। भौंहोंमें बराबर ऐंठन पडी रहती थी, मानों किसी गम्भीर चिन्तामें ही पडा हो, उसके दोनों ओठ फडकते रहते थे, मानों मन ही मन कुछ सोचता और बडबडाता हो। वह मेरे पास आकर कुछ देरतक यद्यपि चुपचाप बैठा रहा, परन्तु उतने समयमें भी चिन्तासे शून्य न था।"

दारोगा साहबकी बात सुनकर कुछ समझमें न आया, कि ये दोनों कौन थे। मैंने पूछा—"फिर क्या हुआ?"

दारोगा साहबने कहा—"उनमें पहला बोला कि मेरा नाम गर्वसिंह है। मैं आपके पडोसमें ही रहता हूँ। (दूसरेकी ओर इशाराकर) ये मेरे अन्तरङ्ग मित्र हसदअली मियाँ हैं। आज हम दोनों एक ही स्थानपर बैठकर "

मैंने कहा—"आपलोगोंका नाम तो आजतक मैंने सुना नहीं। आप लोग क्या करते हैं और इस समय यहाँ क्यों आये हैं?"

वह बोला—"आप भला हमलोगोंका नाम कैसे सुनते? यदि आप आँखें खोलकर काम करते और यहाँके अधि

वासियोंकी खोज-खबर रखते, तो आज मायापुरीकी क्या यही अवस्था होती?"

उसने ऐसे ढङ्गसे और इतने गर्वित भावसे यह बात कही, कि मनमें बड़ा दुःख हुआ। कुछ क्रोध भी चढ़ आया। इतनी विशाल मायापुरीका मैं दारोगा, इतना पुराना अनुभव, इतने दिनोंकी नौकरी—मुझे ही कलका छोकड़ा ऐसी बात कह देगा। मैंने कुछ रूखे स्वरमें कहा—"मुझे ऐसी बात कहनेका आपको क्या अधिकार है? क्या आप जानते नहीं, कि इसी काममें मेरे बाल पक गये?"

गर्वसिंहके कुछ उत्तर देनेके पहले ही हसदअलीने कहा—"जानते हैं, नही जानते तो ऐसी बात ही न कहते। आपकी यह हरामकी दारोगाई देखकर मेरा तो हमेशा ही जी जला रहता है। शहरकी क्या हालत हो रही है, उसपर तो आपका कोई खयाल है नहीं, अपना पेट भरनेसे काम है। सच कहता हूँ, दारोगा साहब! आपका काम तो आपसे अच्छा मैं कर सकता हूँ।"

मैंने कुछ अप्रसन्न भावसे कहा—"मेरी आलोचना करनेकी आपको कोई आवश्यकता नहीं है। अपना काम बताइये?"

गर्वसिंहने कहा—"सुनेगा कौन? आप तो कानमें तेल डालकर बैठे हैं।"

मैंने बिगड़कर कहा—"खबरदार! मेरी शानमें अब एक शब्द भी न कहना। चले जाओ, यहाँसे।"

मेरे मुँहसे इतना निकलना था, कि इसी समय एकाएक कई

विकट वेशधारी मनुष्य थानेमें घुस आये। उस समय वहाँ तीन चार सिपाही थे। और सब नगर-निवासियोंकी सहायता और रक्षा करने गये हुए थे। उन सिपाहियोंने उन्हें रोकना चाहा। परन्तु उन सबने मार पीट आरम्भ की। यह देखकर मैंने गोली चलानेकी आज्ञा दी। बस इसी समय बड़े वेगसे वे दोनों मुझपर झपट पड़े। मैं किसी तरह भी अपनी रक्षा न कर सका। उन सबने मेरे हाथ पैर बाँधकर, मुझे वहीं एक ओर डाल दिया। इसके बाद ताला तोड़कर अभिलाषसिंहको निकाला और उसीमें मुझे कैद कर दिया। इसके बाद क्या हुआ, मुझे कोई खबर नहीं, क्योंकि उस समय मैं बहुत ही घबड़ा गया था।"

दारोगा साहबकी बातोंसे कुछ भी पता न लगा। अब मैं सिपाहियोंकी ओर मुड़ा। एक एकको बुलाकर हाल पूछने लगा परन्तु इसके सिवा और कुछ न मालूम हुआ; कि शहरमें उस दिवस कई जगह उपद्रव हुए और जहाँ जहाँ वे रक्षाके लिये गये, वहीं उपद्रवियोंने धोखा देकर उनपर ही आक्रमण किया और इस तरह वे सब भी इस दुर्गतिको प्राप्त हुए। वह लाश किस स्त्रीकी थी और किस तरह यहाँ आ पहुची, कुछ भी मालूम न हुआ और न यही मालूम हुआ, कि वे दोनों मनुष्य कौन थे और वे अपना असली परिचय दता गये हैं या नकली। लाचार, मैं दारोगा साहबको समझा-बुझाकर और सावधान रहनेका परामर्श दे, अपने निवास स्थानकी ओर चला आया।

...चला तो आया, परन्तु मनमें उवलते हुए जलकी तरह चिन्ता ...ल रही थी। बहुत कुछ विचारनेपर भी स्थिर न कर सकता ..., कि क्या उपाय किया जाये। अस्तु, योंही कुछ समय ...तनेपर, मैं भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त हो, एक देहाती कृषकका ...श बनाकर बाहर निकल पडा।

मैं अपने स्थानसे निकलकर सीधा वृद्ध धर्म्मसिंहके मकानपर ...या। धर्म्मसिंह मिले। उनसे पूछनेपर भी इसके अतिरिक्त और ...कुछ पता न लगा, कि परोपकारसिंह और शान्तिपर किसी ...प्रकारकी आपद नहीं आयी है, वे कहीं गये हैं, पर कहाँ गये हैं, सो वृद्ध धर्म्मसिंह न बता सके।

वहाँसे भी खाली हाथ ही लौटना पड़ा। वहाँसे निकलकर मैं, उस दिन कहाँ कहाँ उपद्रव हुआ था, इसका पता लगाने लगा, बाजारमे निकलकर यही जाँचने लगा। बाजारमें भी आज चारों ओर यही चर्चा थी। सभी भय-प्रकम्पित शब्दसे उस रात्रिकी घटनाओंका वर्णन कर रहे थे।

इसी तरह पता लगाता हुआ मैं एक धनी मनुष्यके दरवाजे-पर जा पहुँचा। मकान खूब ठाट-बाटसे सजा था। बाहरसे ही देखनेसे मालूम होता था; कि यह किसी लक्ष्मीके कृपा पात्रका आवास है। उसी स्थानपर यह भी सुना, कि कल रातमें डाकू यहाँ बड़ा उपद्रव मचा गये हैं। बहुतसी सम्पत्ति भी लुट गयी है। साथ ही कई मनुष्य आहत भी हैं।

जिस वेशमें मैं था, उस वेशमें भीतर जाना कठिन था।

इसलिये एक एकान्त स्थानमें जाकर, मैंने झटपट अपना वेश बदल दिया। अब खासा पुलिसका मनुष्य बनकर मैं दरवाजेपर जा पहुँचा और पहरेदारसे बातेंकर भीतर चला गया।

भीतर जाते ही मैंने देखा, कि एक बडा ही सुन्दर नवयुवक एक कमरेमें एक पलङ्गपर पडा है, उसका माथा फट गया है, जिससे इस समय भी खून बह रहा है और उसके सिरहाने बैठ कर परोपकारसिंह उसका माथा दबा रहे हैं।

मैंने इशारेसे परोपकारसिंहको अपने पास बुलाया। परोपकारसिंह मेरे पास आ पहुँचे। बोले—"आपको मैं पहचान गया। आप कब आये?"

मैंने कहा—"आज ही आया।"

परोपकारसिंहने कहा—"यहाँ तो बडा ऊधम मच गया था।"

मैंने कहा—"हाँ, मालूम तो यही होता है। ये कौन पडे हैं।"

परोपकारसिंहने कहा,—"क्या बताऊँ? इनका नाम रिपुदमनसिंह हैं। बडे धनी हैं। लाखों रुपये सालकी आमदनी है। बडे आदमियोंके सभी लक्षण वर्त्तमान हैं। धनियोंके भूषण ऋणकी भी कमी नहीं है। परसों रातमें एकाएक न जाने आपको क्या हो गया, बेतरह बिगड गये। जमीन्दारीके कई मनुष्य खजाना चुकाने आये थे। लेन-देनमें बाकी बकाया रहता ही है, आपने अपने धनके मदमें आकर उन्हें बेंतसे पिटवाना आरम्भ किया। भीतर महलमें खबर पहुँची, तो मालकिनने मना कराया। आपने उसे भी अपने मदका मजा चखा दिया। बेचारी अभीतक पडी पड़ी

रो रही है। वहाँसे बाहर निकले, तो फिर वही अवस्था—अपने अधीनस्थों—रय्यतोंपर प्रहार करना आरम्भ किया। इसी समय कई मनुष्य बाहरके पहरेदारको गिरा, जबर्दस्ती इस मकानमें घुस आये। उनके आगे आगे गर्वसिंह नामक एक डाकू था। उसने आते ही इनपर आक्रमण किया। रय्यतोंने भी उसका साथ दिया। आप अपने मदमें मदमाते तो थे ही, ज्योंही उसके सामने गये, कि उसने ऐसा डण्डा मारा, कि माथा फट गया। इसके बाद वह तथा उसके साथी बहुतसा धन लूटकर भाग गये। इधर आपके दुर्व्यवहारसे आपके आदमी ऊबे हुए थे ही, डाकुओंको देखकर सभी भाग गये। एक वही रह गया है, जो दरवाजेपर पहरा दे रहा है। संयोगसे मुझे खबर मिल गयी और मैं यहाँ आ पहुँचा। तबसे यहीं हूं।"

मैं—गर्वसिंहका नाम तो मैंने पहले भी सुना था और कल दारोगा साहबके मुँहसे भी सुन चुका हूँ, पर वह यहाँ कैसे आ पहुंचा?

परोपकारसिंहने कहा—"गर्वसिंह बड़ा विचित्र मनुष्य है। धनियोंपर तो वह सदा ही ताक लगाये बैठा रहता है, रूपसी सुन्दरियोंको उससे अपनी लज्जा बचाना कठिन हो रहा है और बड़े बड़े बली और प्रभुतावानोंपर वह इस तरह चढ़ बैठता है, जिस तरह मत्त-मातङ्गपर सिंह। वह किस समय कहाँ रहता है, इसका पता लगाना कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि धनियोंके राजमहल, रूपसियोंके रङ्गमहल और बली तथा प्रभुता

वानोंके आनन्द निकेतनोंमें वह प्राय दिखाई दिया करता है।

मैंने कहा—"तब वह अपने नामके अनुसार ही काम करता है। अच्छा,उसका हुलिया तो जरा बताइये।"

परोपकारसिंहने उसका रूप रंग जो वर्णन किया, उससे दारोगा साहबका वर्णन मिल गया। मैंने थानेकी दुर्दशाका सब हाल परोपकारसिंहसे कहा। सुनकर वे बोले—"आपका असमयमें चला जाना अच्छा न हुआ।"

मैंने अपनी सब बातें उनसे कहीं। जीवानन्दके गायब होनेका समाचार भी कहा। सुनकर परोपकारसिंहने कहा—"उनपर भी अवश्य ही किसी दस्युने अत्याचार किया है और किसी चालसे फँसा रखा है। परन्तु किसने यह काम किया?"

मैंने अपने घरसे निकलने, पथमें डाकुओंका आक्रमण, उस स्त्रीका आना, घरमें एकाएक जीवानन्दकी स्त्रीका गायब हो जाना, सभी बातें उनसे कह सुनायीं। सुनकर परोपकारसिंहने कहा—"मुझे एक दूसरा ही सन्देह हो रहा है। मुझे मालूम होता है, कि जीवानन्दको फँसानेके लिये ही कोई न कोई दस्यु जीवानन्दकी सहधर्मिणीको उठा लाया है। परन्तु उस दिवस रात्रिमें, जैसा आप कह रहे हैं, गर्वसिंह और हसनअली तो यहीं थे अभिलाषसिंह कैद था और कामरूपसिंहका पता ही नहीं, तब हो न हो, यह मोहनचन्द्रकी लीला है। मोहनचन्द्रने स्त्रीके मोहमें फँसाकर जीवानन्दको फिरसे पकड़नेकी चेष्टा की है।"

मैंने कहा—"हो सकता है।"

परोपकारसिंह बोले—"घटनाओंपर विचार करनेसे तो ऐसा ही मालूम होता है। अब मोहनचन्द्का पता लगाना अपना काम है। मैं इस समय आपके साथ नहीं जा सकता। मेरे जानेसे इन्हें बडा कष्ट होगा।"

मैंने कहा—"नहीं, मैं आपके कार्यमें बाधा नहीं पहुंचाया चाहता, आप यहाँ रहिये। मैं समय-समयपर आपसे मिल जाया करूँगा। अच्छा, शान्ति अच्छी है? उसपर तो कोई उपद्रव फिर न हुआ?"

परोपकारसिंहने मुझे धन्यवाद देते हुए कहा—"शान्ति सुख-पूर्वक अपने कार्यमें लगी है। वह भी यहाँ दीन-दुखियोंकी सेवामें ही रत है? कहाँ हैं, सो मैं बता नहीं सकता।"

इसी समय वह युवक एक बार जोरसे कराह उठा। परोप-कारसिंह दौडकर उसके पास चले गये और मैं वहाँसे बाहर निकल आया।



उन्नीसवाँ परिच्छेद।



जीवानन्दकी आत्मकथा।

मोहनचन्दके चले जानेपर, एक बार फिर वैसी ही करुणाजनक चीख सुन पड़ी। इसके बाद ही मेरी स्त्री—आवाजसे मैं अच्छी तरह पहचान गया, कि मेरी स्त्रीका ही करुण स्वर है—बोली,—"हाय! तुमलोग मुझे क्यों कष्ट देते हो, मेरा प्राण ही ले लो तो निश्चिन्ती हो जाये। हाय! क्या इस समय कोई मेरी रक्षा करनेवाला नहीं है?"

किसी अपरिचित कण्ठसे निकल पड़ा—"नहीं, कोई नहीं, अभी क्या हुआ है, यदि मेरी बात न मानोगी, तो तुम्हारे सामने ही तुम्हारे पुत्र और पति दोनोंको ही यमपुरी पहुंचा दूँगा।

इसके बाद जोरसे किसी चीजके गिरनेका शब्द सुन पड़ा। और साथ ही मेरी स्त्री एक बार फिर जोरसे चिल्ला उठी—"नहीं नहीं, उस अबोध बालकने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, उसे छोड़ दो, उसे न मारो।" इतना कहती कहती वह जोर जोरसे रोने लगी। इसके बाद एकाएक रुलाईका शब्द बन्द हो गया और फिर घोर सन्नाटा छा गया। मैं समझ गया, वह दुःखके वेगसे बेहोश हो गयी।

दस्युओंपर एक बार बड़ा क्रोध आया। परन्तु अपनी असमर्थतापर ध्यान जाते ही सब क्रोध हवा हो गया। इसके

बाद ही एकाएक परिताप आरम्भ हुआ। मनकी गति, हृदयका भाव-प्रभाव दूसरी ओर ही बहने लगा। मनमें सोचने लगा "शायद मेरे एकमात्र पुत्रको भी पकड़ लाये हैं और उसे मार डाला है। इसीसे वह इस तरह चिल्लाकर बेहोश हो गयी है।"

बड़ी शानसे मैंने मोहनचन्द्से कहा था—"मैं अपनी स्त्रीके मोहमें पडकर अपनी आत्माका हनन नहीं किया चाहता परन्तु इस समय हृदय कातर हो उठा, बड़ी पीडा उत्पन्न हो गयी। मन ही मन सोचने लगा, वृथा ही मैं क्यों कष्ट झेलूँ? मरनेपर क्या होगा, सो कौन जानता है? इस संसारमें समस्त जीवन दु खमें बिताकर परलोकमें—स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करनेकी इच्छा करना, वास्तवमें पागलपन ही मालूम होता है। मैं देखता हूँ, कि जितने धर्मात्मा हैं, वे सदा इस बातकी चेष्टा किया करते हैं, कि उनके द्वारा कोई अपकर्म्म न हो। सदा ही कष्ट भोगा करते हैं, सदा ही 'तवेकी तेरी और हाथकी मेरी'का उन्हें सामना करना पडता है। मैं यह सोचकर मन ही मन उस सावधान करनेवालेको गालियाँ देने लगा। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास हो गया था, कि यदि मैं मोहनचन्द्की बात मान लेता, तो वह मुझे अवश्य ही छुडा देता।

सोचते सोचते यह अन्तिम वाक्य कुछ जोरसे मेरे मुँहसे निकल गया। साथ ही मैंने देखा, कि मेरी काल कोठरीका दरवाजा फिर खुला और मोहनचन्द् मुस्कुराता हुआ, भीतर चला आया।

इसके बाद मेरे पास आकर बोला—"आप किस फेरमें पडे हैं ? बाहर तो कोई नहीं है। किसने सावधान कहा था ?"

मैंने कातर स्वरमें कहा— "चूल्हेमें जाय सावधान कहनेवाला ! उससे मुझे कोई मतलब नहीं, परन्तु आप यह बताइये, कि क्या आप मेरी स्त्रीकी रक्षा कर सकते हैं ? क्या आप इस कराल दस्यु-मण्डलीके कठोर करोंसे मेरे पुत्रको बचा सकते हैं ?"

मोहनचन्दने गर्वसे अपनी गर्दन ऊँचीकर कहा—"क्या इसमें भी आपको कोई सन्देह हैं ? क्या अब भी आपको मुझपर विश्वास नहीं ?"

मैं-विश्वास नहीं होता।

मोहन—तो परीक्षा कर देखिये।

मैंने कहा—"नहीं, परीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं इस समय आत्म-विस्मृत सा हो रहा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी बात माननेके लिये तय्यार हू ?"

मोहनचन्दने कुछ आश्चर्यमय भाव दिखाते हुए कहा— "क्या वास्तवमें तय्यार हैं ?"

मैंने अपने मनपर एक प्रकारका विशेष जोर देकर कहा—"हाँ।"

मोहनचन्दने कहा—"तो समझ लीजिये, कि आपके दुःखके दिवस भी सपनेकी सम्पत हो गये। अब कभी आपको दुःखकी हवा भी न लगेगी।"

मैंने कहा—"आशा तो ऐसी ही है।"

मोहनचन्द्रने उसी समय दरवाजेपर जाकर हाँक लगायी। तुरन्त ही एक मनुष्य वहाँ आ पहुँचा। उसके आते ही मोहनचन्द्रने कहा—"उस बगलके कमरेमें जो स्त्री कैद है, उसे यहाँ ले आओ।"

वह मनुष्य चला गया। क्षणभर बाद ही मेरी स्त्रीको लेकर वहाँ आ पहुँचा। उसको देखते ही मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। बिचारी सूखकर काँटा हो रही थी। उसे देखनेसे ही मालूम होता था, मानों महीनोंकी बीमार है। शरीरपर लावण्यका नाम नहीं था, उसके बदले विषादकी छाया झलक मार रही थी। मुझे देखते ही, मेरे पैरोंपर गिरकर वह रोती हुई बोली—"हाँ! इन लोगोंने मेरे बच्चेको मार डाला।"

सुनते ही शरीरमें एक प्रकारकी सनसनी सी उत्पन्न हो गयी मैंने आरक्त नेत्रसे मोहनचन्द्रकी ओर देखा। मोहनचन्द्र बोला—"झूठी बात है। तुम्हें धोखा देनेके लिये ही यह चाल चली गयी थी। तुम्हारा पुत्र सही सलामत, संयमसिंहके घरमें मौजूद है। जाओ, अब घर जाओ। हमारा उद्देश्य सिद्ध हो गया! आजसे कोई तुम्हारा बाल बाँका न कर सकेगा। जीवानन्दजी दो चार दिन बाद जायँगे।"

मैं इस समय मोहनचन्द्रके फेरमें था। उसने इस शानसे यह बात कही, कि अविश्वास करनेकी इच्छा न हुई। इसी समय मोहनचन्द्रने अपने उसी साथीको लक्ष्यकर, जिसके साथ मेरी स्त्री आयी थी, कहा—"इनके दलके एक मनुष्यको कैदखानेमें

निकाल लाओ।" उसी समय हमारा सहचर बलभद्रसिंह बुलाया गया। मोहनचन्दने अपना एक मनुष्य साथ देकर बलभद्रसिंहके साथ मेरी स्त्रीको घरकी ओर रवाना कर दिया।

इसके बाद मैं मोहनचन्दके साथ उस कैदखानेसे बाहर निकला। हम दोनों ही ऊपरके एक दूसरे सजे सजाये कमरेमे जा पहुँचे। मेरी बडी खातिरदारी आरम्भ हुई, खूब स्नान कराया गया। वस्त्र बदले तथा आनन्दसे भोजन किया।

इस समय रात्रिके अनुमानत नौ बजे होगे। भोजनसे निश्चिन्त होनेपर मोहनचन्द मुझे साथ लिये, एक ऐसे कमरेमे जा पहुँचा, जो बडे ही बेशकीमत सामानोंसे सजाया हुआ था। यहाँ आकर हम दोनों गद्दी तकियेके सहारे बैठ गये। थोडी ही देर बाद मैंने देखा, कि अपने अपने साज लिये, कई, मनुष्य आ पहुँचे और उनके पीछे ही पीछे एक कामिनी भी आ पहुची।

कामिनी गजबकी सुन्दरी थी। मायावतीको मैंने देखा था, रतिसे बातें कर चुका था और कामना और वासनाके ससर्गमें तो बहुत दिन रहना पडा था। परन्तु इनमें कोई भी इस सुन्दरीकी समता न कर सकती थी। पहले भी कह चुका हू और फिर भी वही कहता हू, कि मायावतीका रूप यदि शरद सरिताकी शान्त धारा जैसा था, तो रतिका बरसाती लहराती नदी जैसा। दोनोंहीकी सुन्दरतामें आकर्षण था। परन्तु यह सुन्दरी उन दोनोंसे ही निराली थी। वसन्त ऋतुमें प्रकृतिके लीलानिकेतनके खिलौने, वृक्षोंके नवीन नवीन कोमल किशलय,

तरह देखनेवालोंका हृदय एकाएक अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, इसने भी उस कमरेमें पदार्पण करनेके साथ ही, उसी तरह मेरा हृदय आकर्षित कर लिया। सुन्दर-स्वच्छ जल पूरित सरोवरमें चन्द्रमाकी चाँदनी जिस तरह झिलमिलाती हुई प्रतिविम्बित होती है, उसी तरह इस कामिनीके कमनीय-रूपकी स्निग्ध छटा मेरे मानस-सरोवरपर झिलमिला उठी। उसमें छिपी हुई कमलिनी उस प्रकाशकी रेखाको देखते ही खिल उठी और उसके खिलते ही मैं अपना इतने दिनोंका दुःख, कष्ट और सन्ताप भूल गया तथा मेरा चेहरा भी खिल उठा। परन्तु मोहनचन्द मेरे चेहरेके भावोंका उतार चढ़ाव बराबर देखता था, मानो मेरे हृदयके भावोंको उपलब्ध कर रहा था।

हाँ, ऐसी ही वह मन-मोहिनी कामिनी थी। बाल रविके समय खिले हुए सुन्दर सरोज जैसे भले मालूम होते हैं, हल्का गुलाबीपन छाया हुआ उसका मुखचन्द्र भी वैसा ही भला मालूम होता था। सवेरा होते ही जिस तरह पद्म-पुष्पोंपर भ्रमर दौड़ पड़ते हैं, उसके घुंघुराले केशोंके कुछ गुच्छे भी उसी तरह कपाल और कानके पीछेसे गालोंपर इस तरह इधर उधर उलझ पड़े थे, मानों भँवरे ही रसपानके लिये आ चिपटे हों। उसके पैर चचल नहीं, जमीनमें धीमे पड़ते थे, परन्तु ऐसा मालूम होता था, कि चंचलता पैर छोड़कर नेत्रोंमें आ छिपी है। अस्तु, बड़े नाजसे धीरे-धीरे पैर रखती हुई, वह कामिनी हम दोनोंके सामने आ, एक बार तिरछी चितवनों सेहमारी ओर देखकर,

मुस्कुराती हुई, मोहनचन्दका इशारा पा, हम दोनोंसे कुछ दूरीपर इठलाती हुई बैठ गयी।

मोहनचन्दका उसका परिचय था। मोहनचन्द उससे बातें करने लगा, परन्तु मैं अपने स्थानपर बैठकर उसकी रूप-सुधा पान करने लगा। परन्तु मैंने यह अवश्य देखा, कि सुन्दरी यद्यपि बातें मोहनचन्दसे करती जाती थी, परन्तु रह रहकर बीच बीचमें मन्द मुस्कान तथा तिरछी चितवनों द्वारा मेरा सम्मान करनेसे भी न चूकती थी।

इसी समय मोहनचन्दने कहा—"जीवानन्दजी! क्या देख रहे हैं?"

मैंने कहा—"देख रहा हूँ, कि तुम लोगोंके पास रूप और लावण्यका तो भण्डार भर रहा है।"

मोहनचन्दने पूछा—"सो कैसे?"

मैंने कहा—"उस दिवस उत्सवमें जो नायिका देखी थी वह भी कम सुन्दरी न थी और यह तो मानो चन्द्रलोकसे उतर आयी है"

मोहनचन्दने हँसकर कहा—"अब आपके पास भी इनकी कमी न रहेगी।"

मैंने कहा—"सो कैसे?"

मोहनचन्द—इसलिये कि आप भी अब मेरे साथी हो गये।

इसके बाद मोहनचन्दने उसे गानेका इशारा किया। वह जैसी ही रूप-सुन्दरी थी, वैसी ही गान-सुन्दरी भी थी। गले

और सारंगीके सुरमें कुछ अन्तर ही न मालूम होता था। लगभग बारह बजेतक गाना होता रहा। इसके बाद यह गान दरबार बर्खास्त हुआ। मोहनचन्दने मुझे मेरा शयन-कक्ष दिखा दिया और स्वयं दूसरी ओर चला गया।

मैंने उस कमरेमें जाकर देखा—शय्या बिछी है, उसपर स्वच्छ दुग्ध फेनके समान बिछावन बिछा है और रात्रिके उपयोगी सभी सामान वहाँ रखे हैं। मैं आनन्दसे उस कमरेमें जाकर पलङ्गपर पड़ रहा।

पड़ तो रहा, पर आज नींद तो उस सुन्दरी कामिनीने चुरा ली थी। ऐसी चतुर चित-चोरनी तो मैंने कभी देखी ही नहीं थी। मैं मानों उसीके ध्यानमें लीन हो, निद्राके आवेशमें उसी चित-चोरनीको देखने लगा।

कितनी देरतक स्वप्न-राज्यमें उस कामिनीको देखता रहा, कुछ खबर नहीं। एकाएक एक प्रकारकी ध्वनि सुनकर मेरी नींद खुल गयी। नींद खुलते ही मैंने देखा, कि मेरी कोठरीका दीपक बुझ गया है, परन्तु रात्रि आधीसे अधिक व्यतीत हो जानेके कारण, चन्द्रमा बहुत ऊँचे उठ आये हैं। उनकी निर्म्मल चाँदनी खिड़की तथा दरवाजेकी राहसे, मेरे कमरेमें भर गयी है और इसी चन्द्रमाकी चमकीली चाँदनीमें, दरवाजेके एक किवाड़से सटी हुई, वही चन्द्र वदनी कामिनी इस भावसे खड़ी है, कि उसके मुखपर चाँदनी तो पडती ही है, साथ ही उसका मुख ठीक मेरे सामने है।

अद्भुत छटा थी। उसने मेरा चित्त तो इसके पहले ही चुरा लिया था, उस बार रही-सही सभी पूँजीके गायब होनेका भी अवसर आ पहुँचा। मैं कुछ क्षणतक उसकी लावण्य छटा देखता रहा। वह कामिनी भी समझ गयी, कि मैं जाग रहा हूँ। अब वह पैर दबाती हुई मेरी शय्याके पास आ पहुँची।

उसे अपनी शय्याके पास देखकर मैं उठ बैठा। बोला—"तुम इस समय यहाँ क्यों आयी हो?"

उसने कहा—"हृदयकी बेकलीके कारण।"

मैंने कहा—"यदि मोहनचन्द्को मालूम हो जाये, कि तुम यहाँ हो तो ?"

उसने कहा—"इसमें सन्देह नहीं, कि मोहनचन्द मुझे खूब धन सम्पत्ति देता है पर धन-सम्पत्तिका लोभ दिखाकर क्या कभी हृदय वशीभूत किया जा सकता है ?"

मैंने कहा—"नहीं।"

कामिनीने एक बार कुटिल कटाक्षसे मेरी ओर देखते हुए कहा—"फिर क्यों पूछते हैं, कि यहाँ क्यों आयी हो ? सच बताऊँ—जिसे देखनेके साथ ही मन चचल हो उठा था, उससे कुछ क्षण, एकान्तमें मधुरालापकर हृदय शीतल करने आयी हूँ।"

मैंने कहा—"तुम कौन हो ?"

कामिनी बोली—"मेरा नाम मोहिनी है !"

मैंने कहा—"तुम कबसे मोहनचन्द्के यहाँ हो ?"

मोहिनी बोली—"इन बातोंको सुनकर क्या कीजियेगा ? ये

तें पीछे होंगी। इस समय कुछ दूसरी ही बातें करने आपके स आयी हूँ।"

मैं मन ही मन सोचने लगा—मुमकिन नहीं, कि दर्द इधर हो धर नहीं। मेरे मनमें मोहिनीका नेह उत्पन्न होते ही, उसके दयमें भी मेरी ओर आकर्षण उत्पन्न हो गया है।

न जाने मोहनचन्दने मेरे मनपर कैसा मोहनजाल डाल दिया ा, कि सब समझनेपर भी कुछ समझ न सकता था। आँख हते अन्धा बन गया था, मनकी गति कुछ दूसरी ही ओर पलट ायी थी और विचार-धारा तो उल्टी गंगाके समान ही बहने लगी थी। अस्तु,

मोहिनी निःसकोच होकर, मेरी शय्यापर बैठ गयी। हम दोनोंमें कितने ही प्रकारका रसालाप आरम्भ हो गया। उसकी मीठी-मीठी रसभरी बातोंसे हृदयमें एक विचित्र आनन्द उत्पन्न होने लगा। बातों हीमें रात बीत चली। निशावसानका समय देखकर मोहिनी उठकर चली गयी। मैंने मन ही मन मोहन-चन्दको बहुत कुछ धन्यवाद दिया।

दूसरे दिन सवेरे ही मोहनचन्द मेरे पास आ पहुंचा। उससे बहुत तरहकी बातें हुईं। बातोंहीमें उसने यह भी प्रकट कर दिया, कि रात्रिके समय मोहिनीके आनेका समाचार उसे मालूम है। साथ ही उसने स्पष्ट कह दिया, कि इससे वह कुछ अप्रसन्न नहीं है।

इसी तरह कई दिवस बीत गये। मोहनचन्दने मेरी खातिर-

दारीकी हद दिखा दी। मुझे ऐसा मालूम होने लगा, मानों मैं स्वर्गमें जा पहुंचा हूं। किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं, कोई कष्ट नहीं, दिनभर मोहनचन्द मेरे साथ रहता और जब मोहनचन्द न रहता, तब मोहिनी मेरा जी बहलाती।

इसी प्रकार कई दिन बीत गये। मैं अपने घरकी सुध भूल गया। स्त्री पुत्रके मोहमें पडकर मोहनचन्दके दलमें आ मिला था, परन्तु अब उनका स्मरण भी न आता था—स्मरण करनेका अवकाश भी न मिलता था, क्योंकि बराबर मोहनचन्द या मोहिनी, कोई न कोई, मेरे पास रहता ही था।

एक दिवस मोहनचन्द किसी कार्यवश बाहर गया हुआ था। मोहिनीके आनेका अभी समय न हुआ था, या शायद उसे इस बातकी खबर भी न थी, कि मैं अकेला हूं। मैं एक कमरेमें अकेला ही बैठा हुआ था। इसी समय किसीने पुकारा—"जीवानन्द!"

मैं चौंक पडा। यह कौन पुकार रहा है?

मैंने पूछा—"कौन?"

उत्तर—तुम्हारा शुभचिन्तक।

मैं—अपना नाम बताओ, सामने आओ।

उत्तर—आवश्यकता नहीं है।

मैं—फिर क्यों आये हो?

उत्तर—तुमसे कुछ पूछने।

मैं—पूछो, क्या पूछते हो?

उत्तर—जिन स्त्री-पुत्रकी ममतामें पडकर तुमने अपनेको पापी दस्युके सुपुर्द कर दिया, उनकी भी कुछ सुध है ?

मैंने कहा—"तुम कौन हो ? यह प्रश्न क्यों करते हो ?"

उत्तर—पहले ही कह चुका हूं, कि तुम्हारा शुभचिन्तक हूं। प्रश्न इसलिये करता हूँ, कि क्या एक गणिकाके मोहजालमें पड़कर अपना कर्त्तव्य त्याग दोगे ?

मैं—तुम्हारी आवाज पहचानी सी मालूम होती है, सामने क्यों नहीं आते ?

उत्तर—आवश्यकता नहीं। तुम्हें सावधान करने आया हूं। अभी कुछ विशेष नहीं बिगडा है। सावधान हो जाओ।

मैं—क्या कहना चाहते हो ?

उत्तर—उस गणिकाको त्यागो, अपना कर्त्तव्य पहचानो।

मैं—तो क्या मैं पाप कर रहा हूँ ?

उत्तर—अवश्य।

मैं—नहीं, मेनका भी गणिका थी, विश्वामित्र उसका संसर्ग कर पापी क्यों न कहलाये ? ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे।

उत्तर—जिसका हृदय मोह जालसे आवृत्त है, वह इन विषयोंको नहीं समझ सकता। परन्तु इतना तो तुम भी जानते हो, कि मेनकाके आगमनके कारण विश्वामित्रकी तपस्यामें बाधा पड गयी थी, उसी तरह मोहिनीके कारण तुम्हारे कर्त्तव्यमें भी बाधा पड रही है।

मैं—कर्त्तव्य ! कैसा कर्त्तव्य ? क्या प्रेम करना कर्त्तव्य नहीं

है? क्या सांसारिक सुखोंका रसास्वादन करना कर्त्तव्य नहीं है?

उत्तर--प्रेम करना कर्त्तव्य है; परन्तु पात्रसे। जिसके संसर्गसे लोक और परलोक न बिगड़े, जिससे धर्म्म कर्म्ममें बट्टा न लगे, जिससे मान सम्मानमें कलङ्क कालिमा न लग जाये। न कि गणिकासे--जिसका धर्म धोखा, जिसका ईश्वर रुपया, जिसका कर्म्म व्यभिचार, जिसका जीवन निर्लज्जतापूर्ण तथा जिसका आदि पापसे और अन्त नरकसे होता है।

मैं--परन्तु वह मुझसे प्रेम करती है। प्रेमका प्रतिदान प्रेमसे ही होता है। एक हृदय दोको दिया नहीं जा सकता। मैंने उसके प्रेमके प्रतिदान स्वरूप उसे अपना हृदय दिया है। अब फेर नहीं सकता।

उत्तर--देखो, अपने कर्त्तव्यपर विचार करो। तुम किस कार्यके लिये यहाँ आये थे, क्यों भेजे गये थे और अब क्या कर रहे हो। यह मैं मानता हूँ, कि प्रेमका प्रतिदान प्रेमसे ही होता है, तिसपर स्त्रीके प्रेममें बड़ा ही आकर्षण होता है, परन्तु वह स्त्री नहीं राखका ढेर है, जिसमें गुण न हो, और वह गुण नहीं जिसमें सत्यता न हो। तो क्या तुम इस गणिकासे सच्चे प्रेमकी आशा करते हो?

मैं--हाँ, आशा तो है। मिट्टीसे ही हीरा निकलता है।

उत्तर--तो क्या तुमसे कर्त्तव्य पालनकी आशा अब त्याग दी जाय?

ऐसी आवाज आयी, जैसे दो मनुष्य धीरे धीरे आपसमें बातें कर रहे हैं। मनमें सन्देह हुआ। यह क्या मामला है? दबे पाँव उसी ओर चला। आवाज मोहिनीकी ही मालूम हुई। खूब धीरे धीरे पास जा पहुँचा। देखा—एक दूसरे ही मनुष्यके पास लेटी हुई मोहिनी बड़ी स्वच्छन्दतासे धीरे धीरे बातें कर रही है। बीच-बीचमें मेरा भी नाम आ जाता है।

मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ। सन्देह उत्पन्न होते ही हृदय हिल उठा। साथ ही यह भी विचार उत्पन्न हुआ-ऐ! मैंने मोहिनीके फेरमें पड़कर अपना सर्वस्व त्याग दिया, अपने धर्म्म कर्म्मको जलांजलि दे दी, उसके मोहमें पड़कर चोरी की, डाकुओंका साथी बन डकैतीकर, कितना ही धन-रत्न लूट, दूसरोंका हृदय दुखाया। क्या उसका यही परिणाम हुआ? मनमें बड़ा क्षोभ हुआ, गर्व भी हुआ, साथ ही ईर्ष्या भी उत्पन्न हुई। प्रीतिकी रीति ऐसी ही होती है। इसमें कपट खटाई पड़नेसे यही अवस्था हो जाती है। मैं उसी समय झपटकर अपने कमरेमें चला गया और तलवार ले, बाहर निकल, उधर जाना ही चाहता था, कि एकाएक दो मनुष्योंने मुझे पकड़ लिया। इनमें एक वही हिन्दू था जो मोहिनीसे बातें कर रहा था तथा दूसरा मुसलमान था।

मैंने उनसे छूटनेकी लाख चेष्टा की, परन्तु किसी तरह भी अपनेको छुड़ा न सका। वे दोनों जबर्दस्ती मुझे पकड़कर एक गन्दी कोठरीमें ले गये और वहीं कैद कर दिया।

बीसवाँ परिच्छेद।

संयमसिंहकी आत्मकथा।

परोपकारसिंहसे विदा होकर मैं सीधा अपने मकानपर जा पहुँचा, परन्तु अबतक कोई लौटकर न आया था और न अब अपने साथियोंके शीघ्र लौट आनेकी मुझे आशा ही थी। अत कुछ देर विश्रामकर, मैं फिर वहाँसे निकल पडा। परन्तु कई दिनोंतक बहुत कुछ खोजने और पता लगानेपर भी कुछ पता न लगा। इन दिनों मायापुरीमें सन्नाटा छा रहा था, डाकुओंकी ओरसे भी कोई नवीन चाल न हो रही थी, कभी कभी कहींसे उपद्रव होने और लूट मार मचनेका समाचार मिलता था, परन्तु उपद्रवियोंका किसी तरह पता न लगता था।

इसी तरह कितने ही दिवस बीत गये। मन और भी चञ्चल हो उठा। परन्तु इस बार डाकू इतने सावधान थे, कि कोई भी चेष्टा कारगर न होती थी।

मैं सदाकी भाँति एक दिवस, रात्रिके समय वेश बदलकर इधर उधर घूम रहा था। इस समय रात्रिके लगभग एक बजे होंगे, कि एक मनुष्य लपकता हुआ, कुछ भुनभुनाता मेरे आगेसे निकल गया। मुझे उसकी चाल ढाल देखकर ही कुछ सन्देह हुआ। अत मैं छिपकर उसका पीछा करता हुआ चला। यह मनुष्य किसी घबडाहटमें था। अत उसका ध्यान मेरी ओर

बिल्कुल ही न था। मैं उसका पीछा करता हुआ, बराबर उस मकानतक जा पहुँचा, जिसमें मोहनचन्द्का आवास था। उस मनुष्यने दरवाजा खटखटाया। तुरन्त ही भीतरसे किसीने उसका परिचय पूछकर दरवाजा खोल दिया। वह मनुष्य भीतर चला गया, परन्तु मैं बाहर ही खडा रह गया।

थोड़ी देर बाद मैंने भी साहसकर दरवाजेमें धक्का दिया। तुरन्त ही किसीने भीतरसे परिचय पूछा। परिचयमें मैंने भी वही शब्द "मोहन" कहा, जो उसने कहा था। तुरन्त ही दरवाजा खुल गया। मैंने देखा, कि एक वलिष्ठ मनुष्य हाथमें नङ्गी तलवार लिये मेरे सामने खडा है।

उसने मुझे देखते ही पूछा—"तुम कौन हो?"

मैं—मुझे अभिलाषसिंहने भेजा है।

वह—"मोहनचन्द्जीके पास?"

मैं—"हां, मोहनचन्द्जीके पास।"

उस मनुष्यने एक वार सिरसे पैरतक मुझे अच्छी तरह देख लेने बाद कहा—"अच्छा, ठहरो।"

मैं उसी जगह रखी एक तिपाईपर बैठ गया। कुछ क्षण बाद ही उसने जोरके स्वरमें कुछ सांकेतिक शब्द कहे। इसके थोडी देर बाद एक नवयुवक दौडता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा।

अब उसकी ओर देखकर उस पहरेदारने कहा—"इन्हें मालिकके पास ले जाओ।"

वह नव-युवक आगे आगे और मैं उसके पीछे पीछे

चला। वह अनेक स्थानोंमे घुमाता हुआ, मुझे एक ओरको ले चला।

कुछ ही देर बाद हमलोग एक आँगनमें जा पहुंचे। आँगनके बाद दालान और दालानसे ऊपर जानेकी सीढी थी। यहाँ कुछ अन्धकार पडता था और वह नवयुवक भी कुछ असावधान हो रहा था। बस, मौका देखकर मैंने उसका गला पीछेसे धर दबाया। बिचारा कुछ बोल भी न सका। उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका। मैंने उसे जबर्दस्ती बेहोशकर, उसी स्थानपर हाथ पैर बाँध, सीढ़ीके नीचे अन्धकारमें डाल दिया। मैंने अनुमान कर लिया था, कि जितनी बेहोशी मैं ने दी है, उससे वह कमसे कम दो घण्टेतक अवश्य ही बेहोश रहेगा। इसलिये मैं उसे वही छोड, धीरे धीरे पैर रखता हुआ ऊपर चढ गया। ऊपर अनेक कमरे देखे, कितनोंमें ही ताले बन्द थे, कितने ही खुले हुए थे। घूमता घूमता मैं एक ऐसे स्थानपर जा पहुँचा, जहाँका दृश्य देखकर मेरे तो हवास गुम हो गये। यह कैसा परिवर्त्तन हो गया! मैंने देखा, कि एक अत्यन्त रूपवती स्त्री तकियेपर माथा रखे, लेटी हुई है। उसके पास ही जीवानन्द बैठे हुए तृषित नेत्रोंसे उसके चेहरेकी ओर देखते और कभी कभी ठण्डी साँसें लेते हैं। उनका एक हाथ जमीनमें है, तथा दूसरेसे उसके केशोंकी घनी लटोंको मानों सुरभा रहे हैं।

क्या बात है, कुछ समझ न सका। मैं अपने नेत्रोंपर इस समय विश्वास न कर सका। जीवानन्द यहाँ कहाँ? यह

सुन्दरी कौन है; जिसके रूपपर वे इतने मुग्ध हो रहे हैं ? कई वार अपने हाथोंसे मैंने अपनी आँखें मल डालीं, परन्तु वह दृश्य परिवर्त्तित अवस्थामें न दिखाई दिया। अतः इस अवस्थामें जीवानन्दको देखकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हुआ, परन्तु इस समय कुछ बोलनेका अवसर न था, इस समय जीवानन्दपर मोहका भयानक पर्दा पडा था—इस मोह-मदके झोंकेमें सम्भव था, कि हितकी बात अनहितका काम कर जाती।

मैं वहाँसे हटकर अव दूसरी ही ओर चला। मेरी इच्छा एक बार मोहनचन्दको देखनेकी थी, क्योंकि जीवानन्दकी यह अवस्था देखकर ही मैं समझ गया था, कि यह मोहनचन्दके मोह-जालका प्रताप है।

मकान तितल्ला था। दूसरे खण्डके सव कमरोंको देखता हुआ अव मैं ऊपरकी ओर चला। ऊपर पहुँचते ही एक ओरके वडे कमरेमें एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। मैंने देखा; कि वीचो-वीच एक ऊँची गद्दी लगी है जिसपर एक नवयुवक वैठा है। उसे देखते ही मुझे परोपकारसिंहकी वातें स्मरण हो आयीं। मैं समझ गया, कि यह मोहनचन्दके सिवा और कोई नहीं है।

उसके पास ही और भी कई मनुष्य वैठे हुए थे। वे आपसमें कुछ वातें कर रहे थे। इनमें ही वह मनुष्य भी था; जो अभी अभी मेरे पहले आया था। मैं एक ओर खडा हो, कान लगाकर उनकी वातें सुनने लगा।

कुछ क्षणतक कुछ सोचने बाद, मोहनचन्दने कहा—"जीवानन्दसे अब डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने ऐसे फेरमें उसे फँसा दिया है, कि अब सहजमें उसका छुटकारा नहीं है और मोहिनीको मैंने अच्छी तरह सावधान रहनेके लिये भी समझा दिया है। अब रहा सयमसिंह, सो अकेला वह क्या कर सकता है?"

दूसरा बोला—"तब आपकी क्या इच्छा है, कि सयम सिंहको यों ही छोड दिया जाये ?"

मोहनचन्दने कहा—"नहीं कदापि नहीं। सयमसिंहको पकड़ना हमलोगोंका प्रधान कर्त्तव्य है, परन्तु वह सहजमें हाथ न आयगा। उसको पकडनेके लिये विशेष चेष्टा करनी पडेगी।"

दूसरा—क्या जीवानन्दकी स्त्री सब भेद न खोल देगी ?

मोहन—उसे मालूम ही क्या है ? उसको तो मैंने कह दिया है, कि जीवानन्द शीघ्र ही जायँगे। वह भी सन्तुष्ट होकर गयी है।

तीसरा—अच्छा, सयमसिंहको पकडनेकी हमलोग चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु उन सिपाहियोंका क्या होगा, जिन्हें आप लोगोंने कैद कर रखा है ?

इतनेमें ही बाहरसे आया हुआ मनुष्य बोल उठा—"अभिलाषसिंहने कहा है, कि उन्हें मार डालना चाहिये। उनके खाने पीनेमें व्यर्थ खर्च पडता है।"

मोहनचन्दने कहा—"हमलोगोंके फेरमें जो अधिक दिनसे

तक पड़ा रहेगा, उसका विनाश तो निश्चित ही है, तथापि जबतक संयमसिंह नहीं पकडा जाता, तबतक उन्हें मारना उचित नही है। रानीकी भी ऐसी ही आज्ञा है।"

समझमें न आता था, कि यह रानी कौन है। रह रहकर मुझे मायावतीपर सन्देह होता था, परन्तु इस सन्देहकी पुष्टिका कोई प्रमाण न मिलता था। अस्तु,

वह—परन्तु अभिलाषसिंहके आज्ञानुसार आजसे उन्हें भोजन देना बन्द कर दिया गया है।

मोहनचन्दने कहा—"यह बडी खराब बात है। तुम्हारे सरदारको उन्हें खिलाना यदि इतना ही भारी मालूम होता है, तो उन्हें यहाँ भेज दो। मैं अनायास ही उन्हें अपने दलमें मिलाकर अपना कार्यसाधित करूंगा।"

वह मनुष्य "जो आज्ञा" कहकर उठ खडा हुआ। अब मेरा वहाँ रहना भी बिलकुल ही निरर्थक था। अत मैं वहाँसे हटकर एक ओर छिप रहा और जब वह मनुष्य चला, तब उसके पीछे ही पीछे मैं भी बाहर निकल आया। पहरेदारने किसी प्रकारकी रुकावट न डाली।

अब मैं बराबर उसका पीछा करता हुआ, अभिलाषसिंहके मकानपर जा पहुँचा।

यहाँ उसी तरहका घोर सन्नाटा छाया हुआ था, जैसा इधर जीवानन्दकी गिरफ्तारीके बाद मैं देख आया था। उस मकानको ठीक ऐसा मालूम होता था, मानों इसमें अनेक दिवसोंसे

जन-मानवका आवास नहीं है। पहले इस मकानमें मैं बहुत कुछ खोज कर चुका था, परन्तु न तो जीवानन्दका ही कोई पता मिला था और न कोई मनुष्य ही दिखाई दिया था। इस बार भी यदि उस मनुष्यके पीछे पीछे न आया होता, तो कुछ भी पता न लगता। परन्तु दैव दयासे, उसका मेरा साथ हो गया था।

वह मनुष्य बडी सावधानतासे इधर उधर अपनी चारों ओर देखता हुआ उस मकानमें घुमा। अभिलाषसिंहका यह मकान मानों कारीगरीका खजाना था। उसने बडी सावधानीसे ही एक ऐसा द्वार खोला, जो देखनेमें एक खासी आलमारी मालूम होता था। मैंने पहले भी उसे देखा था और काठकी बनी आलमारी समझकर छोड आया था। इसके बाद ज्योंही वह दरवाजा बन्द करना चाहता था, त्योंही मैं पिस्तौल ताने उसके सामने जा खडा हुआ। मेरे हाथमे पिस्तौल देखकर वह काँप उठा। उसे आशका न थी, कि कोई इस तरह एकाएक वहाँ आ पहुँचेगा और इस तरह उसे विपद्ग्रस्त होना पडेगा। अत मैंने उसी समय उसपर अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद उसे बेहोशकर, एक कोठरीमें डाल, मैं उसी आलमारीकी राहसे भीतर जा घुसा। भीतर रोशनी जल रही थी। उस आलमारीके पल्लेको बन्दकर देनेपर कभी किसीको इस बातका भ्रम भी न हो सकता था, कि इसके पीछे कोई इमारत है, परन्तु उसके भीतर एक बहुत ही सुन्दर इमारत बनी हुई थी।

मैं आलमारीका दरवाजा भीतरसे बन्दकर उस मकानमें चला

गया। इसके बाद मैंने नीचेकी कोठरियोंकी परीक्षा करना आरम्भ किया। कान लगा लगाकर सुनने लगा, कि किसी भीतर कोई मनुष्य है या नहीं। कुछ देरतक इस तरह परिश्रम करने बाद, एक कोठरीपर मुझे सन्देह हुआ। मैंने बड़ी सावधानतासे उसका ताला तोड डाला। धन्य परमेश्वर! उसमें मेरे कई साथी थे। उन सबको मैंने बाहर निकाला। उनको देखनेसे ही मालूम होता था, कि वे बडे कष्टमें थे और उन्हें भरपूर भोजन न दिया जाता था। इसके बाद एक दूसरी कोठरीमेंसे और भी कई मनुष्य निकले। इस तरह मेरे सब साथी मिल गये। अब मैं ऊपर दुतल्ले पर चला, दुर्बल होनेपर भी सन्तोपसिंह तथा और दो मनुष्य मेरे साथ हो लिये। अन्य बडी सावधानीसे नीचे ही बैठ गये।

ऊपर एक कमरेमें स्वार्था सो रही थी। परन्तु उसका चेहरा देखनेसे ही मालूम होता था, कि उसका हृदय कुछ विकल हो रहा है, नींदमें भी उसे चैन नहीं है। कमरेमें और कोई नहीं है, यह देख मैं भीतर घुस गया। स्वार्था अब भी ज्योंकी त्यों पडी थी। मैंने क्लोरोफार्ममें वस्त्र भिगोकर उसकी नाकपर रख दिया। पलक मारते ही स्वार्था एक बार काँपकर बेहोश हो गयी, मैंने अब जल्दीसे बाहर निकलकर बाहरसे साँकल चढा दी तथा अपने एक साथीको उसी स्थानपर नियुक्तकर सन्तोपसिंहको साथ ले आगे बढा। एक दूसरे कमरेमें अभिलाषसिंह अपने साथियोंके साथ बैठा हुआ बातें कर रहा था। बातें हम-

लोगोंके सम्बन्धकी ही हो रही थीं। उस कमरेमें तीन मनुष्योंको देखकर हमलोगोंका साहस बढ़ गया। अपने साथीको भेजकर नीचेसे तीन मनुष्य मैंने और भी बुला भेजे। इसके बाद सबके आगे मैं दोनों हाथोंमें पिस्तौल ले, उस कोठरीमें एकाएक घुस पड़ा। मेरे पीछे सन्तोषसिंह उस मनुष्यसे छीनी हुई पिस्तौल हाथमें लिये घुसा और उसके बाद हमारे अन्य साथी भी घुस पड़े।

एकाएक मुझे वहाँ देख तथा मेरे साथियोंको मुक्त देखकर अभिलाषसिंहकी वही अवस्था हो गयी, जो बाजके चंगुलमें फँसे पक्षीकी हो जाती है। वह घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ। उसके दोनों साथी भी उठ खड़े हुए और चाहते ही थे, कि हम-लोगोंपर आक्रमण करें, कि एकाएक सन्तोषसिंहने आगे बढ़कर अभिलाषसिंहको इतने जोरसे धक्का दिया, कि वह सम्हल न सका, बिछावनपर लोट पड़ा। इधर उसके साथियोंको हम-लोगोंने अपने अधिकारमें किया। अभिलाषसिंहको गिराकर सन्तोषसिंह उसकी छातीपर चढ़ बैठा और जबर्दस्ती उसके हाथोंमें हथकड़ी पहना दी।

अब इन तीनोंको साथ लेकर, हमलोग स्वार्थावाली कोठरीमें घुसे। स्वार्था अभीतक उसी अवस्थामें बेहोश पड़ी हुई थी। उसके हाथोंमें हथकड़ी पहनाकर उसके मुँहपर जलका छींटा दे, हमलोग उसे होशमें लाये। वह भी अपनी यह अवस्था देखकर बड़ी घबड़ायी, परन्तु अब घबड़ानेसे क्या हुई

गया। इसके बाद मैंने नीचेकी कोठरियोंकी परीक्षा करनी आरम्भ किया। कान लगा लगाकर सुनने लगा, कि किसीके भीतर कोई मनुष्य है या नहीं। कुछ देरतक इस तरह परिश्रम करने बाद, एक कोठरीपर मुझे सन्देह हुआ। मैंने बडो सावधानतासे उसका ताला तोड डाला। धन्य परमेश्वर! उसमें मेरे कई साथी थे! उन सबको मैंने बाहर निकाला। उनको देखनेसे ही मालूम होता था, कि वे बडे कष्टमें थे और उन्हें भरपूर भोजन न दिया जाता था। इसके बाद एक दूसरी कोठरीमेंसे और भी कई मनुष्य निकले। इस तरह मेरे सब साथी मिल गये। अब मैं ऊपर दुतल्लेपर चला, दुर्बल होनेपर भी सन्तोपसिंह तथा और दो मनुष्य मेरे साथ हो लिये। अन्य बडी सावधानीसे नीचे ही बैठ गये।

ऊपर एक कमरेमें स्वार्था सो रही थी। परन्तु उसका चेहरा देखनेसे ही मालूम होता था, कि उसका हृदय कुछ विकल हो रहा है, नींदमें भी उसे चैन नहीं है। कमरेमें और कोई नहीं है, यह देख मैं भीतर घुस गया। स्वार्था अब भी ज्योंकी त्यों पडी थी। मैंने क्लोरोफार्ममें वस्त्र भिगोकर उसकी नाकपर रख दिया। पलक मारते ही स्वार्था एक बार काँपकर बेहोश हो गयी, मैंने अब जल्दीसे बाहर निकलकर बाहरसे साँकल चढ़ा दी तथा अपने एक साथीको उसी स्थानपर नियुक्तकर सन्तोपसिंहको साथ ले आगे बढा। एक दूसरे कमरेमें अभिलाषसिंह अपने साथियोंके साथ बैठा हुआ बातें कर रहा था। बातें हम-

लोगोंके सम्बन्धकी ही हो रही थीं। उस कमरेमें तीन मनुष्योंको देखकर हमलोगोंका साहस बढ़ गया। अपने साथीको भेजकर नीचेसे तीन मनुष्य मैंने और भी बुला भेजे। इसके बाद सबके आगे मैं दोनों हाथोंमें पिस्तौल ले, उस कोठरीमें एकाएक घुस पड़ा। मेरे पीछे सन्तोषसिंह उस मनुष्यसे छीनी हुई पिस्तौल हाथमें लिये घुसा और उसके बाद हमारे अन्य साथी भी घुस पड़े।

एकाएक मुझे वहाँ देख तथा मेरे साथियोंको मुक्त देखकर अभिलाषसिंहकी वही अवस्था हो गयी, जो बाजके चगुलमें फँसे पक्षीकी हो जाती है। वह घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ। उसके दोनों साथी भी उठ खड़े हुए और चाहते ही थे, कि हम-लोगोंपर आक्रमण करें, कि एकाएक सन्तोषसिंहने आगे बढ़कर अभिलाषसिंहको इतने जोरसे धक्का दिया, कि वह सम्हल न सका, बिछावनपर लोट पड़ा। इधर उसके साथियोंको हम-लोगोंने अपने अधिकारमें किया। अभिलाषसिंहको गिराकर सन्तोषसिंह उसकी छातीपर चढ़ बैठा और जबर्दस्ती उसके हाथोंमें हथकड़ी पहना दी।

अब इन तीनोंको साथ लेकर, हमलोग स्वार्थावाली कोठरीमें घुसे। स्वार्था अभीतक उसी अवस्थामें बेहोश पड़ी हुई थी। उसके हाथोंमें हथकड़ी पहनाकर उसके मुँहपर जलका छींटा दे, हमलोग उसे हवामें लाये। वह भी अपनी यह अवस्था देखकर बड़ी घबड़ायी, परन्तु अब घबड़ानेसे

हो सकता था ? अपने कर्मका फल तो मनुष्यको भोगना ही पड़ता है।

इसके बाद उन सबको साथ ले, हमलोग सीधे थानेमें पहुँचे। इस बार कड़े पहरेका प्रबन्धकर, उन्हें हाजतमें रख दिया गया। हमलोगोंने भी वह स्थान त्यागकर थानेमें ही डेरा जमाया।



हो सकता था ? अपने कर्मका फल तो मनुष्यको भोगना ही पड़ता है।

इसके बाद उन सबको साथ ले, हमलोग सीधे थानेमें पहुँचे। इस बार कड़े पहरेका प्रबन्धकर, उन्हें हाजतमें रख दिया गया। हमलोगोंने भी वह स्थान त्यागकर थानेमें ही डेरा जमाया।



एक्कीसवाँ परिच्छेद।



जीवानन्दकी आत्मकथा।

एकाएक दो मनुष्योंको अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर मैं घबड़ा उठा था। आजतक कितनी ही बार ऐसा अवसर पडा था, कि अकेले ही दस दस मनुष्योंके बीचमें रहकर भी आत्म-रक्षा करनेमें समर्थ होता था। इसका कारण यही था, कि साहस पल्ला न छोडता था, परन्तु इस बार, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मोहनचन्द्के मोहजालमें पडकर मेरी आत्मा दुर्बल हो पड़ी थी, मोहिनीके संसर्गसे मन और शरीर भी दुर्बल हो गया था। मोहके फेरमें पडकर बुद्धि भी कुछ विनष्ट हो गयी थी। अत मैं आत्मरक्षाका कोई उपाय न कर सका और अना-यास ही उन दोनोंने मुझे अपने अधिकारमें कर, कैदखानेमें डाल दिया।

मै समझ न सका, कि ये दोनों कौन हैं और मोहिनी किससे बातें कर रही थी? उस समय कुछ विचारनेकी मुझमें शक्ति भी न थी। मेरी धारणा थी—मुझे अपने मनमें निश्चय था, कि मोहिनी मुझे प्यार करती है, वह मुझे अपनेसे भी बढ़कर अपना समझती है, इसीलिये मैं मोहिनीके मोह जालमें अपना सर्वस्व भूलकर उलझ पडा था। उस समय इस घातका तनिक भी खयाल न था, कि मोहनचन्द्की आनन्द सहचरी होनेपर भी

जिसे मेरी अङ्क-शायिनी बननेमें तनिक भी सङ्कोच न हुआ, वह कैसे मेरी हो सकती है, कोई दूसरा शिकार मिलते ही वह मुझे त्याग दे सकती है। कितनी ही बार अलक्षित भावसे किसीके बारम्बार समझानेपर भी मेरी आँखोंपर पडी मोह-चादर दूर न हुई।

परन्तु इसके बाद जब मैं तलवार लेकर अपनी कोठरीसे बाहर निकला—उस समय मुझमें गर्वके साथ ही साथ ईर्ष्याकी भयानक आग जल रही थी। मोहिनीको एक अपरिचित—एक परायेसे, क्योंकि मैं मोहिनीको अपना समझा था, बातें करते देखकर, मेरे सिरसे पैरतक आग लग गयी थी। उस आगकी लपटने मेरे मस्तिष्कको विचार हीन बना दिया था। इसीलिये मैं अन्धा बन गया था। अस्तु,

जब मैं कैदखानेमें आया, तब मेरी आँखें खुलीं। विपत्तिमें पडनेपर ही अज्ञानीकी आँखें खुलती हैं, मानों शिक्षका बनकर विपत्ति आती है। अब मुझे स्पष्ट मालूम होने लगा, कि मैं बडा अनर्थ कर बैठा हूँ, मैंने अपने स्त्री पुत्रके मोहमें पडकर अपनी आत्माको बेच डाला है, मोहिनीके लिये वे ही पाप किये हैं, जिनके करनेवालेको मैं दुराचारी समझ दण्ड दिलानेके लिये पकडने आया हूँ। मनमें बडी ग्लानि उत्पन्न हुई। एक पर-पुरुषसे मोहिनीको बातें करते देखकर, मनमें जितनी विकलता उत्पन्न हुई थी, उससे कहीं अधिक विकलता, इस बार उत्पन्न हो गयी।

मैं घबराहटके कारण रो पडा। रह रहकर उसी संयम-

सिंहको स्मरण करने लगा, जिसे मैं बहुत दिनोंसे भूल गया था। मोहिनीके प्रपञ्च जालमें पड़कर जिसका स्मरण भी न आता था। मैं जी भरकर उस दयामयको पुकारने लगा, जिनकी दया बिना इस संसारका कोई भी कार्य संसाधित नहीं हो सकता है।

अब मुझे स्पष्ट मालूम होने लगा, मानों मुझे समझाने और सावधान करनेके लिये विवेकानन्द आये थे। हाँ हाँ! वह विवेकानन्दका ही शब्द था, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है, परन्तु अब क्या हो सकता है?

इसी तरह सोचता हुआ मैं सो गया। कबतक सोया रहा कुछ बता नहीं सकता। एकाएक किवाड़ खुलनेका शब्द सुनकर मेरी नींद खुल गयी। मैंने देखा, कि सवेरा हो गया है, इसी समय वही दोनों मनुष्य उस कैदखानेमें आ पहुँचे, जिन्होंने मुझपर आक्रमण किया था। उन्हें देखते ही मैं सावधान होकर बैठ गया।

इस समय एकने, जो हिन्दू मालूम होता था, आगे बढ़कर कहा—"क्यों जीवानन्द! कल रातमें किसे मारने चले थे?"

मैने वक्र दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कहा—"तुम्हें इस बातसे क्या मतलब? मैं तुम्हें क्यों उत्तर दूँ?"

उसने कहा—"अभी उत्तर न दोगे, न सही, दस बीस दिवस जब इस कैदखानेका मजा लोगे तो आप ही प्रेमका स्वाद मिल जायगा।"

मैंने कहा—"तुम लोगोंने दयाकर मुझे इस कैदखानेमें डाल, मेरी आँखें खोल दी हैं। अतः मैं तुम लोगोंका कृतज्ञ हूँ।"

मेरा उत्तर सुनकर उन दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा। इसके बाद दूसरा जो मुसलमान मालूम होता था, बोला—"ठीक है, बहुत ठीक! यहाँ बैठकर आनन्दसे भोजन मिलता है, क्यों न कृतज्ञ होगे? दो चार दिन खानेको न दिया जाये, बस होश ठिकाने आ जायँगे। मोहनचन्द बडा मूर्ख है, जो उसने तुम्हें इस तरह आरामसे रखा था।"

मैंने कहा—"जो होना होगा, सो होगा। परन्तु आप कौन हैं, जो दाल भातमें मूसलचन्दकी तरह यहाँ आ पहुँचे हैं।"

उसने बड़ी शानसे कहा—"मेरा नाम हसदअली है।

मैंने कहा—"इसी लिये मेरा आराम देखकर आप दुःखित हो रहे हैं?"

वह बोला—"इस बार देखूँगा। खा खाकर बहुत मोटे हो गये हो और उस हरामजादीको तो जीता ही न छोडूंगा।"

मैंने कहा—किसे?"

हसदअली बोला—"उसी मोहिनीको।"

मैंने कहा—"क्यों? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

हसदअली—उसीकी वजहसे तुम इस तरह मौज करते थे।

मैं—अच्छा, उस दिन वह किससे बातें कर रही थी?

उत्तरमें वह दूसरा बोला—"मुझसे।"

मैंने कहा—"तुम कौन हो?"

उसने अपनी मूछोंपर ताव देते हुए कहा—"मेरा नाम गर्व-सिंह है।"

मैं—लेकिन तुम्हारा इनका क्या सम्बन्ध ? (हसदअलीकी ओर इशाराकर) ये तुम्हारे साथ क्यों रहते हैं ?

हसदअली बोल उठा—"क्यों नहीं, क्या मैं इनका दोस्त नहीं हूँ ?"

मैं—अच्छा, आपलोगोंने इस समय यहाँ पधारनेका कष्ट क्यों उठाया है ?

हसदअली—यही देखनेके लिये कि, अभी आपका मिजाज ठिकाने आया है या नहीं और

अभी वह मनुष्य कुछ और कहना ही चाहता था, कि इसी समय एकाएक एक मनुष्य दौड़ता हुआ, वहाँ आ पहुँचा और बड़ी घबड़ाहटसे बोला—"बड़ा गजब हो गया! संयमसिंह अपने सब साथियोंको छुड़ा ले गया और साथमें स्वार्था तथा अभिलाषसिंहको भी गिरफ्तार कर ले गया।"

इतना सुनते ही वे दोनों घबड़ाकर मेरी कोठरीसे बाहर चले गये। फिर ज्योंका त्यों दरवाजा बन्द हो गया, पर मेरी प्रसन्नताका वारापार न रहा। मैं मन ही मन समझने लगा, कि जब संयमसिंह यहाँ आकर अपने साथियोंको छुड़ा ले गये हैं; तब अब मेरे छुटकारेमें भी विलम्ब नहीं है।

परन्तु कई दिवस बीत गये, संयमसिंहका आगमन न हुआ। गर्वसिंहके कारागारमें मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। रातभर

कितने ही जन्तु मेरा रक्त चूसते थे, जिससे मैं बहुत व्याकुल रहता था, समयपर भोजन न मिलता था और तूफान आनेके बाद, प्रकृतिमें जैसी निस्तब्धता छा जाती है, मेरे शरीरमें भी एक प्रकारकी वैसी ही निस्तब्धता और कमजोरी दिखाई देती थी।

एक रात्रिके समय, लगभग दो बजे होंगे, एकाएक कई मनुष्य मेरे कैदखानेका दरवाजा खोलकर भीतर घुस आये और जबर्दस्ती मुझे बाँधकर एक ओर ले चले। मैंने देखा, कि मैं नगरके मध्य भागसे जा रहा हूँ, सर्वत्र सन्नाटा छा रहा है और ये दस्यु मुझे पकड़कर नगरकी दक्षिण ओर लिये जा रहे हैं।

जाते जाते हमलोग एक पहाड़ी उपत्यकाके नीचे जा पहुंचे। यहाँ आते ही यह स्थान मुझे कुछ परिचित सा मालूम हुआ और तुरन्त ही स्मरण हो आया, कि इसी स्थानपर मुझसे मायावतीसे भेंट हुई थी।

इस समय एकाएक मायावतीके स्मरण आ जानेसे मन कुछ चञ्चल हो उठा। मैंने मन ही मन कहा—"न जाने इस समय वह कहाँ है—यदि यहाँ रहती, तो अवश्य ही मेरी रक्षा करती।"

इसी तरह कितनी ही बातें सोच गया, मेरे मुँहसे एक बार मायावतीका नाम भी निकल पड़ा। मेरे मुहसे मायावतीका नाम सुनकर, डाकू कुछ चौंक भी उठे। परन्तु किसीने कुछ कहा नहीं।

इसके बाद वे मुझे पहाड़ीपर ले चले। कुछ दूर चढ़नेपर हमलोग पहाड़ीके सिरेपर जा पहुँचे। वहाँसे फिर पीछेकी ओर

उतरना पड़ा। अब हम लोग एक बड़े ही बीहड़ स्थानमें जा पहुंचे। इसी स्थानपर एक भीषण पहाडी गुफा थी, जिसमें बाहरसे लोहेका मजबूत दरवाजा लगा हुआ था। डाकुओंने मुझे लाकर इसी कारागारमें कैद कर दिया और इसके बाद सबके सब वहाँसे चले गये।

मैं उस निस्तब्ध स्थानमे, घोर अन्धकारमें, अकेला ही पड़ा रहा। मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

किसी तरह घोर चिन्तामें निमग्न ही रात बीती। सवेरा हुआ। रात्रिमें जो स्थान भयानक मालूम होता था, प्रातः कालके समय वही मनोहर दिखाई देने लगा।

इसी तरह दो दिवस व्यतीत हुए, मैं उसी अवस्थामें पड़ा रहा।

सन्ध्या होनेमें अभी थोडा विलम्ब था। सूर्य्यदेवका रथ अस्ताचलपर पहुंचना ही चाहता था और संध्याकी सुनहरी छटा पर्वतोंके ऊंचे ऊंचे कगूरोंपर झलक मार रही थी। इसी समय मुझे कुछ मनुष्योंके बातें करनेका शब्द सुन पड़ा। परन्तु स्पष्ट कुछ समझमें न आया, कि मामला क्या है। आज मेरा चित्त बड़ा अस्वस्थ हो रहा था, नाना प्रकारको चिन्तायें माथेपर सवार थीं।

रात्रिके दस बजेके लगभग किसीने धीरे धीरे मेरा नाम लेकर पुकारा। आवाज संयमसिंहकी सी मालूम हुई। मैंने भी उसी तरह धीमे स्वरमें पूछा—"तुम कौन हो?"

उत्तरमे उसने कहा—"सयमसिंह। घबड़ाना मत, मैं आ पहुंचा हूं। आज रातमें ही आपका उद्धार करूंगा।"

मैंने कहा—"आप यहाँ कैसे आ पहुंचे ?"

सयमसिंह—अब अधिक बातें करनेका अवसर नहीं है।

मैं—क्यों ?

परन्तु कोई उत्तर न मिला। संयमसिंह उसी समय गायब हो गये।

लगभग दो घण्टे बाद संयमसिंहने आकर मुझे फिर पुकारा। मैं जाग ही रहा था, तुरन्त उठ बैठा। संयमसिंहने तुरन्त दरवाजा खोल दिया।

दरवाजा खुलते ही मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। मैंने देखा, कि एक ओर कामरूपसिंहके हाथमें हथकडी पड़ी है और उसे संयमसिंह पकडे हुए हैं। उसके पास ही हथकडीसे जकडा मोहनचन्द खड़ा है, जिसके पहरेपर त्यागसिंह तय्यार है। एक ओर मोहिनी और रति भी दो सिपाहियोंके पहरेमें खड़ी हैं। यह दृश्य देखकर मेरे आश्चर्य्यका वारापार न रहा। मैंने चकित दृष्टिसे एक बार उनकी ओर देखकर फिर माथा झुका लिया।



बाईसवाँ परिच्छेद।

संयमसिंहकी आत्मकथा।

खार्था, अभिलाषसिंह तथा उसके साथियोंको सुरक्षित अवस्थामें रखकर, दारोगा साहबको खूब सावधान रहनेका उपदेश दे, मैं दूसरे ही दिवस कितने ही सिपाहियोंको साथ ले, अभिलाषसिंहके महलमें जा पहुंचा। समूचा महल ढूँढ आया, परन्तु कोई भी न मिला। अभिलाषसिंहके चक्रमें डालनेवाले महलकी कोई भी बात फिर मुझसे छिपी न रही, जो कुछ बची हुई सम्पत्ति वहाँ थी, वह भी मैं उठा लाया।

अब मेरा ध्यान फिर मोहनचन्दकी ओर आकर्षित हुआ। उस दिवस जीवानन्दकी अवस्था देखकर मैं अच्छी तरह समझ गया था, कि ये मोह चक्रमें फँस गये हैं। यह भी मैं अच्छी तरह जानता था, कि मोहमें पड़कर वे हमलोगोंको भूल गये हैं, उनकी बुद्धि नष्ट हो चली है। अत उनका उद्धार करना परम आवश्यक था। अब विलम्ब करना उचित न समझकर, उसी दिवस रात्रिके समय, मैं वेश बदल, मोहनचन्दके मकानपर जा पहुंचा।

पहरेदार मुझे पहचान गया था, कि मैं अभिलाषसिंहका साथी हूं। अत उसने सङ्केत शब्द सुनते ही दरवाजा खोलकर भीतर जानेकी आज्ञा दे दी। पहले दिवस मैं यहाँ हो ही आया था, इसलिये आज उसे साथ ले आनेवालेकी भी आवश्यकता न

पड़ी। पथसे मैं परिचित था ही, अतः मैं अनायास ही भीतर जा पहुचा ।

परन्तु आज जीवानन्द वहाँ न थे। न जाने कहाँ चले गये थे, समूचा मकान ढूँढ़ आया, न तो उस रमणीका पता लगा, न जीवानन्दका ही। मोहनचन्द अपने कमरेमें बैठा हुआ था। उसके पास तीन मनुष्य और भी बैठे थे।

जीवानन्दको वहाँ न देखकर मेरे मनमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गयी। इतने समयकी आशा कुछ निराशामें परिणत होने लगी। मैं मन ही मन सोचने लगा, कहीं इन दस्युओंने जीवानन्दको मार तो न डाला।

मैं इतना सोच ही रहा था, कि मोहनचन्द और उसके साथी उठ खड़े हुए। मैं वहाँसे हटकर एक ओर खड़ा हो गया।

वे तीनों नीचे उतर आये। मैं भी पैर दबाता हुआ उनके पीछे पीछे नीचे उतर आया।

अभी मोहनचन्द नीचे आँगनमें आया ही था, कि इसी समय एक दूसरा मनुष्य वहाँ आ पहुंचा। उसे देखते ही मोहनचन्दने पूछा—"क्यों, क्या समाचार है ?"

उसने कहा—"जीवानन्द सरदारके पास पहुंचा दिये गये। सरदारने उन्हें पहाडी गुफामें कैद करनेकी आज्ञा दी है, वे वहीं कैद कर दिये गये हैं।"

मोहनचन्दने कहा—चलो, मैं भी सरदारके पास चलता हूँ उनसे कुछ परामर्श करना है।"

यह मनुष्य आगे बढ़ा। मोहनचन्द्र और उसके साथी उसके पीछे पीछे चले। मैं बडी चिन्तामें पड गया, कि अब क्या करना चाहिये। यदि मैं पीछे रह जाता हू, तो पहरेदारको सन्देह होता है और यदि किसी तरह बाहर निकल भी गया, तो इनको पकड पाना सहज न होगा।

मैं अपने दोनों साथियोंको बाहर कुछ समझा बुझाकर खड़ा कर आया था। मैंने मन ही मन विचारा—सम्भव है, कि वे ही पीछा करें।

इतना सोचकर मैं पीछे ही रह गया। अपने साथियोंके साथ मोहनचन्द्र दरवाजेके बाहर निकल गया। उसके दरवाजेके बाहर निकलते ही मै दौडता हुआ, उसी स्थानपर जा पहुचा। पहरे-दार दरवाजा बन्द करना ही चाहता था, कि मैंने कहा—"ठहरो, मैं भी जाऊँगा।"

सौभाग्यवश पहरेदारने मुझे रोका नहीं, बल्कि बन्द किया हुआ दरवाजा तुरन्त खोल दिया। मैं झपटकर बाहर निकल गया। दरवाजा पूर्ववत् बन्द हो गया।

बाहर निकलकर मैंने देखा, कि मोहनचन्द्र अभी बहुत दूर नहीं गया है। अबतक वे मेरी दृष्टिकी ओट न हुए थे, अत मैं बराबर उनका पीछा करता हुआ, आगे बढने लगा। मेरे पीछे मेरे दोनों साथी थे।

मोहनचन्द्र इस समय बडी सावधानीसे इधर-उधर देखता

गिरफ्तारीने उसे अत्यन्त चिन्तित कर दिया था, परन्तु इधर रजनी हमलोगोंकी भी सहायक बनी हुई थी।

इसी तरह पीछा करते हुए हम सभी एक विकट पहाडी-पर जा पहुँचे। बड़ी ही भीषण जगह थी, पल-पलपर प्राण जानेका भय था, परन्तु जासूसी-जीवन सदा ही भयप्रद और खतरनाक होता है, लाचार, हमलोग भी बढ़ते ही जाते थे।

जाते जाते हमलोग पहाड़ीके ऊपर जा पहुचे। यहाँका स्थान कुछ प्रशस्त था। इसके बाद ही वे सब पहाड़ीके पीछेकी ओर उतरने लगे। यह उतार बड़ा ही भीषण था। तारोंके क्षीण प्रकाशके सहारे मोहनचन्द तो इस भाँति उतरा जा रहा था, मानों वह सदाका अभ्यस्त हो, परन्तु हमलोगोंको बडी कठिनाईका सामना करना पड़ता था।

अन्तमें हमलोग एक पहाडी दर्रेमें जा पहुँचे। यह स्थान बाहरसे देखनेमें जैसा हो भीषण मालूम होता था, वहाँ जाकर देखनेसे वैसा ही सुहावना मालूम होने लगा यह पहाडी दर्रा खूब विस्तृत था। नीचेकी ओर एक छोटी सी पहाडी नदी बह रही थी। उसके तटपर एक बड़ा ही मनोहर बँगला बना हुआ था, जिसके बाहर कई लालटेनें थी, जिनकी रोशनीसे वह स्थान उजियाला हो रहा था।

दरवाजेपर ही पहरेदार बैठा था। मोहनचन्दने उससे कुछ कहा। वह तुरन्त ही भीतर चला गया और इसके कुछ ही देर बाद कामरूपसिंह वहाँसे बाहर निकल आया, उसके पीछे पीछे मुस्कुराती हुई रति भी आ पहुंची।

इस समय मन्द मन्द हवा बह रही थी। कामरूपसिंहने उसी पहरेदारको इशारा किया। उसने कई कुर्सियाँ बाहर लाकर रख दीं, जिसपर सब बैठ गये और बातें करने लगे।

कुशल प्रश्नके बाद कामरूपसिंहने कहा—"सुना है, कि स्वार्था और अभिलाषसिंह फिर गिरफ्तार हो गये।"

मोहनचन्द्ने कहा—"हाँ।"

कामरूप०—अब तुमलोगोंका वहाँ रहना अच्छा नहीं। मेरी रायमें वह स्थान त्यागकर हट जाना ही श्रेयस्कर है।

मोहनचन्द बोला—"यही उचित मालूम होता है। परन्तु उन्हें छुड़ाना भी तो परम आवश्यक है।

कामरूप०—अभी कुछ दिनोंतक शान्त रहना ही उत्तम है। इससे शत्रु पक्ष कुछ असावधान हो जायगा। इसके बाद अवसर देखकर कोई काम किया जायगा।

मोहनचन्द—परन्तु इससे विशेष लाभकी सम्भावना नहीं है, जबतक सयमसिंह गिरफ्तार नहीं होता, तबतक हमलोग निरापद नहीं हो सकते।

मेरा नाम सुनकर कामरूपसिंहने कहा—"सच तो यह है, कि इस संसारमें यदि मेरा वश किसीपर नहीं चलता है, तो वह सयमसिंहपर, तथापि तुम लोग चेष्टा करो, मैं सहायक हूं। कौन कह सकता है, किस समय क्या हो जायगा?

मोहनचन्दने कहा—"स्वार्था और अभिलाषसिंहके सम्बन्धमें क्या कहते हैं?"

कामरूप०—थोड़ा सब्र करो। शत्रु पक्षको जरा असावधा होने दो।

मालूम होता है; कि मोहनचन्द्र कामरूपसिंहकी बातों सन्तुष्ट न हुआ। इसी विषयमें बहुत देरतक उन दोनोंमें तर्क वितर्क होता रहा। अन्तमें दूसरे दिवस संध्याके समय मिल तथा अन्य मनुष्योंको वहाँ पहुंचा देनेका वादाकर, मोहनचन्द्र वहाँसे उठ खड़ा हुआ। हमलोग भी अब सावधान होकर, इधर उधर छिप रहे। मोहनचन्द्र अपने साथियोंके साथ लौट आया हमलोग भी उसके पीछे पीछे ही लौटे।

कामरूपसिंहका निवास-स्थान जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, साथ ही यह भी मालूम हो गया, कि जीवानन्द भी यहीं कहीं कैद हैं, पर कहाँ हैं, सो मालूम न हो सका।

दूसरे दिन अपने अन्य कई मनुष्योंको साथ लेकर, मैं फिर वहाँ जा पहुंचा। आज मैं अपने सरो-सामानसे दुरुत था।

सन्ध्या होते ही, मैं अपने साथियोंको पहाडोंमें छिपा, सकेत बताकर जीवानन्दकी खोजमें चला और थोड़ी ही देरके परिश्रममें मुझे जीवानन्दका पता लग गया, क्योंकि एक मनुष्य उनके लिये भोजन लेकर जा रहा था, उसके पीछे पीछे ही मैं भी वहाँ जा पहुंचा। जब वह जीवानन्दका भोजन रखकर लौटा, तब मैंने जीवानन्दको सावधान कर दिया।

इसके बाद ज्योंही मैं वहाँसे लौटा, त्योंही मैंने देखा, कि मोहन-चन्द्र अपने दो साथियोंके साथ वहाँ आ पहुंचा। ...

ही बाहर बैठकर कामरूपसिंह और मोहनचन्द्रमें बातें होने लगीं। आज मोहिनी भी आयी थी और बडे ठाटसे रतिके पास बैठी थी।

बहुत देरतक परामर्श करने बाद, मोहिनीको थानेमें जाकर पहरेदारोंको भुलावा देनेका भार अर्पण किया गया और यही निश्चित हुआ, कि पहले मोहिनी थानेके पहरेदारोंको अपने मोहन मन्त्रसे वशीभूत करे और इसके बाद डाकुओंका प्रबल वेगसे आक्रमण हो।

इस बीचमें रातके दस बज गये थे। मैं एक बार जाकर जीवानन्दको सावधान कर आया। इसके बाद कामरूपसिंहका दरबार बर्खास्त हुआ ही चाहता था, कि मैं अपने दलबल समेत वहाँ आ पहुचा।

हमलोगोंको एकाएक उपस्थित देखकर मोहनचन्द उठकर भागना ही चाहता था, कि चारों ओरसे पिस्तौल तनी देखकर वहीं बैठ गया। किसीको वहाँसे हिलनेका साहस न हुआ। त्यागसिंहने आगे बढकर मोहनचन्दके हाथमें हथकडी डाल दी। मैंने कामरूपसिंहपर अपना अधिकार जमाया। रति तथा मोहिनी भी गिरफ्तार हुई और मोहन तथा कामरूपसिंहके साथी भी गिरफ्तारकर हथकडियोंसे जकड़ दिये गये।

इसके बाद उन सबको साथ लेकर ही हमलोग जीवानन्दके कारागारके पास जा पहुंचे। कुछ ही देर बाद जीवानन्द कारामुक्त हुए। इस समय आत्म ग्लानिसे वे जर्ज्जर हो रहे थे। उनका चेहरा मुर्झाया हुआ था तथा विषादकी कालिमा उनपर दिखाई देती थी।

अन्तमें उसे आत्मसमर्पण करना ही पडता है। आज जिन दो पुरुषोंको (मोहनचन्द और कामरूपकी ओर इशाराकर) आप इस अवस्थामे देख रहे हैं, आप जानते हैं, कि वे इस ससारके सबसे जबर्दस्त डाकू हैं, इनका मुकाबला कोई भी नहीं कर सकता, परन्तु इतनेपर भी आज इन्हें, अपने पापका परिणाम भोगनेके लिये प्रस्तुत होना ही पडा। यही तो कर्मका फल है—परन्तु आश्चर्य यह है कि इतना देखकर भी जीव सावधान नहीं होता।"

मेरी कुछ उत्तर देनेकी हिम्मत न पडी, मैं माथा झुकाये चुप चाप खडा रहा।

सयमसिंहने कहा—"अब सिर झुकाकर चुपचाप क्या खडे हैं? ईश्वरको धन्यवाद दीजिये, कि इस मोहनचन्दके चातुर्य जालसे इतना शीघ्र छुटकारा मिल गया।"

इस बार मैं ने साहसकर माथा उठाकर कहा—"परन्तु, यह सब तुम्हारी अनुकम्पाका ही फल है।"

संयमसिंहने कहा—"मेरी नहीं, बल्कि उस जगदाधारकी दयाका फल है, जिसके सङ्केत बिना, इस संसारका कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अच्छा, अब यहाँ ठहनेकी कोई आवश्य कता नहीं है, चलिये।"

इसके बाद हमलोग तेजीसे नगरकी ओर रवाना हुए और सबेरा होते होते, थानेके पास जा पहुचे।

अभी हमलोग थानेके पास पहुंचे ही थे, कि एक ओरसे कई

मनुष्य आते दिखाई दिये। इनमें सबके आगे आगे शान्ति थी, उसके पीछे कई मनुष्य थे जो गर्वसिंह और हसदअलीको घेरे हुए आ रहे थे। इन दोनोंकी कमरोंमें इस समय रस्सी बँधी हुई थी, जिसे सन्तोषसिह पकड़े हुए थे।

उन्हें इस अवस्थामें देखते ही संयमसिंहने कहा—"ओह! ये दोनों किस तरह गिरफ्तार हुए? ये तो गर्वसिह और हसदअली मालूम होते हैं।"

अब मुझे भी विश्वास हो गया, कि ये दोनों वे ही होंगे, क्योंकि जब मैं मोहिनीको दूसरेसे बातें करते देख, गर्व और ईर्षासे भरा, तलवार निकालकर उसकी ओर झपटा, तब इन दोनोंने ही कहींसे आकर मुझे पकड लिया और पीछे कारागारमें डाल दिया।

अपने इन दोनों शत्रुओंको गिरफ्तार होते देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।

क्षणभर बाद ही वे सब थानेके दरवाजेपर आ पहुचे। हमलोग दरवाजेके बाहर खड़े होकर उनकी राह देख ही रहे थे, कि एकाएक शान्तिने आगे बढ़कर कहा—"यह क्या! यह कामरूपसिंह और मोहनचन्द!!—क्यों आज आपलोगोंकी यह अवस्था हो रही है?

दोनोंमेंसे किसीने भी कोई उत्तर न दिया बल्कि अपना अपना माथा झुका लिया।

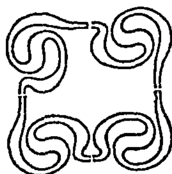
इसी समय संयमसिहने शान्तिकी ओर देखकर कहा—

"यह क्या ? ये दोनों किस तरह तुम्हारे हाथ लगे ?"

शान्तिने कहा—"यह सब समयकी बलिहारी है। समयका भी क्यों दोष दूँ ? अपने कर्म्मका फल है। मेरे कर्म्म या संस्कार दोषसे ही ये अबतक प्रबल होकर मुझे सता रहे थे और आज अपने कर्म्म-दोषसे ही, कर्म्म दण्ड भोगनेके लिये इस तरह पकड़े गये हैं। अस्तु, ये क्योंकर पकड़े गये, ये बातें मैं पीछे कहूंगी। अब इन्हें आपके सुपुर्दकर मैं निश्चिन्त हुई। आप इनका प्रबन्ध कीजिये।"

इतना कहकर शान्ति चुप हो गयी। उसी समय गर्वसिंह और हुसदअली भी कारागारमें बन्द कर दिये गये।

इस तरह आज मायापुरीके इन छः डाकुओंकी गिरफ्तारीसे हमलोग निश्चिन्त हुए।



मनुष्य आते दिखाई दिये। इनमें सबके आगे आगे शान्ति थी, उसके पीछे कई मनुष्य थे जो गर्वसिंह और हसदअलीको घेरे हुए आ रहे थे। इन दोनोंकी कमरोमें इस समय रस्सी बँधी हुई थी, जिसे सन्तोषसिंह पकड़े हुए थे।

उन्हें इस अवस्थामें देखते ही संयमसिंहने कहा—"ओह! ये दोनों किस तरह गिरफ्तार हुए? ये तो गर्वसिंह और हसदअली मालूम होते हैं।"

अब मुझे भी विश्वास हो गया, कि ये दोनों वे ही होंगे, क्योंकि जब मैं मोहिनीको दूसरेसे बातें करते देख, गर्व और ईर्षासे भरा, तलवार निकालकर उसकी ओर झपटा, तब इन दोनोंने ही कहींसे आकर मुझे पकड लिया और पीछे कारागारमें डाल दिया।

अपने इन दोनों शत्रुओंको गिरफ्तार होते देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।

क्षणभर बाद ही वे सब थानेके दरवाजेपर आ पहुचे। हमलोग दरवाजेके बाहर खड़े होकर उनकी राह देख ही रहे थे, कि एकाएक शान्तिने आगे बढ़कर कहा—"यह क्या! यह कामरूपसिंह और मोहनचन्द!!—क्यों आज आपलोगोंकी यह अवस्था हो रही है?

दोनोंमेंसे किसीने भी कोई उत्तर न दिया बल्कि अपना अपना माथा झुका लिया।

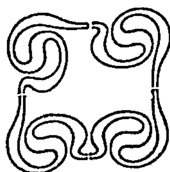
इसी समय संयमसिंहने शान्तिकी ओर देखकर कहा—

"यह क्या ? ये दोनों किस तरह तुम्हारे हाथ लगे ?"

शान्तिने कहा—"यह सब समयकी बलिहारी है। समयका भी क्यों दोष दूँ ? अपने कर्म्मका फल है। मेरे कर्म्म या संस्कार दोषसे ही ये अबतक प्रबल होकर मुझे सता रहे थे और आज अपने कर्म्म दोषसे ही, कर्म्म दण्ड भोगनेके लिये इस तरह पकड़े गये हैं। अस्तु, ये क्योंकर पकड़े गये, ये बातें मैं पीछे कहूंगी। अब इन्हें आपके सुपुर्दकर मैं निश्चिन्त हुई। आप इनका प्रबन्ध कीजिये।"

इतना कहकर शान्ति चुप हो गयी। उसी समय गर्वसिंह और हसदअली भी कारागारमें बन्द कर दिये गये।

इस तरह आज मायापुरीके इन छ डाकुओंकी गिरफ्तारीसे हमलोग निश्चिन्त हुए।



चौबीसवां परिच्छेद.



संयमसिंहकी आत्मकथा।

जिस प्रकार ज्ञानके प्रदीप्त हो उठनेसे जीवकी अवस्था कुछ दूसरी ही हो जाती है, उसी तरह इन डाकुओंकी गिरफ्तारीसे मायापुरीके अधिवासियोंके हृदयमें जो आनन्द उत्पन्न हुआ था, उसने उनकी दशा ही परिवर्त्तित कर दी थी। आज मायापुरीमें आतङ्कके बदले आनन्द, चिन्ताके बदले प्रसन्नता और विकलताके परिवर्त्तनमें शान्ति दिखाई देती थी। मानो एक प्रकारका भीषण अवसाद मायापुरीपरसे दूर हो गया था।

जीवानन्द भी आज बड़े प्रसन्न थे, उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। जो दुःखकी चोट एक बार सहन कर लेता है, वही, उस दुःखके हटनेपर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, उसे भली प्रकार अनुभव कर सकता है। भुक्तभोगी ही आनन्दका मजा अच्छी तरह चख सकता है, क्योंकि उसने दुःखका भी स्वाद ले लिया है। मैं भी अप्रसन्न न था। भला, अपने मित्रको प्रसन्न देखकर कौन प्रसन्न न होगा? परन्तु मेरे जीमें एक बड़ा खटका लगा हुआ था। यह रानी कौन है? मन बारम्बार कहता था, कि यह मायावती है, पर जीवानन्दकी बातोंसे अथवा अन्यान्य घटनाओंकी आलोचनासे, मायावतीपर सिवा सन्देह कर लेनेके, उसके विरुद्ध और कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता था।

जीवानन्दने सभी बातें मुझे बता दी थीं—कुछ छिपा न रखा था परन्तु उनसे भी कुछ पता न चलता था। डाकुओंके मुखसे "रानी" नाम निकला था। मैंने भी सुना था—समझनेकी चेष्टा भी की थी—पर किसी तरह भी कुछ पार न पा सका था। एक यही चिन्ता थी।

डाकू सब सावधानतापूर्वक हाजतमें रखे गये थे, पहरेका भी भरपूर प्रबन्ध था। हमलोग भी थानेमें ही आ बसे थे, और विशेष सावधान थे। अतः इस बार उनके निकल भागनेका बिल्कुल भय न था। यह सब समाचार बड़े साहबको लिख दिये गये थे और शीघ्र ही उनका मुकदमा आरम्भ होनेकी सम्भावना थी।

दूसरे दिवस सन्ध्याके समय हमलोग छतपर बैठकर आपसमें बातें कर रहे थे। शान्तिका जिक्र छिड़ा हुआ था। हमलोगोंको आश्चर्य्य हो रहा था, कि किस तरह दो दो डाकुओंको वह पकड़ लेनेमें समर्थ हुई, कि इसी समय परोपकारसिंह और सन्तोषसिंहके साथ शान्ति आती दिखाई दी। आज उसका चेहरा आनन्दसे उसी तरह खिल रहा था, जिस तरह चन्द्रमाको देखकर कुमुदिनी खिल उठती है। इसका प्रसन्न होना वाजिब ही था क्योंकि डाकुओंने शान्तिकी शान्ति ही हरण कर ली थी।

शान्ति हसती हुई, आकर हमलोगोंके पास बैठ गयी। आज परोपकारसिंहसे भी कई दिवस बाद भेंट हुई थी, अतः वे भी बड़े आदरसे मिले। इसके बाद ही शान्ति बोली—"कल ५

एक गर्वसिंह और हसद् अलीको मेरे साथ देखकर आप लोगोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ होगा, परन्तु वास्तवमें आश्चर्य्य करनेकी कोई बात नहीं है। मनुष्य अपने कर्म्मका ठीक ठीक परिपालन न कर सकनेके कारण कष्ट भोगता है और वही जब ठीक ठीक पालन करने लगता है, तब उस कष्टसे छुटकारा पा जाता है। मेरी भी ठीक वही अवस्था थी। मैं बराबर डाकुओं द्वारा सतायी जाती थी, सदा डाकू मुझपर अत्याचार करते थे। मैं उनसे बचनेके लिये इधर-उधर भागती फिरती थी, परन्तु जबसे मुझे अपने कर्म्मका स्वरूप मालूम हो गया, तबसे इधर उधर न तो भागना ही पड़ा और न उतनी विपत्ति ही भोगनी पडी। बल्कि जिसने मुझपर अत्याचार करना चाहा, वही पद दलित हुआ। वास्तवमें मैं अबतक पथभ्रष्टा हो रही थी। यह सब भय्या परोपकारकी दया है, उन्होंने वह पथ बता दिया। अस्तु,

आपलोगोंको मालूम है, कि कामरूपसिंहकी मुझपर कैसी दया थी, कि उसके कारण मैं तङ्ग आ गयी थी। इसके बाद आपलोगोंकी कृपासे जब कामरूप भागा तो उसके अन्य साथी मुझपर आक्रमण करने और मेरा सर्वस्व नाश करनेके लिये तय्यार हो गये। परन्तु उनमेंसे किसीकी भी कला न लग सकी, आप लोगोंकी चेष्टासे मैं बराबर बचती आयी।

एक दिन एक धनी जमीन्दारके घर गर्वसिंहने डाका डाला, हसदअलीने वहाके कुछ मनुष्योंको पहले ही अपने दलमें मिला लिया था। हसदअलीके प्रभावसे उनके मनुष्य पहलेसे ही उनसे

ईर्ष्यान्वित हो रहे थे, अब एकाएक गर्वसिंहके आक्रमणके कारण बड़ा ही गोलमाल मचा। कितने ही मनुष्य आहत हुए और कितने ही परलोक जा सिधारे। विचारे धनी जमीन्दारके परिवारमें फूटकी वह आग लगी, जिसका बुझाना ही उनके लिये कठिन हो गया। यह समाचार मुझे मालूम हुआ। भय्या परोपकारसिंह उस समय अन्य कार्य्यमें उलझे हुए थे, अत इन्होंने मुझे उस परिवारमें जाकर सहायता करनेकी आज्ञा दी। मैं एक सेविकाके साथ वहाँ जा पहुँची।

जिस समय मैं वहाँ पहुची, उस समयतक गर्वसिंह अपना काम बना, चलता बना था। विचारा जमीन्दार परिताप करता हुआ, अपने कमरेमें बैठा था। पहले तो वह मुझे भी देखकर बहुत कुछ घबराया, उसने मुझे भी दुष्टा समझकर अपने यहाँ स्थान देनेसे इन्कार किया, परन्तु जब मैंने अपना परिचय बता बहुत कुछ अनुनय बिनय की तो वह राजी हो गया। उसके आज्ञानुसार मैं उसी मकानमें रहकर लोगोंको शान्त करने और उनकी रक्षा करनेकी चेष्टा करने लगी।

मेरा पता न पाकर दस्युदल मुझपर खिजलाया हुआ था ही, इधर जहाँ कहीं, उनका उपद्रव होता, वहीं भय्या परोपकार जा पहुचते और आपद्-ग्रस्त परिवारकी रक्षाकी चेष्टा करने लगते थे। इससे वे उनपर भी अत्यन्त अप्रसन्न हो रहे थे। उस जमीन्दारके यहाँ हसदअलीके गुप्तचर अभी नियमान थे, यद्यपि उनमेंसे कई निकाल बाहर भी हो चुके थे। अत गर्वसिंह

हसदअलीको मेरे यहाँ रहनेका समाचार अनायास ही मिल गया। डाकूदल मुझे अपमानित और लाञ्छित करनेके लिये व्याकुल हो उठा। मैं भी असावधान न थी, सन्तोषसिंहको मैंने सब समझा बुझाकर गुप्तवेशमें ही उस मकानमें छिपा रखा था। पहरेका भी भरपूर प्रबन्ध कर चुकी थी, क्योंकि मैं जानती थी, कि मेरे यहाँ रहनेका समाचार इन दोनोंसे छिपा न रह सकेगा। वही हुआ, एक दिवस रात्रिके समय फिर उन दोनोंने मिलकर उस जमीन्दारके घरपर डाका डाला, परन्तु सभी ऐसे सावधान थे, कि इनकी कुछ कला न लगी। उस दिवस ये लौट आये। मुझपर उनका आक्रोश और भी बढ़ गया। अन्तमें एक दिवस अर्द्ध रात्रिके समय जब मैं अपने कमरेमें सो रही थी, तो एकाएक हाथमें छुरा लिये, वे दोनों घुस पड़े। उनके उस कमरेमें प्रवेश करते ही एकाएक मेरी नींद खुल गयी। मैंने देखा, कि वे दोनों ही छुरा लिये, मेरे खूनके प्यासे बने, मेरी खाटकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

उन्हें देखते ही मैं खाटपर उठ बैठी। इसके बाद ही गर्व-सिंहने आगे बढ़कर कहा—"क्यों शान्ति, आजकल तो बड़ी मौज हो रही है।"

मैंने कहा—"हाँ, अब तुम लोग मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

मेरा उत्तर सुनकर गर्वसिंह अकचकाया। बोला—"क्यों?"

मैंने कहा—"इसीलिये कि तुम्हारी गिरफ्तारीका सब प्रबन्ध मैं कर चुकी हूं।"

गर्वसिंहने कहा—"यदि यह छुरा अभी तेरी छातीमें घुसेड दूं ?"

मैंने कहा—"अब मुझे मृत्युका भी भय नहीं है, क्योंकि तुम अब यहाँसे लौटकर नहीं जा सकते। तुम्हें भी मेरे साथ ही मरना पड़ेगा।"

हसदअली बोल उठा—"मैं तेरी इन बन्दरघुडकियोंमें नहीं आ सकता। गर्वसिंह! इसने और उस बदमाश परोपकार सिंहने हमलोगोंका बड़ा नुकसान किया है—इन्हें शीघ्र ही मार डालो।"

परन्तु मैं उसी तरह शान्त भावसे बैठी रही। यह घबड़ाहट दिखानेका अवसर न था।

इसी समय मैंने देखा, कि परम साहसी सन्तोषसिंह तीन चार सिपाहियोंके साथ दरवाजेपर खड़े खड़े हँस रहे हैं। यह देख, मैं मुस्कुरा दी।

मुझे हँसते देख गर्वसिंह और भी झुंझला उठा! बोला—"क्या हँस रही है ?"

मैंने कहा—"तुम्हारी मूर्खतापर। तुम्हारी गिरफ्तारीका समय निकट आता जाता है, पर तुम अपने अभिमानपर फूले नहीं समाते।"

इसी समय हसदअलीने कहा—"अब वृथा विलम्ब करनेसे क्या लाभ है ? इसे अभी समाप्त कर दो।"

इतना सुनते ही गर्वसिंह आगे बढ़ा।

थी, सन्तोषसिंहने दरवाजेमें खड़े खड़े ही रेशमकी मजबूत बटी हुई डोरीका एक ऐसा फँन्दा फेंका कि वह दोनोंपर जा पड़ा।

उस रस्सीका फन्दा पड़ते ही गर्वसिंह और हसदअली चौंक पड़े। समझ गये कि हम फँसे, अब बचना कठिन है। मैं झपटकर दो कदम पीछे हट गयी। गर्वसिंह मेरा प्राण लेनेके लिये छुरा तान झपटा। पापने—उसके अविचारने—उसका फन्दा कस दिया, क्योंकि वह छुड़ानेकी चेष्टा न कर अपनी पाप-वासना चरितार्थ करनेके लिये आगे बढ़ा था।

इधर उनका अग्रसर होना और पीछेसे सन्तोषसिंहका झटका देना—दोनों कार्य्य एक साथ ही हुए। दोनोंके दोनों बिना किसी तरद्दुदके गिरफ्तार हो गये।

इस बीच हो हल्ला सुनकर उस मकानके अन्यान्य मनुष्य भी जाग उठे और इन दोनोंको लेकर आपके पास आ पहुँचो। इसमें मेरी कोई विशेष कृति नहीं है, बल्कि यह भी सन्तोषसिंहकी चेष्टा, सतर्कता और कृपाका फल है, जो आज ये दोनों दस्यु इस तरह गिरफ्तार हुए।"

इतना कहकर शान्ति चुप हो गयी।

कुछ देर बाद मैंने पूछा—"अच्छा शान्ति! कई बार मैंने डाकुओंके मुँहसे "रानी" शब्द सुना है। मुझे मालूम होता है, कि कोई रानी इन डाकुओंको परिचालित कर रही है। परन्तु वह कौन है और कहाँ रहती है, इसका कुछ भी पता नहीं लगता। क्या तुम कुछ बता सकती हो?

शान्ति बोली,—"सुना तो मैंने भी है, परन्तु मालूम नहीं, वह कौन है और कहाँ रहती है।

इतनेमें ही जीवानन्द बोल उठे—"अच्छा, यह मायावती कौन है? उसे देखकर तुम उस दिवस भाग क्यों गयी थीं?"

शान्ति बोली—"मायावती कौन है—सो मैं ठीक ठीक नहीं बता सकती, परन्तु मुझे सदासे ही सन्देह है, कि मायापुरीके इन दस्युओंसे उसका कुछ न कुछ सम्बन्ध है, परन्तु आजतक उसे कभी डाकुओंके साथ नहीं देखा, कभी किसीका अपकार करते भी नहीं देखा, अत. सन्देहकी पुष्टिका कोई प्रमाण अभीतक नहीं मिला। केवल सन्देहवश ही मैं भाग गयी थी।"

मैंने कहा—"तब इस बातका पता लगाना भी आवश्यक है, कि यह मायावती कौन है?"

इसी बीच जीवानन्द बोल उठे—"मैं उसके महलमें हो आया हूँ। जिस दिवस मैं इस मायापुरीमें आया था, उसी दिवस वह मुझे अपने साथ, उस मकानमें ले गयी थी, वहीं मुझपर डाकुओंका प्रथम आक्रमण हुआ था।"

मेरी इच्छा थी, कि एक बार उस मकानमें चला जायें। अत मैं जीवानन्द तथा परोपकारसिंहको साथ लेकर उसी मकानकी ओर चला।

इस समय सन्ध्या हो गयी थी। चमकीली चाँदनीमें माया-पुरीकी बड़ी बड़ी मनोरम अट्टालिकायें बड़ी ही सुहावनी मालूम होती थीं। हमलोग शहर छोड जीवानन्दके कथनानुसार

ओरको चले। सामने लहलहाते हुए खेत दिखाई देने लगे। उसके बाद ही प्रकृतिका क्रीडास्थल एक सुन्दर सुहावना बागीचा दिखाई दिया। उसके बीचमें एक भव्य अट्टालिका बनी हुई थी।

परन्तु दरवाजा बाहरसे बन्द था। हमलोग पीछेकी राहसे बागमें घुसे, समूचा मकान ढूंढ डाला, परन्तु मकानमें कोई भी दिखाई न दिया। लाचार, हमलोग लौट आये।

इसके बाद तीन चार दिनोंतक नगरमें हमलोग पता लगाते रहे, परन्तु मायावतीका किसी तरह पता न लगा। जिस किसीसे पूछता, वह यही उत्तर देता—"नाम तो सुना है, पर वह कौन है और कहाँ रहती है, सो नहीं जानता।"

अन्तमें सब समाचार लिखकर मैंने बड़े साहबके पास भेज दिया। उन्होंने उत्तरमें यह लिखा-"मायावतीपर सन्देह करनेका यथेष्ट कारण नहीं मिला, तुम लोगोंकी बातोंसे ऐसा ही मालूम होता है। फिर क्यों उसके पीछे समय नष्ट कर रहे हो? तुमलोग शीघ्र लौट आओ। कैदियोंका मुकद्दमा शीघ्र ही आरम्भ होगा।"

लाचार, सब कैदियोंको लेकर हमलोगोंको दूसरे ही दिवस लौट जाना पड़ा। मायावतीका पता न लगा।

तीसरे ही दिवस न्यायाधीश आत्मानन्दकी खास अदालतमें इन पट्टदस्युओंका मुकद्दमा आरम्भ हुआ।

पच्चीसवां परिच्छेद.



आत्मानन्दकी अदालत।

कैदियोंका विचार।

जिस दिवस इन आततायियोंका विचार आरम्भ हुआ, उस दिवस अदालत मनुष्योंकी भीड़से ठसाठस भर रही थी। जिन डाकुओंके कारण समूचा नगर संत्रस्त हो रहा था, अनेकानेक मनुष्य त्राहि त्राहि कर उठे थे, उन्हीं डाकुओंके गिरफतार होनेका समाचार सुन जनता प्रसन्नतासे पागल, और न्यायालयमें उनका विचार देखने और मुकद्दमा सुननेके लिये आकुल हो रही थी। अत अदालतमें ऐसी ठसाठस भीड थी, कि तिल रखनेका स्थान नहीं था।

ठीक ग्यारह बजनेके समय न्यायाधीश आत्मानन्द न्याया लयमें आ पहुंचे। आपने अपना अधिकांश जीवन न्यायालयपर ही बिताया था। एकदम त्यागी हो रहे थे। गेरूआ वसन धारण किया था पर लोगोंके उपकारके विचारसे अपना काम न छोड़ा था। आपके शरीरसे एक प्रकारकी ज्योति फूट रही थी, उन्हें देखनेसे ही मालूम होता था, कि आप निर्लेप, निर्विकार हैं। अङ्ग अङ्गसे शान्ति बरस रही थी। बड़ा ही सौम्य शान्त भाव था' विशेष विवरणकी आवश्यकता नहीं, उन्हें देखनेसे ही

होता था, कि न्यायाधीशमें जो गुण होने चाहिये, वे इनमें वर्त्तमान हैं।

यथासमय मुकद्दमा आरम्भ हुआ। अपराधी कामरूपसिंहकी पहले पुकार हुई। वही दस्यु दलका सरदार था। कामरूपसिंह कठघरेमें आकर खडा हुआ। चेहरा मुर्झाया हुआ था—कान्तिके स्थानपर चिन्ताकी कालिमा झलक मार रही थी और उद्दण्डताकी जगह परिताप।

पुलिसके बडे अफसरने खडे होकर मुकद्दमा समझाना आरम्भ किया। खूब अच्छी तरह वे ही बातें समझा गये, जो जीवानन्द तथा मुझसे मालूम हुई थीं। मुकद्दमा सजाने, समझाने और पेश करनेकी चतुरतामें उस अफसरने कोई भी बात उठा न रखी। बीचमें मायावती और रानीका जिक्र भी आया। न्यायाधीश आत्मानन्दने सब सुन लेने बाद घूमकर कामरूपसिंहकी ओर देखा। कामरूपसिंह इस समय किसी घोर चिन्तामें निमग्न हो रहा था।

आत्मानन्दने पूछा—"कामरूपसिंह! तुम क्या कहते हो? क्या अपना अपराध स्वीकार करते हो?"

परन्तु अभी कामरूपसिंह कोई उत्तर देना ही चाहता था, कि इसी समय अनेकानेक बहुमूल्य जडाऊ आभूषणोंसे सुसज्जित, परमा सुन्दरी मायावती, धडधडाती हुई, वहाँ लपककर आ पहुंची। वह अपूर्व अलौकिक सौन्दर्य, वह अद्भुत अलबेली छटा, वह अनोखी शानदार सजावट, वह तेज और गरिमापूर्ण मुखमंडल,

यह सरस सलोनी भाव भङ्गी देखकर न्यायालयमें उपस्थित सभी मनुष्योंकी टकटकी लग गयी। सभी एक दृष्टिसे—आश्चर्यभरी दृष्टिसे मायावतीको देखने लगे। न्यायाधीश आत्मानन्दने भी देखा। उनकी दृष्टिको अपनी ओर आकर्षित देखते ही मायावतीने कहा—"मुकदमेके कार्यके बीचमें ही बाधा देनेके लिये यदि क्षमा हो तो मैं पहले कुछ निवेदन करूं। मैं कारणवश और कार्यवश मायापुरीसे अन्यत्र गयी थी। मुझे आनेपर मालूम हुआ है, कि मुझ पर भी कुछ कलङ्क है। यह कलङ्क इन षट्दस्युओंके संसर्गका है। यहाँ अदालतमें भी मेरा नाम लिया गया है। सम्भव है, वारण्ट भी मेरे नामका निकाला जाता। अतः मुकदमा आरम्भ होनेके पहले ही अपनी सफाई दे देनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ, यदि आज्ञा हो, यदि सदाशय विचाराधीश मेरी बातें सुनना समयका अपव्यय न समझें, तो थोड़े ही शब्दोंमें मैं अपनी सफाई दे, यहाँसे चली जाऊ। मैं स्त्री-जाति हूं, अबला हूँ,—मेरा अदालतमें घसीटा जाना उचित नहीं, निरर्थक कलङ्क लगना भी ठीक नहीं। पुरुषजाति अपना कलङ्क मेट सकती है, पर मुझ अबला जातिपर लगा हुआ कलङ्क अमिट हो जाता है। इसीलिये मेरा अनुरोध है, कि न्यायाधीश मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।"

सारी अदालतमें सन्नाटा छा गया। मायावतीकी मायाने सबको जड़ीभूत कर दिया। स्वामी आत्मानन्दने कहा-"स्वीकार है। तुम संक्षेपमें अपना हाल कहो। इस मुकदमेमें तुम्हारा

आया है, तुम्हारा कुछ दोष बताया जाता है, अतः तुम्हारी बातें सुनना, अप्रासङ्गिक नहीं है।"

मायावतीने एक बार सिर झुकाकर न्यायाधीशको अपनी कृतज्ञता दिखाई, फिर कहा—

"हा! मेरे हृदयमें इस बातका बड़ा ही दुःख है, कि लोग मुझे दुराचारिणी कहते हैं। कहाँ तो मेरा नाम मायावती, मेरे पिता बडे ही शक्तिशाली आदिनाथ, सम्मानीय धनी कुलकी सन्तान, वडा भारी पद—कहाँ लोगोंने मुझे यह दोष दे रखा है! यदि अनपढ़ और मूर्ख ऐसा कहते तो उनके कहेका भले ही मैं बुरा न मानती—मेरे हृदयमें कष्ट न होता परन्तु मुझे उस समय बडा कष्ट, सन्ताप और दुःख होता है, जब मैं बडे बडे ज्ञानी ध्यानियों और विद्वानोंको भी, मुझे यही दोष देते देखती हूँ। क्या माया नाम ही ऐसा बुरा है या मेरी करनी? कुछ समझमें नहीं आता।" इतना कहते कहते मायावतीकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें टपक पड़ीं।

कुछ क्षण ठहरने बाद मायावती बोली—"ललाटकी लिखन! इसके लिये क्या चिन्ता है? लोग कहा करें। अस्तु, मैं इस मायापुरीकी ही रहनेवाली नहीं हूँ, निवास स्थान अन्यत्र है, परन्तु अपने स्वभाव दोषके कारण मुझे मायापुरीमें आना पडता है। अबलाओंका हृदय सदाही कोमल रहता है। मैं अबला हूँ, मुझ... किसीका दुःख देखा नहीं जाता। किसीके आप... भी सम्भावना देखते ही मेरा हृदय विदीर्ण

मायापुरीका उपद्रव सुन, लोगोंकी रक्षाके लिये ही मायापुरीमें विशेष रहना पडता था और इसीलिये चाहे पुरुष हो या स्त्री ; झट सबके पास दौड जाती हूँ, तुरन्त सबसे मिलकर बातें करने लगती हू, इसीलिये कलक भी लगता है। लोग मुझे लज्जाहीना, वारवनिता, सामान्या कहने लगते हैं। मुझे दोष देने लगते हैं, कि मैं लोगोंको फँसाकर, अपने रूप जाल, माया जाल, वाक्य-जल और सौन्दर्य्य जालमें उलझाकर, विपथगामी बना देती हू। परन्तु मैं सत्य कहती हूँ, मैंने कभी किसीको कुपथमें जानेके लिये आग्रह नहीं किया है। क्या मैंने कभी किसीको अपने पास बुलाया है? मैं किसीको आकर्षण नहीं करती, लोग क्यों स्वय आकर्षित हो जाते हैं? क्यों मनमानी करने लगते हैं? क्यों कुपथगामी बन जाते हैं? यदि यह मेरे रूपका प्रताप है, तो इसके लिये मैं दोषी नहीं—विधातासे पूछिये। अस्तु, जीवानन्द जिस समय मायापुरी गये, जिस समय मुझे मालूम हुआ कि ये आ रहे हैं, उस समय, एक अन्धकारमयी रजनीमें, उस बीहड स्थानमे, उस घोर जगलमें एकाकिनी इनकी रक्षाके लिये ही गयी, इन्हें समझाया, लौट जानेको कहा, प्राणोंकी ममता दिखाई, ससारमें इनका कर्त्तव्य बताया, इतनेपर भी जब न माने त क्या किया जाता? इन्होंने मेरी बात नहीं मानी, मैं अपनी विपदावस्था, मायापुरीका रहस्य समझानेके लिये अपने मकानमें ले गयी, न जाने डाकू किस तरह और कहाँसे [illegible] े बैठे थे, कि वहीं इनपर आक्रमण कर बैठे। अपने [illegible] ... आक्रमण [illegible]

लज्जासे अधमरी हो गयी। सोचा, अपने प्राणोंपर खेलकर, इनकी रक्षा करूँगी। दस्युदलमें जा पहुँची। इनकी तथा शान्तिकी रक्षाके लिये ही दस्युदलमें गयी। यह एक दूसरी ही बात है, कि उनपर मैं प्राधान्य जमा सकी। वहाँकी एक मजदूरिनको मिलाकर इनके पास पत्र भेजवाया। परन्तु परमेश्वरकी कृपासे ये स्वय ही अपने उद्योगवलसे छूट आये। इनके वाद कामरूपसिंहके मकानमें ले जाकर, रतिको दिखा, इन्हें सावधान करना चाहा। वहाँ भी ये अपने कर्म और स्वभाव दोपसे ही फँस गये। फिर दासीको भेजकर इन्हें बुलवाया। वास्तवमें मैं शान्तिको अपनी वहन जैसी मानती हू, परन्तु वह न जाने क्यों मुझसे डरकर भागती ही फिरती है। वह धर्म्मसिहकी कन्या है, मैं आदिनाथकी पुत्री। मेरे पिता और धर्म्मसिहमें अकाट्य प्रीति थी। शान्ति इस वातको नही जानती। यदि जानती होती, तो इस तरह मुझपर अविश्वास न करती। उस दिवस जीवानन्दसे वार्ते करती करती भाग न जाती। उसी शान्तिपर अमर्षसिहका अत्याचार होनेकी सम्भावना थी। अमर्षसिहने पत्र भी भेजा था, अत. उसकी रक्षा करना, मेरा कर्त्तव्य था, इसी कर्त्तव्यके अनुरोधसे मैंने जीवानन्दको एम दासी भेजकर बुलाया, अपने साथ ले जाकर अमर्षसिंहको दिखाया—इतना ही नहीं, उसे अत्याचार करते हुए भी दिखा दिया। तिसपर भी ये सावधान न हो सके और उसे पकड़नेके वदले, स्वयं ही अज्ञानवश उसकी चपेटमें आ गये। भला, इसमें मेरा क्या दोप था ? इन्हें अज्ञान तथा असावधानता-

वश इसी तरह वारम्बार फँसते देखकर, मेरे मनमें यही विचार उत्पन्न हुआ, कि ये मेरे साथ जाते और किसी न किसी आपदामें फँस जाते हैं, अत इनके मनमें मुझपर अवश्य ही सन्देह होगा। इसी अवसरपर जीवानन्दके मित्र संयमसिंह यहाँ आ पहुँचे। अब मैं निश्चिन्त हो गयी और तबसे ही मैंने जीवानन्दका ध्यान छोड़ दिया। बताइये, फिर मुझपर क्यों कलङ्क लगाता है? क्यों लोग मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं? बस, जीवानन्दके सम्बन्धमें मुझे विशेष कुछ कहना नहीं है। मेरी बातोंकी पुष्टि, आशा है, कि जीवानन्द भी करेंगे। बस, अपने इन्हीं उपकारी विचार, सहानुभूतिपूर्ण हृदय और कोमल स्वभावके कारण ही, मैं दुराचारिणी कही जाती हूँ, मुझपर कलङ्कका टीका लगाया जाता है, मुझे लोग चञ्चला कहते हैं। बस, इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं है। अब यदि अदालतको कुछ संशय रह गया हो, तो वह और जो पूछना चाहे पूछ ले।"

न्यायाधीशने एक बार जीवानन्द तथा संयमसिंहकी ओर देखा, परन्तु उन दोनोंने अपनी कोई सम्मति न प्रकट की। जीवानन्दने मायावतीकी बातें सत्य ही बतायीं। मायावती इसके बाद एक बार गर्वभरी दृष्टिसे उपस्थित जनताकी ओर देखती हुई, तेजीसे वहाँसे चली गयी।

इतनी ही कार्रवाईके बाद उस दिवस अदालत बर्खास्त

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।



फैसला ।

दूसरे दिन फिर भी अदालतमे वैसी ही भीड़ भरी थी। कल मायावतीके आगमनके कारण, उसकी जत्रानबन्दी सुनकर लोगोंकी उत्सुकता और भी बढ़ गयी थी। सभी समझते थे, कि इस मुकद्दमेमें कितने ही नये नये गुल खिलेंगे और इसीलिये सभी बडी उत्सुकतासे विचारक आत्मानन्दके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ठीक समयपर आत्मानन्द न्यायालयमें आ पहुचे। दस्यु दल लाकर कठघरेमे खड़ा कर दिया गया। मुकद्दमेके कार्य्य आरम्भ हुए। सब मिसिलें और कागज पत्र देख लेने बाद न्यायाधीश आत्मानन्दने कामरूपसिंहकी ओर देखकर कहा—"तुमपर जो अपराध लगाये गये हैं, वे तुमने सुने, क्या तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो?"

उत्तर नदारद! कामरूपसिंहने कोई उत्तर न दिया। बहुत कुछ पूछा गया, परन्तु कामरूपसिंहने मु हतक न खोला। यह देखकर आत्मानन्दने कहा—"अच्छी बात है 'मौनं सम्मति लक्षणम्।' तुम्हारे मौन रहनेसे मालूम होता है, कि तुम अपराधी हो—परन्तु अपना अपराध स्वीकार नहीं किया चाहते। मैं आज्ञा ता हू, कि तुम अनन्द बना दिये जाओ।"

अपनी भीषण दण्डाज्ञा सुनकर कामरूपसिंह घबडाकर उसी स्थानपर बैठ गया।

उसके बाद अमर्षसिंह हाजिर किया गया। उसने भी अपने सरदारका ही अनुकरण किया। यह देखकर आत्मानन्दने कहा—"तुम सदा के दुराचारी रहे हो, तुम्हारे द्वारा अनेक हत्यायें हुई हैं। अत तुम महारौरव द्वीपमे भेज दिये जाओगे।"

अमर्षसिंहके बाद अभिलापसिंह, मोहनचन्द, गर्वसिंह और हसदअली इन सब डाकुओंने भी अपना अपना बयान देनेसे इन्कार किया, अत इन सबको उसी तरह क्रमश लालाभक्ष, तामिस्र, अन्धकूप और वज्रकण्टक द्वीपमें रहकर कष्ट भोगनेकी आज्ञा हुई।

कामना, वासना, तथा रतिको यावज्जीवन कारादण्डकी आज्ञा मिली।

मानिनीने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था, दूसरे, वह अपने कृत कर्मोंके लिये आन्तरिक परितप्त हुई थी, इसलिये उसे छोड दिया गया।

अन्यान्य डाकुओंको थोडी थोडी सजायें दी गयीं। इस तरह यह मुकद्दमा समाप्त हुआ।



उपसंहार

जीवानन्दको पेन्शन न प्राप्त हुई, क्योंकि वे इन डाकुओंके न्देमें स्वय जा फँसे थे। अत उन्हें अभी कुछ दिवस और भी ौकरीकर अपनी कार्यपटुता दिखानेकी आज्ञा मिली।

संयमसिंहने बड़ा उद्योग, सावधानता और कार्यपटुता देखायी थी। अत उन्हें यथेष्ट उपहारके साथ ही साथ पेन्शन ग्रहण करनेकी आज्ञा भी मिल गयी।

क्षमासिंह, सन्तोषसिंह प्रभृति सिपाहियोंको भी यथेष्ट पुरस्कार दिया गया।

इस तरह यह मायापुरी उपद्रवशून्य हुई।



शैतानी-फन्दा

—या—

स्वर्गमें नरक

यह वही जासूसी उपन्यास है, जिसमें घटनाओंका फव्वारा छूटता है, एक बडे ही उन्नत समाजके भीतरकी ऐसी ऐसी पोलें खुलती हैं, घटनाओंपर घटनायें आकर चित्तमें इस तरह हिलोरे मारती हैं, कि पढ़कर तबीयत दङ्ग रह जाती है। घटनाओंका ऐसा जाल घिरा रहता है, कि उसका उठना असम्भव सा मालूम होता है, परन्तु फिर भी जासूसकी विलक्षण बुद्धि और असाधारण प्रतिभाके आगे शत्रुओंको पराजय स्वीकार करनी पडती है। हीराजी नामक एक पार्सीका विचित्र षडयन्त्र, कितने ही बडे बडे घरानोंके गुप्त रहस्यका पता लगाकर, अनेक रमणी तथा युवकोंको अपने दलमें मिला, उनसे मनमाना काम कराना, अमिली नामक स्त्रीको विचित्र प्रेम, जमशेदजीके गुलामनेका अद्भुत रहस्य, धनी कुलकी कन्या कर्नेलियाका एक दरिद्र नवयुवकपर आसक्त होना। नाना प्रकारकी विपत्तियाँ उठाना। एक ही मनुष्यका तीन तीन रूपमें प्रकट होकर भयानक कौशल जाल फैलाना एक अपरिचित दरिद्र नवयुवकको एक धनीका पुत्र प्रमाणित करना, असली पुत्रको नाना विपत्तियोंमें डालना, बडे बडे सम्पत्तिशालियोंको गुप्त रहस्यके बलपर नत मस्तक कर डालना—प्रभृति ऐसी ऐसी घटनायें भरी हैं, कि आश्चर्य-चकित रह जाना पडता है। अनेक चित्रोंसे सुशोभित

पुस्तक मूल्य १॥)

व्रत कथा

जिस तरह सीपमें मोती छिपा रहता है, उसी तरह हिन्दुओंके व्रतोंमें भी कितने ही आदर्श कितने ही शरीरके मङ्गल विधायक तत्व और कितनी ही समाज तथा शरीरकी उन्नति कारिणी बातें भरी है। यद्यपि सबका रूप धार्मिक है, पर उन सबमें शरीर विज्ञान तथा उपदेश भरा है, यह उन व्रतोंकी कथाओंसे मालूम होता है और इसीलिये हिन्दुओंके लगभग समस्त व्रतोंकी कथाओंका हमने यह संग्रह कराया है। इसमें हरितालिका, जन्माष्टमी, रामनवमी, संकट चतुर्थी, गणेश चतुर्थी, अनन्त चतुर्दशी, ऋषिपञ्चमी, अक्षय्य नवमी, वामन द्वादशी, नृसिंह चतुर्दशी, शिवरात्रि, यमद्वितीया, गौरी-व्रत, करक चतुर्थी, (करवा चौथ) महालक्ष्मी, अनेक एकादशी, वामन जयन्ती, वट-सावित्री, सोमवती, कोकिला-व्रत, मलमास कथा, वारव्रत, मङ्गला-गौरी, मौनव्रत, प्रभृति बहुतसे व्रतोंकी कथा बडी ही मनोहर भाषामें खूब समझाकर लिखी गयी हैं। पुस्तक इतनी रोचक हुई है, ऐसी ऐसी घटनायें और कथायें इसमें आयी हैं, कि पढ़ते हुए उपन्यासोंसा आनन्द आता है और पद पद पर नवीन बातें तथा अनेकानेक उपदेश प्राप्त होते हैं। मेरा पाठक पाठिकाओंसे अनुरोध है, कि वे इस पुस्तकको मंगाकर अवश्य अवश्य पढें। पुस्तक दस एक रंगे तथा बहुरंगे चित्रोंसे विभूषित है। मूल्य १॥)